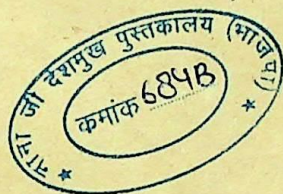


हरिवंश पुराण





Vijay Kumar Gupta Coll.
V. K. Gupta Coll. No. 1

- श्री हरिवंश पुराण को श्रद्धा व भक्ति से सुन लेने पर निःसन्तान को सन्तान और निर्धन को धन मिलता है तथा महापातकी मनुष्य पापों और माया से मुक्त हो जाता है ।
- जिस प्रकार से सूर्योदय होते ही बर्फ गलने लगती है उसी प्रकार प्रेम व भक्ति पूर्वक 'हरिवंश' की कथा सुनने से दैहिक एवं वाचिक पाप नष्ट हो जाते हैं ।
- 'हरिवंश' की कथा अपवित्र, कुशिष्य, व्रत से हीन, कृतघ्न और पापी तथा दुष्ट व्यक्ति को कभी नहीं सुनानी चाहिए, चाहे इससे अपार धन ही क्यों न मिलता हो ।
- इस असार संसार में भक्ति पूर्वक 'हरिवंश' सुनने से सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं ।

निःसन्तान दम्पति को सन्तान प्रदान करने वाला
निर्धन व्यक्ति को प्रचुर धन वाला और महापातकी
मनुष्य के समस्त पापों का नाश कर देने में समर्थ ये
'हरिवंश पुराण' सुनने से अथवा पढ़ने से कलियुग में
व्यक्ति महापापों से भी मुक्त हो जाता है।

॥ ॐ श्री गोविन्दाय नमः ॥

A1-7R3

श्री हरिवंश पुराण

श्री हरिवंश पुराण को महाभारत का खिलभाग अर्थात् कमी को पूरा करने वाला कहा गया है। राजा जनमेजय ने जब महाभारत की कथा सुनी तो वह सन्तुष्ट नहीं हुए, तब उन्होंने वैशम्पायन जी से हरिवंश पुराण को सुना और पूर्ण तृप्त हुए।

अनुवादक :

डॉ० रामकृष्ण उपाध्याय

एम० ए० एस० एफ० ए० एस० एफ०

आयुर्वेद तीर्थ (कलकत्ता) साहित्य विशारद, साहित्यरत्न

मूल्य : ४०.००

प्रकाशक :

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

☐ प्रकाशक :

रणधीर प्रकाशन

रेलवे रोड, (आरती होटल के पीछे)

हरिद्वार (२४६४०१)

दूरभाष : ४२६२६७

निवास : ४२६१६५

☐ वितरक—

रणधीर बुक सेल्स, शोरूम

रेलवे रोड (मुख्य चिकित्सालय के सामने) हरिद्वार

☐ मुख्य विक्रेता—

१. पुस्तक संसार, १६८-१६९, नुमाइश का मैदान,
जम्मू तबी १८०००१

२. पुस्तक संसार, बड़ा बाजार, हरिद्वार-२४६४०१

३. गगनदीप पुस्तक भण्डार, एस० एन० नगर, हरिद्वार

☐ लेखक—

डॉ० रामकृष्ण उपाध्याय

☐ मूल्य : चालीस रुपये

☐ मुद्रक :

शर्मा प्रिंटर्स

श्याम गली, मौजपुर, दिल्ली-५३

भूमिका

‘महाभारत’ नामक महाग्रन्थ से हम सभी भली-भाँति परिचित हैं। यह हमारी हिन्दू संस्कृति का एक महान् एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में विशेष रूप से पाण्डवों एवं कौरवों के युद्ध का वर्णन मिलता है। उसमें प्रद्युम्न, सात्यकि, विराट विपृथु आदि अनेकों वृष्णि वंशियों एवं अन्धक वंशी यादव महारथियों के नामोल्लेख हैं। जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण प्रमुख रहे हैं। महाभारत काल में यादव वंश की संख्या ५६ करोड़ थी जो निःसन्देह बड़े शक्तिशाली थे। ‘महाभारत’ के अन्तिम पर्व ‘मूसलपर्व’ में यदु-वंशियों के आपस में ही युद्ध करके नष्ट होने का वर्णन तो मिलता है परन्तु उन महारथियों ने कब-कब और किस-किस स्थान पर किस प्रकार के युद्ध में अपनी महारथ दिखाई, यह वर्णन नहीं मिलता। जिसे जानने के लिये पाठक का मन उत्सुक होता है परन्तु ‘महाभारत’ से वह अपनी इस ज्ञान पिपासा को बुझा नहीं पाता। यादव वंशी महारथियों की वीरता का वर्णन महाभारत में न मिलना पाठक के मन को कचोटता है और वह इस ग्रन्थ में यह कमी अनुभव करता है। इसी कमी को पूरा करने के लिए ‘श्री हरिवंश पुराण’ की रचना की गई है। इसीलिये श्री हरिवंश पुराण को महाभारत का खिल (एपेंडिक्स, अर्थात् कमी की पूर्ति करने वाला) कहा गया है। इसका प्रमाण है राजा जनमेजय ने

भी जब 'महाभारत' की कथा सुनी तो उन्हें सन्तुष्टि नहीं हुई। तब उन्होंने वैशम्पायन जी से 'श्री हरिवंश पुराण' को सुना और पूर्ण तृप्त हुए।

'श्री हरिवंश पुराण' तो वास्तव में महाभारत का उपसंहार या खिल के रूप में लिखा गया है। फिर भी इसमें पुराणों के पाँचों गुण प्रतिसर्ग, सर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित पाये जाते हैं इसीलिये श्री हरिवंश की पुराणों में गिनती की गई है। इसमें आदि सृष्टि का उद्भव वर्णन, स्वायम्भुव मनु तथा दक्ष से विश्व सृष्टि का वर्णन, पृथु द्वारा पृथ्वी पर मानव सभ्यता की स्थापना, वैवस्वत मनु एवं उनका वंश, सूर्यवंश एवं चन्द्रवंश आदि का वर्णन इस पुराण में भली-भाँति किया गया है। हिन्दू संस्कृति कला रहन-सहन, वेश-भूषा आदि का परिचय भी इसमें अच्छा मिलता है।

श्री हरिवंश पुराण के प्रमुख नायक भगवान श्रीकृष्ण हैं। इसमें भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र को उजागर करना ही मुख्य उद्देश्य है। इसमें श्रीकृष्ण के प्रौढ़ावस्था के चरित्रों का विशेष उल्लेख है हालाँकि बाल्यावस्था के चरित्रों का वर्णन आंशिक रूप में मिलता है जैसे पूतना वध, छकड़े को पैर से मार कर दूर फेंक देना आदि। वैसे तो श्रीकृष्ण का चरित्र बहुत विशाल है जिसका उपनिषदों से लेकर पुराणों तक में विभिन्न रूपों एवं भावों में वर्णन मिलता है। यहाँ तक कि महाभारत में भी श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व अनेक रूपों में देखने को मिलता है। श्रीकृष्ण को भगवान विष्णु का पूर्ण अवतार के रूप में अवतरित होने का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण में भी श्रीकृष्ण को भगवान विष्णु का पूर्णवतार ही माना गया है। श्री कृष्ण का व्यक्तित्व एक महान पुरुष,

जननेता, राजनीतिज्ञ एवं एक कुशल सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में प्रकट होता है। उनके हृदय में जनकल्याण एवं एकरूपता की भावना सदा विद्यमान रहती थी। क्योंकि श्रीकृष्ण ने वृन्दावन के निवासियों की सुरक्षा एवं सुख सुविधा तथा श्रीवृद्धि के लिए सदा ही प्रयत्न किया। बड़े से बड़े संकटों का निवारण किया। जैसे—कालिया नाग, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, केशी वध आदि।

श्री कृष्ण एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं रणनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने यथोचित समय पर अपनी तीक्ष्णाय एवं कुशल बुद्धि, रण कौशल तथा सर्वोत्कृष्ट पराक्रम का भी परिचय दिया है। उदाहरण स्वरूप इन सबका परिचय कंस के अनीतिपूर्ण शासन अनियन्त्रित सैनिकवाद और असामाजिकता का विरोध श्रीकृष्ण ने ही किया। कंस ने श्रीकृष्ण, व बलराम को समाप्त कर देने के लिए क्या-क्या नहीं किया। परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी कुशल बुद्धि से स्वयं की रक्षा ही नहीं की, अपितु अपने कुशल बुद्धि एवं पराक्रम से कंस की सारी षड़यन्त्रपूर्ण योजनाओं को निष्फल ही नहीं किया बल्कि कंस को यमलोक भी पहुँचा दिया। जो कि कंस द्वारा शोषित, प्रताड़ित एवं कराहती प्रजा के हित में एक महान् शुभ कार्य था। तथा उग्रसेन (कंस के पिता) श्री कृष्ण की बुद्धिमत्ता, राजनीतिक कुशलता, संगठन योग्यता एवं पराक्रम व तेज को देखकर परिस्थिति वश उन्हें राज्यभार और शासन सत्ता सौंपते हैं। परन्तु कृष्ण उसे स्वीकार नहीं करते क्योंकि उन्होंने कंस को राज्य-सत्ता हथियाने के लिये नहीं मारा था, वे तो निःस्वार्थ भाव से जनहित में प्रजा के कल्याण के लिये था। श्री कृष्ण ने उग्रसेन से स्पष्ट रूप में कहा था—

नहि राज्येन मे कार्य माप्यहं नृप काक्षितः ।
 न चाहि राज्यं लुब्धान मया कंसो निपातितः ॥
 किन्तु लोकाहितार्थाय कीत्यर्थं च सुतस्तव ।
 व्यंगवत् कुबस्यास्य सानुजो विनपतितः ॥

मुझे राज्याधिकार नहीं चाहिये न मुझे राजा बनने की इच्छा है और न मैंने राज्य पर अधिकार करने के लालच में ही कंस को मारा है परन्तु जब मैंने अनुभव किया कि वह अनुचित व खानदान को कलंकित करने वाले कार्यों में लिप्त है तो मैंने लोक कल्याणार्थ जनहित में कंस एवं उसके भाई को मारा है। ये कहकर श्रीकृष्ण राज्य सत्ता उग्रसेन को ही सौंप देते हैं।

हरिवंश में कलियुग कैसा होगा ? तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों का व्यवहार कैसा होगा ? इत्यादि वर्णन भविष्य पूर्व के प्रारम्भ में किया गया है जो कि वर्तमान युग में अधिकाधिक सत्य प्रमाणित हो रहा है तो विश्वास रखना चाहिये शेष भी आगे सत्य ही होगा।

हरिवंश पुराण में चार बड़े-बड़े उपाख्यान हैं—प्रद्युम्न, प्रभावती मायावती उपाख्यान, अनिरुद्ध—उषा की कथा, पौण्ड्रक अहंकार एवं उसका वध तथा हंस-डिम्भक उपाख्यान। इन उपाख्यानों को पढ़ने से भगवान् श्री कृष्ण के नेतृत्व में यादव वीरों के पराक्रम का ज्ञान होता है कि किस प्रकार इन लोगों ने घमण्डियों के घमण्ड को चूर किया है। इस प्रकार पूर्ण हरिवंश को पढ़ने पर श्रीकृष्ण की राजनैतिक परिपक्वता, रणकुशलता, जन कल्याण करने की दृष्टि, अहंकारियों, दुराचारियों तथा अत्याचारियों को नष्ट करके सज्जन पुरुषों की रक्षा करना ही मुख्य कार्य का ज्ञान होता है।

इस प्रकार मैंने अपने इस हरिवंश पुराण में वर्णित कथाओं को संक्षिप्त परन्तु पूर्ण रूप में वर्णन किया है। इसे लिखते समय मैंने यह ध्यान रखा है कि कथा अधिक विस्तृत भी न हो और मुख्य कथा का कोई भी अंश छूटने न पाये। मैंने इस पुस्तक को सर्व सुलभ सरल एवं सुबोध भाषा में ही लिखने का प्रयत्न किया है। आशा ही नहीं विश्वास भी है, पाठक इसे पसन्द करेंगे।

धन्यवाद

लेखक—

डा० रामकृष्ण उपाध्याय

ग्राम-पोस्ट—कुसौरा

वाया—सहतवार

जिला—बलिया (उ० प्र०)

—:०:—

विषय सूची

प्रथम खण्ड

१. हरिवंश पुराण सुनने का महात्म्य	१७
२. हरिवंश पुराण सुनने की विधि व फल	१९
३. नवाह्न व्रत में पालनीय नियम	२३
४. सन्तान गोपाल स्त्रोत	२५

हरिवंश पर्व

५. आदि सृष्टि का वर्णन	३७
६. स्वायम्भुव का वंश, दक्ष की उत्पत्ति	४२
७. दक्ष द्वारा मरुतों की उत्पत्ति	४६
८. नारद जी का पुनर्जन्म	४६
९. कश्यप ऋषि की स्त्रियाँ व उनकी सन्तानों के नाम	४९
१०. पृथु उपाख्यान	५१
११. वेन का नाश तथा पृथु का जन्म	५३
१२. पृथु द्वारा पृथ्वी का मन्थन	५६
१३. मन्वन्तर वर्णन	५८
१४. वैवस्वत मनु और यम की उत्पत्ति वर्णन	६३
१५. वैवस्वत मनु के वंशज	६८
१६. धन्ध का वध	७१

१७. महर्षि गालव का जन्म	७४
१८. त्रिशंकु की कथा	७७
१९. सागर की उत्पत्ति तथा सागर निर्माण का वर्णन	७९
२०. सूर्य वंश	८१
२१. विष्णु अवतार, वाराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, दत्तात्रेय अवतार, परशुरामावतार, रामावतार, श्रीकृष्ण अवतार, कल्की अवतार	८३ से ९१
२२. देवासुर संग्राम	९२
२३. देवताओं का कालनेमि से युद्ध	९५
२४. ऋषिगणों की ब्रह्मलोक यात्रा	१००
२५. पृथ्वी का विपत्ति वर्णन	१०२
२६. नारद विष्णु संवाद	१०७

विष्णु पर्व

२७. नारद कंस संवाद	११०
२८. योगनिद्रा-विष्णु वार्ता	११२
२९. भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म	११५
३०. श्री कृष्ण की ब्रज यात्रा	११९
३१. श्री कृष्ण द्वारा छकड़े को पलटना	१२०
३२. पूतना वध	१२२
३३. यमलार्जुन वृक्ष का भंग होना	१२३
३४. श्री कृष्ण द्वारा ब्रज त्यागने की योजना	१२६
३५. ब्रजवासियों का वृन्दावन जाना	१२८

३६. कालिया नाग	१३०
३७. धेनुकासुर वध	१३२
३८. प्रलम्बासुर वध	१३३
३९. गोपों द्वारा इन्द्रोत्सव मनाना	१३७
४०. श्री कृष्ण द्वारा गोवर्धनोत्सव मनाना	१३७
४१. श्री कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को धारण करना	१४०
४२. इन्द्र श्रीकृष्ण वार्ता	१४२
४३. अरिष्ठासुर वध	१४४
४४. कंस द्वारा अक्रूर को श्रीकृष्ण हेतु प्रस्थान	१४६
४५. श्री कृष्ण द्वारा केशी वध	१४८
४६. अक्रूर का आगमन तथा नागलोक वर्णन	१५०
४७. बलराम श्रीकृष्ण का कंस की धनुष यज्ञशाला में जाना और धनुष भंग करना	१५४
४८. कृष्ण का कुबलिया हाथी से मल्ल युद्ध	१५७
४९. कंस वध	१५९
५०. उग्रसेन का राज्याभिषेक वर्णन	१६३
५१. मथुरा पर जरासन्ध का आक्रमण	१६६
५२. कालयवन वध	१६८
५३. द्वारका पुरी की स्थापना	१७२
५४. रुक्मिणी हरण व श्रीकृष्ण से विवाह	१७५
५५. रुक्मि वध	१८२
५६. पांडिजात का फूल	१८५

५७. पत्ति सत्यभामा को श्रीकृष्ण द्वारा आश्वासन	१८७
५८. श्रीकृष्ण और इन्द्र का युद्ध	१९०
५९. श्रीकृष्ण द्वारा शिव स्तुति	१९४
६०. द्वारिका में पारिजात लाना	२०१
६१. षटपुर के दैत्यों व श्रीकृष्ण के साथ युद्ध वर्णन	२०३
६२. षटपुर राजा निकुम्भ का वध	२१०
६३. अन्धकासुर वध	२१४
६४. निकुम्भ वध	२१८
६५. वज्रनाभ को वरदान	२२२
६६. प्रद्युम्न का वज्रपुर प्रस्थान एवं प्रभावती से विवाह	२२५
६७. श्रीकृष्ण का वज्रनाभ पुर को प्रस्थान	२३२
६८. शंभरासुर द्वारा प्रद्युम्न का अपहरण एवं प्रद्युम्न द्वारा शंभरासुर वध	२३३
६९. प्रद्युम्न द्वारा मायावती को द्वारका लाना	२४०
७०. बाणासुर	२४२
७१. बाणासुर की पुत्री ऊषा की कथा	२४४
७२. अनिरुद्ध-बाणासुर युद्ध	२४८
७३. श्रीकृष्ण का शोणितपुर को प्रस्थान करना	२५५
७४. अग्निगण व श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध	२५७
७५. शोणितपुर में कृष्ण का युद्ध वर्णन व ज्वर से युद्ध	२६०
७६. पृथ्वी का ब्रह्माजी से निवेदन	२६३
७७. बाणासुर के साथ श्रीकृष्ण का युद्ध	२६४

७८. ऊषा का अनिरुद्ध के साथ विवाह एवं द्वारिका
आगमन

२६७

भविष्य पर्व

७९. जनमेजय की संतति	२७२
८०. जनमेजय व्यास वार्ता	२७४
८१. कलियुग वर्णन	२७८
८२. जनमेजय का यज्ञ	२८१
८३. सनातन ब्रह्म	२८४
८४. सनातन धर्म का प्रमाण	२८७
८५. कर्म फल	२९०
८६. भगवान विष्णु एवं मधु के मध्य युद्ध	२९३
८७. समुद्र मन्थन, भगवान वामन व राजा बलि	२९६ से ३००
८८. भगवान वाराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार	३००
८९. हिरण्याक्ष-इन्द्र युद्ध	३०४
९०. नृसिंहावतार एवं हिरण्यकश्यप वध	३०७
९१. श्रीकृष्ण का कैलाश गमन	३१३
९२. बदरी वन में घण्टा कर्ण को भगवान से साक्षात्कार होना	३१६
९३. श्रीकृष्ण की कैलाश पर तपस्या-वर्णन	३२३
९४. शिवजी द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति	३२७
९५. राजा पौण्ड्रक का वृत्तान्त	३३५
९६. पौण्ड्रक का द्वारिका पर आक्रमण	३३८

६७. बलराम-एकलव्य युद्ध	३४४
६८. श्रीकृष्ण पौण्ड्रक युद्ध	३४५
६९. हंस डिम्भक उपाख्यान	३५०
१००. हंस डिम्भक व दुर्वासा वृत्तान्त	३५३
१०१. महर्षि दुर्वासा का द्वारिका आगमन	३५८
१०२. हंस के दूत का द्वारिका आगमन	३६४
१०३. सात्यकि द्वारा हंस को संदेश	३७१
१०४. भगवान श्रीकृष्ण व हंस डिम्भक की पुष्कर यात्रा	३७५
१०५. हंस डिम्भक और यादवों का युद्ध	३७७
१०६. भगवान श्रीकृष्ण और विचित्र का भीषण युद्ध	३७९
१०७. बलराम और हंस का भीषण युद्ध	३८१
१०८. डिम्भक सात्यकि युद्ध	३८२
१०९. हिडिम्ब वध	३८३
११०. भगवान श्रीकृष्ण व हंस के मध्य युद्ध	३८६
१११. भगवान श्रीकृष्ण का द्वारका वापस होना	३८९
११२. महाभारत की कथा सुनने का फल	३९१
११३. त्रिपुर वध	४००
११४. युग एवं मन्वन्तर वर्णन	४०४
११५. एकार्णव में भगवान विष्णु की दशा	४०७
११६. नारायण मार्कण्डेय संवाद	४०८
११७. नाभि-कमल का वृत्तान्त	४१३
११८. हरिवंश पुराण सुनने का फल	४१४

श्री कृष्णचन्द्र जी की आरती

आरती युगल किशोर की कीजै,
 राधे धन न्यौछावर कीजै । टेक
 रवि शशि कोटि बदन की शोभा,
 ताहि निरख मेरा मन लोभा । आ० १
 गौर श्याम मुख निरखत रीझे,
 प्रभु को रूप नयन भर पीजै । आ० २
 कंचन थार कपूर की बाती,
 हरि आए निर्मल भई छाती । आ० ३
 फूलन की सेज फूलन की माला,
 रत्न सिंहासन बैठे नन्दलाला । आ० ४
 मोर मुकुट कर मुरली सोहै,
 नटवर वेष देख मन मोहै । आ० ५
 आधा नील पीत पट सारी,
 कुञ्ज बिहारी गिरवर धारी । आ० ६
 श्री पुरुषोत्तम गिरवर धारी,
 आरती करत सकल ब्रजनारी । आ० ७
 नन्दनन्दन वृषभानुकिशोरी,
 परमानन्द स्वामी अविचल जोरी । आ० ८

॥ ॐ श्री कृष्णाय नमः ॥

श्री हरिवंश पुराण

हरिवंश सुनने का महात्म्य

नारायणं नमस्कृत नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदोरयेत् ॥

नित्य, सत्य, अनादि, अविनाशी, अखण्ड अछेद, अभेद नारायण रूपी भगवान श्री कृष्ण नर एवं नर श्रेष्ठ अर्जुन, देवी सरस्वती तथा महर्षि वेदव्यासजी को नमस्कार करके 'जय' का पाठ करना चाहिये । सत्यवती पुत्र पाराशर सुत श्री व्यास जी को नमस्कार है जिनके कमल मुख से वाणी रूप अमृत का पान कर सम्पूर्ण विश्व आनन्द विभोर हो जाता है ।

एक बार जनमेजय जी ने वैशम्पायन जी से हरिवंश की कथा सुनाने के लिए निवेदन किया । वैशम्पायन जी बोले—

ब्रह्माविष्णु महेशानां हरिवंश जगुवपुः ।

शब्दब्रह्ममयं विद्धि हरिवंश सनातनम् ॥

शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधि गच्छति ।

हरिवंश पुराणे तु क्षते वै राजसत्तम् ॥

कायिकं वाचिकं पापं मनसा यदपार्जितम् ।

तत्सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥

ज्ञानियों ने हरिवंश को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का स्वरूप बताया है इसलिए इसे सनातन शब्द ब्रह्मय समझना चाहिये, इसमें निष्णात् पुरुष परब्रह्म को प्राप्त होता है । हे राजाओं में श्रेष्ठ जनमेजय ! जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हरिवंश पुराण के सुनने से मन वाणी व शरीर के द्वारा किये गए सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ।

जो यश व फल अठारहों पुराणों के श्रवण करने से प्राप्त होता है उतना ही फल विष्णुभक्त को एक मात्र हरिवंश पुराण के सुनने से ही प्राप्त होता है । पुत्र की इच्छुक स्त्रियों को भगवान् विष्णु के चरणों में प्रेम रखकर हरिवंश पुराण को अवश्य ही सुनना चाहिए । जिस बालघाती पुरुषों की सन्तान हो होकर मृत्यु को प्राप्त होती है उसे हरिवंश पुराण अवश्य सुनना चाहिये । गुरु, चंद्रमा, सूर्य और अग्नि की ओर मुख करके सलमूत्र का त्याग करने वाला पुरुष जन्म-जन्मान्तर में नपुंसक होता है । फल-फूल तोड़ने व बाल हत्या करने वाली, माता-पिता से

से उनकी सन्तान को विरोध करा देने वाली, दूसरी स्त्रियों के गर्भ को नष्ट करने वाली अथवा उसी प्रकार के बुरे कार्य करने वाली स्त्रियाँ अपुष्पा, मृतवत्सा, काकवंध्या, कन्या, प्रजा तथा लावयुक्त दोषों वाली तथा अन्य सभी प्रकार के दोषों को नष्ट करने के लिए हरिवंश दृढ़ शब्दों में सदा ही उद्घोषित करता है, कि मेरे को सुनने मात्र से ही सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं ।

—:०:—

हरिवंश पुराण सुनने की विधि व फल

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से हरिवंश पुराण के श्रवण हेतु नवाह्न पाठ की विधि निम्न प्रकार बताई । सर्वप्रथम विद्वान् ज्योतिषी द्वारा हरिवंश पाठ हेतु शुभ मुहूर्त निकलवाना चाहिए । भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्ग-शीर्ष, आषाढ़ और श्रावण में हरिवंश को सुनने से सभी प्रकार के शुभफलों की प्राप्ति होती है तथा सभी कामनायें पूर्ण होती हैं । कथा प्रारम्भ की तिथि मिति तय हो जाने पर कथा होने का सन्देश चारों तरफ जन-जन में अधिकाधिक प्रसारित करना चाहिये, भगवद् भक्त, हरि कीर्तन मण्डलियों तथा विरक्त व वैष्णवों सन्त पुरुषों को व सभी

को कथा सुनने हेतु निश्चय ही आमन्त्रित करना चाहिए कि यहाँ नौ दिनों तक सत्पुरुष समागम व सत्संग का परम दुर्लभ अवसर प्राप्त है अतः आप सभी पधार कर हरिवंश कथा का श्रवण कर यश के भागी बनें ।

कथा श्रवण हेतु आए हुए लोगों के लिये ठहरने का उचित प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए । कथा सुनने का स्थान कोई तीर्थ, वन अथवा अपना घर होना चाहिए । स्थान बड़ा व खुला होना चाहिए । जिससे श्रवणार्थी अधिक संख्या में सुविधा पूर्वक बैठ सकें । पूजा स्थल को शोधन, मार्जन व लेपन करके रङ्ग-बिरङ्गी धातुओं से चौक पूरना चाहिए । केले के खम्भों से युक्त एक ऊँचा मण्डप बनाना चाहिए । उसे फल-फूल पत्ते और चंदोवे आदि से भगवान की तस्वीरों से भली प्रकार सजाना चाहिये । मण्डप का सुन्दर फाटक बनाना चाहिये । चारों दिशाओं में पताकायें फहरानी चाहियें । मण्डप में कुछ ऊँचाई पर सात लोक बनाकर उनमें विरक्त ब्राह्मण आदि को तथा नीचे सात लोकों में जन साधारण को बैठाना चाहिये । विरक्त ब्राह्मणों के लिए श्रेष्ठ आसन तथा कथा वाचक के लिए दिव्य आसन की व्यवस्था करनी चाहिये ।

वक्ता का मुख उत्तर की ओर होने पर श्रोता का मुख पूर्व की ओर अथवा वक्ता का मुख पूर्व की ओर होने

पर श्रोता का मुख उत्तर की ओर होना चाहिए । विष्णु का परमभक्त, वेदशास्त्रों का ज्ञाता, ग्रन्थ के भाव को हृदयङ्गम कराने में कुशल, धैर्यवान एवं दयालु ब्राह्मण को वक्ता बनाना चाहिए । पाखण्डी पुरुष भले ही वह कितना ही बड़ा विद्वान हो उसे वक्ता नहीं बनाना चाहिये । तथा एक अन्य व्यक्ति वक्ता के सहायक के रूप में होना चाहिए । यह सहायक व्यक्ति भी योग्य व विद्वान होना चाहिये । जो कथा के किसी अंश पर श्रोता के भ्रम का निवारण करने में समर्थ हो तथा जन साधारण को भली भाँति कथा को समझा सके ।

वक्ता व श्रोता को एक कथा प्रारम्भ से एक दिन पूर्व क्षौर-कर्म करा लेना चाहिए । वक्ता और श्रोता दोनों के ही चन्द्रबल तथा श्रवण करने वाले दम्पति के ग्रह एवं ताराबल अनुकूल हो तभी कथा प्रारम्भ करनी चाहिए । श्रोता को सूर्योदय से पूर्व ही नित्य क्रिया-कर्म से निवृत्त होकर स्नान करना चाहिए । मन व इन्द्रियों को वश में करके सन्ध्या-वन्दन आदि करके ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराना चाहिए । फिर गोबर से लिपे हुए स्थान पर सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर सामर्थ के अनुसार पूजन कर्म को सम्पन्न करना चाहिये । तथा विघ्न बाधाओं के निवारण हेतु गणेश जी का पूजन करना चाहिए ।

सलक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत्ततः ।

निर्विघ्नेन च सिध्यत देवपूजनपूर्वकम् ॥२३॥

फिर लक्ष्मी और पुत्रों के सहित गोपाल कृष्ण की स्थापना करनी चाहिये तथा कथा की निर्विघ्न रूप से समाप्ति के लिए देव पूजन करके पत्नी व पुत्र सहित भगवान् श्री कृष्ण का पूजन करना चाहिये ।

संकल्प

१. कथा प्रारम्भ से पूर्व संकल्प करना चाहिये । कि सुभे अमुक गोत्र, अमुक प्रवर, अमुक नाम और जाति वाले, पत्नी युक्त यजमान के जन्म-जन्मान्तरों में एकत्र हुए महापाप समूहों का नाश होकर सन्तति बाधा का नाश होवे । इस जन्म में शतायु सन्तति लाभ और सम्पूर्ण सुख लाभ की कामना से, इस लोक में शरीर शुद्धि और परलोक में इन्द्र आदि के पार भगवान् विष्णु की भक्ति के उद्रेक से उपलब्ध विष्णु लोक गमन और वहाँ एक कल्प तक निवास इस प्रकार के फल की प्राप्ति के निमित्त हम दम्पति यज्ञकर्ता होते हुए हरिवंश पुराण को सुनेंगे । फिर वक्ता का पूजन पूर्वक वरण करना चाहिये ।

सोने की अंगूठी, दो सोने के कुण्डल, सोलह पल सोना

धोती, चादर, पगड़ी, पुष्प, ताम्बूल, सुपारी और अक्षत हाथ में लेकर निम्न संकल्प पूर्वक वक्ता का वरण करना चाहिए ।

संकल्प

२. दम्पति अमुक गोत्र, अमुक शर्मा का चन्दन, ताम्बूल स्वर्ण वस्त्रादि से हरिवंश की कथा कहने के लिये व्यास रूप में वरण करते हैं । फिर वक्ता बोले, 'मेरा वरण हो गया । तथा यजमान वक्ता के दाहिने हाथ में व्रतेन दीक्षामाप्नोति इत्यादि मन्त्र से रक्षासूत्र बांधे फिर ब्राह्मण श्रोताओं के हाथ में रक्षा सूत्र बांधे । फिर चन्दन आदि से विधिपूर्वक वस्त्र, पुष्प, अक्षत, स्वर्णाभूषण, सुपारी और ऋतुफल आदि से षोडशोपचार विधि द्वारा पुराण का पूजन करना चाहिए । फिर श्रोता वाचक द्वारा सावधानी पूर्वक ध्यान देकर प्रेमपूर्वक कथा का श्रवण करना चाहिए । वक्ता के प्रति मन में कभी भी कलुषित भावना नहीं लानी चाहिये । अन्यथा कथा श्रवण का लाभ नहीं मिलता ।

नवाह व्रत में पालनीय नियम

नवाह के समय में श्रोता को चाहिए कि वह एक समय भोजन करे और पृथ्वी पर कुश की आसनी बिछा-

कर शयन करे । ग्रन्थ की समाप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करे । भोजन में खीर अथवा चरु का भोजन करे । कथा श्रवण के समय मल-मूत्र का वेग कष्ट न दे इसके लिए हल्का व सुपाच्य भोजन करना चाहिए, हविष्यान्न लेना चाहिये । सम्भव हो तो उपवास करे या दूध अथवा घी फलाहार या एक समय भोजन करते हुए कथा का श्रवण करना चाहिये । यदि उपवास रखने में कठिनाई हो तो नहीं रखना चाहिए । इससे कथा श्रवण में बाधा पड़ती है । अतः श्रोता जिस प्रकार अपने शरीर को ठीक से रख सके वैसा ही करना चाहिये, कथा श्रवण के समय मन एकाग्र होना चाहिये, चंचल नहीं होना चाहिये । स्त्री पुत्र आदि सभी परिवार जन सहित प्रातः स्नान ध्यान आदि कर सर्वप्रथम भगवान् श्री कृष्ण का पूजन करना चाहिए, फिर कथा का श्रवण प्रेमपूर्वक करना चाहिये ।

इच्छित फल की कामना से युक्त श्रोता पुष्प, धूप, फल तथा श्रेष्ठ नैवेद्य द्वारा गुरु की सेवा करनी चाहिये । कथा सुनने के बाद सायंकाल के कर्मों से निवृत्त होकर बन्धु-बान्धवों सहित गुरु श्रेष्ठ व्यास 'वक्ता' की सेवा में उपस्थित होकर अपनी सेवा से उन्हें सन्तुष्ट करे । फिर घर जाकर पति-पत्नी दोनों अलग-अलग बिस्तरों पर शयन

करें । पापों के शमन हेतु यम नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करना चाहिए । भगवान् विष्णु के चरण कमलों में सदा ही ध्यान लगाना चाहिये । कथा समाप्ति तक श्रोता को प्रतिदिन पत्तल में भोजन करना चाहिए ।

—:०:—

सन्तान गोपाल स्तोत्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
 श्रीशंकमलपत्राक्षं देवकीनन्दनं हरिम् ॥
 सूतसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि मधुसूदनाम् ॥१॥
 नमाम्यहं वासुदेवं सुतसम्प्राप्तये हरिम् ।
 यशोदांकगतं बाल गोपालं नन्दनन्दनम् ॥२॥
 अस्माकं पुत्रलाभाय गोविन्दं मुनिवन्दितम् ।
 नमाम्यहं वासुदेवं देवकीनन्दनं सदा ॥३॥
 गोपालं डिम्भकं वन्दे कमलापतिमच्युतम् ।
 पुत्रसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि यदुपङ्गवम् ॥४॥
 पुत्रकामेष्टिफलदं कञ्जाक्षं कमलापतिम् ।
 देवकीनन्दनं वन्दे सुतसम्प्राप्तये मम् ॥५॥
 पद्मापते पद्मनेत्र पद्मनाभं जनार्दन ।
 देहि मे तनयं श्रीश वासुदेव जगत्पते ॥६॥

यशोदांकगतं बालं गोविन्द मुनिवन्दितम् ।
 अस्माकं पुत्रलाभाय नमामि श्रीशमच्युतम् ॥७॥
 श्रीपते देवदेवेश दीनार्तिहरणाच्युत ।
 गोविन्द मे सुतं देहि पमाति त्वां जनार्दन ॥८॥
 भक्तकामदं गोविन्द भक्तं रक्ष शुभप्रद ।
 देहिमे तनयं कृष्ण रुक्मिणी वल्लभ प्रभो ॥९॥
 रुक्मिणीनाथ सर्वेश देहि मे तनयं मुदा ।
 भक्त मन्दार पद्माक्ष त्वामहं शरणं गतः ॥१०॥

पुत्र प्राप्ति के लिए मैं लक्ष्मी पति कमलनयन देवकी
 नन्दन मधुसूदन भगवान श्री कृष्ण को नमस्कार करता
 हूँ । पुत्र की प्राप्ति के लिए यशोदा के अंक में बाल-गोपाल
 रूप में स्थित एवं नन्द को आनन्द देने वाले वासुदेव श्री
 हरि को मैं नमस्कार करता हूँ । पुत्र लाभ के लिए देवकी
 वासुदेव के पुत्र, मुनियों द्वारा वन्दना किए हुए गोविन्द
 को मैं नमस्कार करता हूँ । पुत्रलाभ की कामना से
 साक्षात् लक्ष्मीपति, अच्युत होकर भी गोप बालक के रूप
 में गौओं की रक्षा में तत्पर यदुकुल तिलक भगवान श्री
 कृष्ण को प्रणाम करता हूँ । पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ
 के फलदाता कमलाक्ष, कमलापते, देवकी सुत को मैं
 नमस्कार करता हूँ । हे कमलापते ! हे कमलनयन !! हे

कमलनाभ ! ! ! हे जनार्दन ! हे जगदीश्वर वासुदेव ! !
 मुझे पुत्र दीजिए । यशोदा की गोदी में विराजमान रहने
 वाले, अपनी महिमा से कभी अलग न होने वाले, मुनियों
 द्वारा वन्दना किये हुए भगवान गोविन्द को मैं नमस्कार
 करता हूं, मेरे इस कर्म के फल से मुझे पुत्र प्राप्त हो । हे
 भक्तों की कामना पूर्ण करने वाले गोविन्द मुझ भक्त की
 रक्षा कीजिए । शुभद्र ! रुक्मिणी ! हे प्रभो ! हे श्री
 कृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिए । हे रुक्मिणीपते ! हे सर्वेश्वर !
 मुझे पुत्र दीजिए । भक्तों के अभीष्ट को पूर्ण करने में
 कल्पवृक्ष स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण मैं आपकी शरण में हूं ।

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।

देहिमे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥११॥

वासुदेव जगदवन्ध श्रीपते पुरुषोत्तमम् ।

देहि मे तनयं कृष्णं त्वामहं शरणं गतः ॥१२॥

कंजाक्ष कमलानाथ परकारूपिकोत्तम ।

देहि मे तनयं कृष्णं त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥

लक्ष्मीपते पद्मनाभ मुकुन्द मुनिवन्दित ।

देहि मे तनयं कृष्णं त्वामहं शरणं गतः ॥१४॥

कार्यकारण रूपाय वासुदेवाय ते सदा ।

नमामि पुत्रलाभार्थं सुखदाय बुधाय ते ॥१५॥

राजीवनेत्र श्रीराम रावणारे हरे कबे ।
 तुभ्यं नमामि देवेश तनयं देहि मे हरे ॥१६॥
 अस्माकं पुत्रलाभाय भजामि त्वां जगत्पते ।
 देहि मे तनयं कृष्णं वासुदेव रमापते ॥१७॥
 श्रीमानिनीमानचोर गोपीवस्त्रापहारक ।
 देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥१८॥
 अस्माकं पुत्र सम्प्राप्ति कुरुष्व यदुनन्दन ।
 रमापते वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित ॥१९॥
 वासुदेव सुतं देहि तनयं देहि माधव ।
 पुत्र मे देहि श्रीकृष्ण वत्सं देहि महाप्रभो ॥२०॥

हे देवकी लन्दन ! हे गोविन्द ! हे वासुदेव ! हे
 जगन्नाथ ! हे श्री कृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं
 आपकी शरण में आया हूँ । हे विश्ववन्द्य ! हे वासुदेव !
 हे श्रीपते ! हे पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान
 कीजिए, मैं आपकी शरण में हूँ । हे कमलाक्ष ! हे कमला-
 पते । हे दयालुओं में सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! मैं आपकी शरण
 में आया हूँ मुझे पुत्र दीजिये । हे लक्ष्मीपते ! हे मुनिवन्दित
 मुकुन्द ! हे श्रीकृष्ण मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे
 पुत्र प्रदान कीजिए । आप कार्य कारण रूप, सुखदाता एवं
 ज्ञानी हैं, पुत्र प्राप्ति हेतु मैं आप वासुदेव को सदा ही

प्रणाम करता हूँ । हे कमलनयन ! हे रावणारे ! हे हरे
 कवे ! हे देवेश विष्णो ! आपको नमस्कार है, मुझे पुत्र
 दीजिये । हे विश्वेश्वर ! पुत्र प्राप्ति की कामना से मैं
 आपकी आराधना कर रहा हूँ । हे रमापते ! हे वासुदेव !
 हे श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये । हे मानिनी ! राधा
 के मान भंजक श्रीकृष्ण, हे वासुदेव, हे जगन्नाथ, मुझे
 पुत्र प्रदान करिये । हे यदुनन्दन ! हे लक्ष्मीपति, हे वासु-
 देव, मुझे पुत्र दीजिए, हे साधव, हे तनय, हे श्रीकृष्ण,
 मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, हे महाप्रभो, मुझे पुत्र प्रदान
 कीजिये ।

चन्द्रसूर्याक्ष गोविन्द पुण्डरीकाक्ष साधव ।

अस्माकं भन्यसत्पुत्रं देहि देव जगत्पते ॥२१॥

कारुण्य रूप पद्माक्ष पद्मनाभ समर्चित ।

देहि मे तनयं कृष्णं देवकीनन्दन ॥२२॥

देवकीसुत श्रीमान् वासुदेव जगत्पते ।

समस्तकामफलप्रद देहि मे तनयं सदा ॥२३॥

भक्तमन्दार गम्भीर शंकराच्युत साधव ।

देहि मे तनयं गोपायवत्सल श्रीपते ॥२४॥

श्रीपते वासुदेवेश देवकीप्रियनन्दन ।

भक्तमन्दारमे देहि तनयं जगतां प्रभो ॥२५॥

जगन्नाथ रामनाथ भूमिनाथ दयानिधे ।
 वासुदेवेश सर्वज्ञ देहि मे तनयं प्रभो ॥२६॥
 श्रीनाथ पद्मपत्राक्ष वासुदेव जगत्पते ।
 देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥२७॥
 दासमन्दार गोविन्द भक्त चिन्तामणे प्रभो ।
 देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥२८॥
 गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रमानाथ महाप्रभो ।
 देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं गतः ॥२९॥
 श्रीनाथ पद्मपत्राक्ष गोविन्द मधुसूदन ।
 मत्पुत्रफलसिद्धयर्थ भजामि त्वां जनार्दन ॥३०॥

हे चन्द्र सूर्य रूपी नेत्रधारी गोविन्द, हे पद्मनयन
 माधव, जगदीश्वर, हमें भाग्यवान पुत्र दीजिये । हे पद्मनाभ,
 हे विष्णु सम्मतिदेवकी पुत्र श्रीकृष्ण, हमें पुत्र प्रदान
 कीजिये । हे देवकीनन्दन, हे लक्ष्मीपते, हे जगत्पति
 वासुदेव, हे अभीष्ट फलदाता श्रीकृष्ण मुझे तनय प्रदान
 कीजिये । हे भक्तों की कामना पूर्ति हेतु कल्प वृक्ष स्वरूप,
 हे गम्भीर स्वभाव वाले अच्युत ! हे मंगलकारी माधव,
 हे ग्वाल बालों पर स्नेह करने वाले हे लक्ष्मीनाथ मुझे
 पुत्र प्रदान कीजिये । हे श्रीपते, हे वासुदेव पुत्र, हे देवकी-
 नन्दन ईश्वर, आप भक्तों के लिए कल्पवृक्ष हो, हे

जगदीश्वर, मुझे पुत्र प्रदान कीजिए । हे जगन्नाथ, हे लक्ष्मीनाथ, हे दयानिधे, हे वासुदेव, ईश्वर एवं सर्वेश्वर प्रभो मुझे पुत्र प्रदान करें । हे कमलनाथ, हे कमलनयन वासुदेव, हे जगत्पति श्रीकृष्ण मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये । हे अपने सेवकों की कामना सिद्धि हेतु कल्पवृक्ष स्वरूप गोविन्द भक्तों की इच्छा पूर्ति हेतु चिन्तामणि रूप श्री कृष्ण ! मैं आपकी शरण में आया हूँ । मुझे पुत्र प्रदान कीजिये । हे पुण्डरीकाक्ष, गोविन्द, हे लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण, हे महाप्रभो, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरण में हूँ । हे कमलापते, कमललोचन, हे मधुसूदन गोविन्द, हे जनार्दन, पुत्र रूप की फल की प्राप्ति के लिए मैं आपकी आराधना करता हूँ ।

भवदीय पद्माभोजे चिंतयामि निरंतरम् ।

देहि मे तनयं सीताप्राणवल्लभ राघव ॥३१॥

रास मत्काम्यवरद पुत्रोत्पत्तिफलप्रद ।

देहि मे तनयं श्रीश कमलासन वंदित ॥३२॥

रास राघव सीतेश लक्ष्मणानुज देहि मे ।

भाग्यवत्पुत्र संतान दशरथात्मज श्रीपते ॥३३॥

देवकी गर्भसंजात यशोदाप्रियतन्दन ।

देहि मे तनयं रास कृष्ण गोपाल माधव ॥३४॥

कृष्ण माधव गोविंद वामनाच्युत शंकर ।
 देहि मे तनयं श्रीश गोप बालक नायक ॥३५॥
 गोपबाल महाधन्य गोविंदाच्युत माधव ।
 देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥३६॥
 दिशतु दिशतु पुत्रं देवकी नन्दनोऽयं ।
 दिशतु दिशतु शीघ्रं भाग्यवत्पुण्यलाभम् ।
 दिशतु दिशतु श्रीशो राघवो रामचन्द्रो ।
 दिशतु दिशतु पुत्र वंश विस्तारहेतोः ॥३७॥
 दीयतां वासुदेवेन तनयो मयिः सुतः ।
 कुमारो नन्दनः सीतानायकेन सदा मम ॥३८॥
 राम राघव गोविंद देवकीसुत माधव ।
 देहि मे तनयं श्रीश गोपबालक नायक ॥३९॥
 वैशविस्तारकं पुत्र देहि मे मधुसूदन ।
 सुतं देहि सुतं देहि त्वामस्मि शरणं गतः ॥४०॥

हे राघव ! सीता जी के प्राणवल्लभ, मैं आपके
 चरणारविन्दों की चिंता में रत हूं आप मुझे पुत्र दीजिए
 ॥३१॥ अभिलाषापति वर और पुत्रोत्पत्ति फल देने वाले हे
 श्रीराम, ब्रह्माजी के द्वारा वंदित हे श्रीपते ! आप मुझे
 पुत्र प्रदान कीजिये ॥३२॥ हे लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता, हे
 सीताजी के प्राणपते ! हे दशरथ सुवन ! हे रघुनन्दन

श्रीराम हे श्रीपते ! आप मुझे भाग्यशाली पुत्र दीजिये । ३३।
 हे देवकी के उदर से अवतीर्ण होने वाले गोपाल ! हे
 यशोदा के सुवन श्रीकृष्ण ! हे माधव ! हे राम मुझे
 पुत्र प्रदान कीजिये । ३४। हे माधव ! हे गोविन्द ! हे
 वामन ! हे अच्युत ! हे कल्याणकारी लक्ष्मीपते ! हे
 गोपुत्रों के अधिनायक ! हे श्री कृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान
 कीजिये । ३५। हे गोपकुमार ! हे सर्वश्रेष्ठ एवं धन्य-धन्य !
 हे गोविन्द ! हे अच्युत ! माधव ! हे वासुदेव ! हे
 जगदीश्वर ! हे श्रीकृष्ण आप मुझे पुत्र प्रदान करिये । ३६।
 हे देवकीनन्दन भगवान मुझे पुत्र प्रदान करें, सन्तान दें,
 शीघ्र ही मुझे भाग्यशाली पुत्र की प्राप्ति करावें ! हे
 सीतावल्लभ ! हे रघुकुल पुत्र श्रीराम ! मुझे मेरी वंश
 वृद्धि के निमित्त पुत्र प्रदान कीजिये । ३७। वासुदेव सुवन
 श्रीकृष्ण सीतावल्लभ श्रीराम मुझे आनन्द देने वाला प्रिय
 पुत्र प्रदान करें । ३८। हे राघव ! हे गोविन्द ! हे देवकी
 नन्दन ! हे माधव ! हे लक्ष्मीनाथ ! हे गोपबालकों के
 नायक श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान करिये । ३९। हे मधु-
 सूदन ! मुझे मेरे वंश का विस्तारक पुत्र प्रदान करिये,
 मुझे पुत्र दीजिये मैं आपकी शरण आया हूँ । ४०।

पुत्रसम्पत्पदातां गोविन्द देव पूजितम् ।

बन्दामहे सदा कृष्णं पुत्रलाभप्रदायिनम् ॥४१॥

करुण्यनिधये गोपीवल्लभाय मुरारये ।
 नमस्ते पुत्रलाभार्थं देहिमे तनय विभो ॥४२॥
 नमस्तस्यै रमेशाय रुक्मिणीवल्लभायं ते ।
 देहि मे मनयं श्रीश गोपबालकनायकः ॥४३॥
 नमस्ते वासुदेव नित्य श्री कामुकाय च ।
 पुत्रदाय च सर्षेन्द्रशायिन रंगशायिने ॥४४॥
 रंगशायिन रमानाथ मंगलप्रदमाधव ।
 देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ॥४५॥
 दासाय मे सुतं देहि दीनमन्दार राघव ।
 सुतं देहि सुतं देहि पुत्र देहि रमापते ॥४६॥
 यशोदातनयाभीष्टपुत्रदानात् सदाः ।
 देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥४७॥
 मद्विष्टदेव गोविन्द वासुदेव जनार्दन ।
 देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥४८॥
 नीतिमान् धनवान् पुत्रो विद्यावश्च प्रजायते ।
 भगवस्त्वत्कृपायाश्च वासुदेवेन्द्रपूजित ॥४९॥
 यः पठेत् पुत्रस्तोत्रं सोऽपि सत्पुत्रवानभवेत् ।
 श्रीवासुदेवकथितं स्तोत्ररत्नं सुखाय चः ॥५०॥
 काले पठेन्नित्यं पुत्रलाभं धनं श्रियम् ।
 ऐश्वर्यं राजसम्पन्नं सद्यो याति न संशयः ॥५१॥
 पुत्रतथा सम्पत्तिं को देने वाले, पुत्र-लाभ कराने वाले

और देवताओं द्वारा पूजित गोविन्द श्रीकृष्ण का हम
 सदैव वन्दन करते हैं। हे प्रभो आप करुणा के निधि
 गोपियों के प्राणवल्लभ एवं मुर नामक दैत्य के शत्रु हैं।
 आपको पुत्र लाभ के निमित्त मेरा नमस्कार है। आप
 मुझे पुत्र दीजिये। हे लक्ष्मीपते हे रुक्मिणी के प्राणनाथ!
 हे भगवान् श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है। हे गोपबालकों
 के नायक श्रीपते ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। सदैव लक्ष्मी
 जी की इच्छा रखने वाले आप वासुदेव को मैं प्रणाम
 करता हूँ। आप पुत्र प्रदान करने वाले एवं सपेन्द्र शेष
 की शय्या पर शयन करते हैं आप शेषशायी भगवान् को
 मेरा नमस्कार है, हे रंगाशायी रमापते ! हे मंगल के
 देने वाले माधव ! हे गोपबालकों के नायक ! हे लक्ष्मी
 नाथ ! आप मुझे पुत्र दीजिये। हे दीनों के कल्पवृक्ष !
 हे राघव ! मुझ दास को पुत्र प्रदान कीजिये। हे रमापते
 मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। मुझे पुत्र दीजिये। पुत्र दीजिये
 हे यशोदा नन्दन, हे मनोभिलाषित पुत्र प्रदान करने में
 तत्पर श्रीकृष्ण ! मैं आपकी शरण आया हूँ मुझे पुत्र
 प्रदान करिये। हे मेरे इष्टदेव गोविन्द। हे वासुदेव।
 हे जनार्दन श्रीकृष्ण। मुझे पुत्र प्रदान करिये मैं आपकी
 शरण में आया हूँ। हे भगवान् हे इन्द्र द्वारा पूजित

वासुदेव ! आपकी कृपा से नीतिवान धनवान और विद्या-
वान पुत्र उत्पन्न होता है । श्री वासुदेव कथित इस पुत्र
स्तोत्र का जो पाठ करता है । वह श्रेष्ठ पुत्र युक्त होता
है । यह स्तोत्र रत्न सुख प्राप्त कराने वाला भी है । इसका
प्रतिदिन पाठ करने वाले को तत्काल पुत्र लाभ होता
है । और शीघ्र ही धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, एवं राज से
सम्पन्न होता है इसमें सन्देह नहीं है ।

—:०:—

हरिवंश पर्व

आदि सृष्टि का वर्णन

एक बार नैमिषारण्य में महामुनि एवं सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता धर्मात्मा शौनक जी ने सूत जी से पूछा हे सूत जी । आपने अनेकों भरतवंशी भूपालों, देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, सर्पों राक्षसों दैत्यों, सिद्धों और यक्षों के अद्भुत कर्मों व धर्मों तथा अत्यन्त श्रेष्ठ जीवन चरित्र का वर्णन किया है तथा आपने अनेकों पुराणों का भी वर्णन किया है । उन पुराणों में कुरुवंशियों का जीवन चरित्र भी वर्णित है, परन्तु वृष्णि और अंधक वंशों के विषय में कुछ भी वर्णन नहीं किया गया । अब आप कृपया दया करके वृष्णि वंशियों व अंधकवंश के विषय में बताने की कृपा करें । सूत जी हरि स्मरण करते हुए बोले—

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुषदुतम् ।

ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्तायक्तं सनातनम् ॥

असच्च सदासच्चैव यद्विश्वं सदासत्तरम् ।

यरावराणां खण्डारं पुराणं परमव्यम् ॥

मंगल व्यापक विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।

नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥

हे शौनक जी—जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप एवं आदि पुरुष थे, जो ईशान, पुरुहुत, ऋत एक, अक्षर, ब्रह्म व्यक्त, एवं अव्यक्त सनातन हैं । असत् एवं सत् हैं, अथवा जो सत् और असत् से परे हैं, जो विश्व रूप हैं, जो पर और अपर के स्रष्टा तथा परम अविनाशी हैं । जो मंगलदायक, मंगलमूर्ति, सर्वव्याप्त वरेण्य और दोष रहित हैं जो स्वभावतः शुद्ध इन्द्रियों के प्रवर्तक, अखिल जगत के उप-देष्टा और सभी पापों के नाशक हैं, उन भगवान हृषिकेश को नमस्कार करते हुए अपने प्रतिपाद्य विषय को कहता हूँ । यह कथा भरतवंशी जनमेजय के अनुरोध पर वैशम्पायन जी ने वृष्णि एवं अंधकवंशियों के श्रेष्ठ चरित्र को कहा था ।

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से कहा—हे राजन् ! जो चरित्र मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ । यह निश्चय ही दिव्य, पापविनाशक तथा अनेक अर्थ से युक्त है । इस कथा को बार-बार प्रेमपूर्वक सुनकर हृदयंगम कर लेने से वंश दृढ़ होता है और स्वर्ग में भी पूजने योग्य होता है । जो अव्यक्त कारण, नित्य, सदसदात्मक एवं प्रधान पुरुष है उसी से इस ईश्वरमय संसार की उत्पत्ति हुई है । अत-

एव हे राजन्; उन्हीं अव्यक्त पुरुष को अभिन्न तेज सम्पन्न, सब जीवों का स्रष्टा और नारायण समझो। उसी महान् ब्रह्मा से अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार से आकाश आदि सूक्ष्म जीव तथा सूक्ष्म जीवों से पंच-तत्व और जरायुज आदि चार प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हुई, इसी को सनातन सृष्टि कहा जाता है।

अब सम्पूर्ण विश्व सृष्टि का पूर्ण वृत्तान्त सुना रहा हूँ। जिसके कीर्तन करने और श्रवण का नाश करने से धन तथा यश की वृद्धि होती है, शत्रुओं का नाश होता है, आयु बढ़ती है और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होती है भगवान् ने सर्वप्रथम जीवों को प्रकट करके अनेक प्रकार की भौतिक प्रजा को उत्पन्न करने का विचार किया। अतः सर्वप्रथम प्रभु ने जल की उत्पत्ति करके उसमें अपना वीर्य डाल दिया। वह वीर्य हिरण्य वर्ण का अण्डस्वरूप हो गया। उस अण्डे से स्वयम्भू कहे जाने वाले ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी ने अण्डे में एक वर्ष तक निवास करने के पश्चात् उसे दो खण्डों में विभाजित कर दिया। जिसके एक खण्ड से पृथ्वी तथा दूसरे खण्ड से देवलोक की रचना की। उन दोनों खण्डों के मध्य आकाश की रचना कर पृथ्वी को जल पर स्थापित कर दिया, फिर सूर्य और दशों दिशाओं की रचना की। उसी अण्ड में रति

विषय प्रीति के रहित पिण्ड सृष्टि की रचना के विचार से काल, मन, वचन, काम, क्रोध एवं अनुराग की रचना की ।

फिर ब्रह्माजी ने अपने मन से मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु एवं वशिष्ठ इन सप्तऋषियों को प्रकट किया इन सप्तऋषियों ने अपने को गृहस्थ ब्राह्मण माना तथा ब्रह्मा जी के द्वारा ही उत्पन्न सनकादि ऋषियों की अवहेलना कर वेद मार्ग को ही श्रेष्ठ समझा । फिर ब्रह्मा जी ने परम क्रोधी रुद्र को उत्पन्न किया तथा मरीचि आदि के पूर्वजों ने सनत्कुमार की उत्पत्ति की । सप्तऋषियों ने तथा रुद्र ने सन्तानें उत्पन्न कीं । परन्तु सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद और स्कन्द ने अपने तेज को नियन्त्रित करके ब्रह्मचर्य का पालन किया । सप्तऋषि और रुद्र इन आठों ब्रह्मपुत्रों ने दिव्य, महान, कर्मवान तथा सन्तानवान् सात वंशों की उत्पत्ति की, जिसमें यश, आदित्यासुर और कश्यप आदि महर्षि थे । फिर उन्होंने विद्युत, वज्र मेघ, रोहित इन्द्र धनुष तथा आकाशचारी पक्षियों की रचना की । तथा यज्ञ कार्य की सम्पन्नता के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की रचना की ।

फिर ब्रह्मा जी ने अपने मुख से देवगण, वक्षस्थल से

पितरगण, उपस्थ से मनुष्य गण और जघन भाग से असुर-
गण की रचना करके साध्यों की रचना की। इस प्रकार
ब्रह्मा जी ने अपने अनेक अंगों से अनेक जीवों की रचना
की तथा वशिष्ठ नामक प्रजापति की भी रचना की।

इस प्रकार की सृष्टि रचना के उपरान्त भी ब्रह्माजी
ने प्रजा वृद्धि मन से होते न देखकर खिन्न हो गये तथा
अपने शरीर को दो खण्डों में विभाजित कर दिया।
जिसके एक भाग से पुरुष तथा दूसरे भाग से स्त्री की
रचना हुई। और विभिन्न प्राणियों की रचना कर अपने
प्रभाव से ही पृथ्वी व देवलोक को ढक लिया। भगवान्
विष्णु ने विराट की रचना की, विराट ने पुरुष को रचा,
वह पुरुष मनु थे, जिन्होंने मन्वन्तर क्रम चलाया। भगवान्
विष्णु के द्वारा हिरण्य गर्भ से उत्पन्न सृष्टि को आपव
कहा गया है। आपव से उत्पन्न होने वाली प्रजा अयोनिज
थी, इसके पश्चात् विष्णु ने ही मनु के द्वारा योनिज सृष्टि
प्रारम्भ की। इस सृष्टि में स्त्री संज्ञक दूसरा अन्तर उप-
स्थित हो गया। इसी से मन्वन्तर शब्द चल पड़ा। इस
प्रकार इस आदि सृष्टि को जान लेने वाला मनुष्य आयु-
ष्मान्, कीर्तिमान्, धनवान्, पुत्रवान् और विद्वान् हो जाता
है तथा मनोकामना पूर्ण होती है।

—:०:—

स्वायम्भुव का वंश दत्त की उत्पत्ति

वैशम्पायन जी ने अयोनिज और योनिज दोनों प्रकार की सृष्टि वर्णन करते हुए कहा कि इसके पश्चात् आपव प्रभावित हुए, अयोनिजा शतरूपा नाम की कन्या उनकी पत्नि हुई। आपव की महिमा व धर्म के प्रभाव के कारण शतरूप अनेक रूपों में हुई। उसने दस हजार वर्ष तक कठिन तपस्या की। फिर सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से वह अपने वीर्यवान् पति के पास गई। वैशम्पायन जी ने कहा, 'हे जनमेजय स्वायम्भुव मनु को ही विराट् पुरुष कहा गया है। शतरूपा ने उस विराट् पुरुष के संसर्ग से वीर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया जिससे विप्रवत् और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा काम्या नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई। प्रियव्रत और काम्या के सम्पर्क से काम्या के चार पुत्र सम्राट्, कुक्षि, विसट् तथा प्रभु थे। प्रजापति अत्रि का उत्तराधिकारी उत्तानपाद बना। उत्तानपाद की पत्नि सुनृता से चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम ध्रुव, कीर्तिमान, शिव और अयस्पति था। ध्रुव ने यहाँ यश की प्राप्ति हेतु तीन हजार वर्ष तक तपस्या की। फलस्वरूप परमात्मा ने उन्हें सप्तऋषियों से भी ऊँचे, अचल और श्रेष्ठ लोक प्रदान किया जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। ध्रुव के तीन पुत्र हुए। श्लिष्टि (ध्रुव का पुत्र)

ने सुच्छाय नाम की कन्या से पाँच पुण्यात्मा पुत्रों की उत्पत्ति की, जिनके नाम थे रिपु, रिपुञ्च, पुष्य, वृकल और वृकतेजस । रिपु की पत्नी वृहत ने सभी देवताओं के तेज से सम्पन्न चाक्षुष नामक पुत्र को जन्म दिया । चाक्षुष का विवाह वीरण सुता पुष्करिणी से हुआ । पुष्करिणी के गर्भ से मनु की उत्पत्ति हुई । मनु ने अरण्ड प्रजापति की पुत्री नड्वडा के गर्भ से दस पुत्र उरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान, कवि, अग्निष्टुप, अतिरात्र, सुद्युम्न व अभिमन्यु थे । उरु ने आग्नेयी के गर्भ से अंग, सुमनस, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय नामक महातेजस्वी छः पुत्र उत्पन्न किये । अंग ने यम की पुत्री सुनीता के गर्भ से वेन नामक एक ही पुत्र को जन्म दिया । वेन देवताओं का द्रोही हुआ । जिससे ऋषि गणों ने क्रोधित होकर उसकी भुजाओं का मन्थन किया, जिससे पृथु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ।

पृथु की उत्पत्ति से ऋषिगण यह जानकर अति प्रसन्न थे कि पृथु उत्तम प्रजापालक तथा अत्यधिक यशस्वी होगा । ऋषियों के आशानुरूप पृथु ने धनुष कवच एवं खड्ग धारण कर बहुत समय तक पृथ्वी की रक्षा की । राजा पृथु ने ही राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान सर्वप्रथम किया था । उनके यज्ञ में अग्नि के द्वारा सूत और मागध की

उत्पत्ति हुई थी । तथा प्राणियों के जीवन हेतु देवता, ऋषि, पितर, दानव, गंधर्व, अप्सरा, सर्प, यज्ञ, लता, पर्वता आदि से मिलकर और पुराणान्तकों में देवताओं ने अपने सजातियों को बछड़ा बनाकर गौ रूपधारण की हुई पृथ्वी का दोहन किया । जिससे पृथ्वी ने अन्न आदि प्रदान किया । राजा पृथु के दो पुत्र अन्तर्धान और पाली हुए । अन्तर्धान के द्वारा शिरकण्डिनी के गर्भ से हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । हविर्धान के गर्भ से पुत्र प्राचीन, बर्हि, शुक्ल, गण, कृष्ण, व्रज और अजित थे । प्राचीन बर्हि अपने पिता से भी अधिक शक्तिशाली व सामर्थ्यवान शासक हुए । प्राचीन बर्हि के द्वारा किये गये यज्ञों के पूर्व को अग्रभाग करके बिछाये गये कुशों से सम्पूर्ण पृथ्वी ढक गई थी । इसीलिये वे इस संसार में प्राचीन बर्हि के नाम से प्रसिद्ध हुए । इनके शासन काल में प्रजा की हर प्रकार से वृद्धि हुई । इनके पुत्र प्रचेता ने समुद्र में सोकर दस हजार वर्षों तक तपस्या की । अतः पृथ्वी शासक विहीन हो गई तथा प्रजा भी नष्ट हो गई । वायु का प्रवाह रुक गया । घने बादलों के कारण दस हजार वर्षों तक पृथ्वी पर अन्धेरा ही छाया रहा । इससे तपस्वी प्रचेतागणों ने क्रोधित होकर अपने मुख से अग्नि और वायु को उत्पन्न किया । वायु अपने तीव्र प्रवाह से वृक्षों को सुखाने लगा

तथा अग्नि उन सब को भस्म करने लगी । बहुत थोड़े वृक्ष बच गए । अन्ततः वृक्षाधिपति सोम ने प्रचेताओं के पास जाकर क्रोध निवारण के लिए प्रार्थना की कि हे प्रचेताओं ! अब अपने द्वारा उत्पन्न अग्नि और वायु को शान्त करो अन्यथा सम्पूर्ण पृथ्वी वृक्षहीन हो जायेगी । तथा वृक्षों की रत्न रूप मारिषा नाम की कन्या से आप पाणिग्रहण कीजिये । इस कन्या के द्वारा ही चन्द्रवंश की वृद्धि होगी । आपके आधे तपोबल तथा मेरे आधे तेज के संयोग से वृक्षप्रजापति की उत्पत्ति होगी । जो हमारे तपोबल के कारण अग्नि के समान तेज वाला होकर इस दग्ध पृथ्वी और प्रजा की वृद्धि करेगा ।

प्रचेताओं ने मारिषा को पत्नी रूप में स्वीकार किया । मारिषा के गर्भ से प्रचेताओं और चन्द्रमा के अंश से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति हुई । दक्ष प्रजापति ने चन्द्रवंश की अभिवृद्धि करने वाले अनेक पुत्रों तथा दो पाँच और चार पाँच वाले अनेक जीवों की रचना की तथा बाद में कुछ कन्याओं को भी उत्पन्न किया । जिसमें दस पुत्रियों को धर्म के साथ, तेरह पुत्रियों को कश्यप के साथ विवाह करके नक्षत्र नाम की शेष पुत्रियों को चन्द्रमा को सौंप दिया । उन कन्याओं ने देवता, पक्षी, गौ, सर्प, दैत्य, गंधर्व, अप्सरा एवं अनेकों प्रकार के प्राणियों को जन्म दिया ।

इसके पूर्व मनन, दर्शन और स्पर्शन के द्वारा ही सन्तान की उत्पत्ति होती थी। दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति के बाद मैथुन द्वारा सृष्टि होने लगी।

—:०:—

दक्ष द्वारा मरुतों की उत्पत्ति

सृष्टि का वर्णन करते हुए जनमेजय की प्रार्थना पर वैशम्पायन जी ने आगे कहा - दक्ष प्रजापति ने प्रथम ऋषि, देवता, गंधर्व, असुर-राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पक्षी, पशु और सर्पों की मानस सृष्टि की। परन्तु इससे मानव जीवों की यथेष्ट वृद्धि न देखकर मैथुनी सृष्टि को ठीक समझा। अतः वीरण प्रजापति की तपस्विनी पुत्री शसिक्ली से विवाह किया। उससे दक्ष ने पांच हजार पुत्रों की उत्पत्ति की, जिससे कि वंश वृद्धि हो सके। परन्तु नारद ने उन पुत्रों को ऐसा पाठ पढ़ाया कि सभी पुत्र नष्ट हो गये। इससे दुःखी होकर दक्ष ने नारद को शाप दिया और नारद नष्ट हो गये।

—:०:—

नारद जी का पुनर्जन्म

पितामह ब्रह्मा ने सर्वप्रथम नारद को उत्पन्न किया था, परन्तु नारद ने दक्ष प्रजापति के अप्रतिम शक्तिशाली

पुत्रों हर्यश्व और शवश्वला को ऐसा उपदेश दिया कि वे गृह त्यागकर वनवासी हो गए। इससे दक्ष प्रजापति को अत्यन्त क्रोध हुआ उन्होंने शाप देकर नारद को नष्ट कर डाला। तभी ब्रह्माजी ने मरीच्यादि ऋषियों के साथ पहुंच कर उनसे नारद को पुनर्जीवित करने के लिए निवेदन दिया। तब दक्ष प्रजापति ने ऋषियों से विचार विमर्श कर एक कन्या देने का निश्चय किया, जिसके द्वारा नारद जी की उत्पत्ति होगी। अतएव दक्ष प्रजापति ने वह कन्या कश्यप के निमित्त ब्रह्मा जी को दे दी। दक्ष के शाप-भय के कारण महर्षि कश्यप ने वह कन्या स्वीकार कर ली और उसी से नारद जी का पुनर्जन्म हुआ।

दक्ष प्रजापति ने सवलाश्वों के नष्ट होने के बाद अपनी पत्नी वीरणी के गर्भ से साठ पुत्रियों को उत्पन्न किया। उन पुत्रियों का कश्यप, चन्द्रमा, धर्म तथा अन्य ऋषियों के साथ विवाह कर दिया। उन्होंने दस पुत्रियों को धर्म को, तेरह पुत्रियों को कश्यप को, सत्ताईस पुत्रियों को चन्द्रमा को, चार पुत्रियों को अरिष्टनेमि को, दो भृगु को, दो अंगिरा को तथा दो कृशाश्व को ब्याह दीं। धर्म की पत्नियों के नाम अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरु-त्वती, संकल्पा मुहूर्ता, साध्वी और विश्वा थीं। विश्वा से

विश्वदेव, सांध्या से सांध्यगण, सारुत्वती से सारुत्वान इसी प्रकार भानुगण, मुहूर्त्तगण लम्बा से घोष, यानी से लागोथी तथा अरुन्धती से पृथ्वी की वस्तुयें उत्पन्न हुई। संकल्पा से सभी निवास करने वाला संकल्प, यामी की कन्या नागरीची से वृषलम्बा उत्पन्न हुई। चन्द्रमा की पत्नियां देव ज्योतिप्रद नक्षत्रों के नाम से प्रसिद्ध हुई। उनसे अत्यन्त तेजस्वी एवं ख्याति युक्त देवता अष्टवसु आप, ध्रुव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्युष और प्रभाव हुए। आपके चार पुत्र वैडूर्य, शान्त श्रम और मुनि हुए। ध्रुव का पुत्र लोक नायक काल हुआ। चन्द्रमा के पुत्र भगवान वर्चा हुए। धर के पुत्र शिशिर, प्राण और रमण हुए। शिवा के गर्भ से अनिल के दो पुत्र मनोजव तथा अविज्ञात गति हुए। अग्नि के पुत्र कुमार हुए। इनका पालन कृतिकाओं ने किना इसलिये इन्हें कार्तिकेय भी कहा जाता है, तथा कार्तिकेय के तीन छोटे भाई शाल, विशाल और नैगमेय हुए।

प्रत्युष के पुत्र देवल, देवल के दो पुत्र तपस्वी और क्षमाशील हुए। देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की बहिन योगसिद्धा तथा ब्रह्मचारिणी नाम की थीं। जो आठवें वसु प्रभास की पत्नी हुई, इसी के गर्भ से प्रजापति विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई। जिन्होंने विश्व में सहस्रों प्रकार के

शिल्प कला का विकास किया। जैसे अस्त्र-शस्त्र देवताओं के लिए आभूषण विमान व रथ वाहन आदि। उन्हीं शिल्पकलाओं का अनुसरण कर आज भी असंख्य लोग जीविकोपार्जन करते हैं।

सुरभि ने भगवान् शंकर को प्रसन्न करके कश्यप ऋषि के द्वारा ग्यारह रुद्र हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रेवत, मृगव्याध सर्प और कपाली नामक पुत्र रूप में प्राप्त किये।

कश्यप ऋषि की स्त्रियां व उनके संतानों के नाम

कश्यप ऋषि की पत्नियां अदिति, दनु, अरिष्ठा, सुरशा, खशा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि नाम की थीं। तुषित नामक बारह देवता लोग वैवस्वतर मन्वन्तर में मरीचि पुत्र कश्यप के द्वारा अदिति के गर्भ से प्रकट हुए। इस प्रकार इन्द्र, विष्णु, अर्यमा, धाता, त्वष्ठा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश और भाग नामक बारह देवता हुए हैं। यही द्वादश आदित्य भी कहलाये हैं।

चन्द्रमा की सत्ताइस पत्नियां थीं उनके गर्भ से अनेकों सन्तानें उत्पन्न हुईं। अरिष्नेमी की सोलह स्त्रियां थीं।

जिनसे वज्र, मेघ, इन्द्र, धनुष और विद्युत् की उत्पत्ति अत्यन्त ज्ञानी व तेजस्वी पुत्र से हुई। प्रत्यंगिरा के पुत्र सभी ऋक् थे। देवर्षि कृशाश्व के पुत्र दिव्यशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। वसु आदि तैंतीस देवताओं को कामज कहा गया है।

अदिति के गर्भ से कश्यप के दो अत्यन्त ही बलवान् पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए, तथा सिंहिका नामक एक पुत्री भी हुई। सिंहिका का विवाह विप्रचित्ति के साथ हुआ। सिंहिका के गर्भ से दस हजार अत्यन्त ही बलवान् पुत्र तथा असंख्य नाती-पोते हुए।

हिरण्यकशिपु के चार पुत्र अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और सह्लाद हुए। ह्लाद के दो पुत्र हनद और सह्लाद के दो पुत्र सुन्द, निसुन्द हुए। अनुह्लाद के तीन पुत्र आयु, शिवि और काल हुए। प्रह्लाद के एक ही पुत्र विरोचन तथा विरोचन के पुत्र बाण, धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, तापन, कुम्भ-नाम, गर्दमाक्ष और कुशि आदि सौ पुत्र हुए। जिनमें बाण शिव का परम भक्त था। जो बाणासुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाणासुर की पत्नी लोहित के गर्भ से इन्द्रदमन नामक एक पुत्र हुआ। हिरण्यकशिपु की सारी सन्तानें असुर हुईं हिरण्याक्ष के पाँच पराक्रमी पुत्र भर्भर, शकुनि, भूत, सन्तापन, महानाभ और कालनाभ हुए। कश्यप की

भार्या दनु से अत्यन्त तेजस्वी एवं पराक्रमी सौ पुत्र उत्पन्न हुए ।

पृथु-उपाख्यान

ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को सब ब्राह्मणों वृक्षों नक्षत्रों, ग्रहों, यज्ञों और तपस्याओं का अधिपति बनाया । वरुण को जल का राजा, कुबेर को धनाधिपति, वृहस्पति को सम्पूर्ण विश्व का अधिपति, भृगुवंशियों के अधिपति शुक्राचार्य, आदित्यों के अधिपति विष्णु, वसुओं के अधिपति इन्द्र, और दैत्यों के अधिपति प्रह्लाद को बनाया । पितरों के अधिपति सूर्य पुत्र यम को तथा षोडश मातृकाओं, व्रतों मंत्रों, गौओं, यक्षों, राक्षसों, राजाओं तथा साध्यों के अधिपति भगवान् विष्णु को व रुद्रों के अधिपति भगवान् शिव को किया । सब पर्वतों का राजा हिमवान् हिमालय, नदियों का अधिपति समुद्र, गंधों वायुओं, अशरीरी प्राणियों और शब्दों के राजा पराक्रमी वायु को, गन्धर्वों का राजा चित्ररथ को, नागों का राजा वासुकि को, सर्पों का राजा तक्षक को, हाथियों का राजा ऐरावत को, घोड़ों के राजा उच्चैश्चवा को पक्षियों का राजा गरुड़ को, मृगों का राजा सिंह को गौओं का राजा वृषभ को वृक्षों का राजा पीपल

को बनाया सभी समुद्रों, नदियों, मेघों और आदित्यों का अधिपति पर्जन्य को सभी दन्तयुक्त प्राणियों का राजा शेष को बनाया ।

गन्धर्वों और अप्सराओं का राजा कामदेव तथा ऋतु सास पक्ष दिन रात मुहूर्त पर्व कला काष्ठा अयन योग एवं गणित का अधिपति संवत्सर हुआ । दिशाओं का राजा दिग्पालों को नियुक्त किया । जैसे-जैसे वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वा को पूर्व दिशा का कर्दम के पुत्र शंखपद्म को दक्षिण दिशा का राजपुत्र अच्युत केतुमान को पश्चिम को और पर्जन्य प्रजापति के पुत्र दुर्धर्षि हिरण्यरोमा को उत्तर दिशा का दिक्पाल बनाया । तभी से ये सभी राजा पृथु की अधीनता स्वीकार अपने कार्यभार को ग्रहण करते तथा ग्रामों नगरों और द्वीपों सहित पृथ्वी का धर्म पूर्वक पालन करते आ रहे हैं ।

वैशम्पायन जी ने पृथु का चरित्र सुनाते हुए जनमेजय से कहा हे राजन् ! पृथु आख्यान अपवित्र, क्षुद्र, कुशिष्य, व्रत विहीन, कृतघ्न और दुष्ट मनुष्य को कभी नहीं सुनाना चाहिए । तथा इसके श्रवण से स्वर्ग, यश एवं दीर्घायु प्राप्त होती है यथा—

नाशुचेः क्षुद्रमनसे कुशिष्यायाव्रताय च ।

कार्तनीयमिदं राजन्कृतधनायाहिताय वा ॥२७॥

स्वर्गं यशस्यमायु यं धर्म वेदेई सम्मितम् ॥२८॥

—:०:—

वेन का नाश तथा पृथु का जन्म

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से आगे कहा—हे राजन अति प्राचीन काल में क्षत्रीवंश में एक अंग नामक राजा हुए जो सब प्रकार से समर्थ एवं धर्म तथा प्रजा की रक्षा करने वाले थे । मृत्यु सुता सुनीता के गर्भ से उनके द्वारा वेन नामक पुत्र हुआ, जो कि तत्वों से अनभिज्ञ, धर्मच्युत, कुत्सित वृत्तियों से युक्त तथा नाना प्रकार के दोषों से पूर्ण था । उसके शासन काल में वेदों का अध्ययन, ओंकार का उच्चारण आदि धार्मिक कार्य करने की मनाही थी । वह यज्ञ हवन करने की मनाही करते हुए कहता था । मैं ही यज्ञ हूं, मैं ही यज्ञकर्ता एवं सबका साध्य देवता हूं । जो कुछ भी यज्ञ करना हो मेरे लिए किया जाना चाहिए ।

वेद के मर्यादाहीन कार्यों से तंग आकर मरीच्यादि ऋषिगणों ने उसे विविध प्रकार से समझाते हुए अधर्म को त्यागने के लिए कहा । परन्तु वेन ने ऋषियों की खिल्ली उड़ाते हुए अहंकार पूर्ण शब्दों में अपने को आकाश और

पृथ्वी को अवरुद्ध करने में समर्थ तथा पृथ्वी को भस्म कर देने अथवा उसे जल में प्रवाहित कर देने में समर्थ बताया। तब वेन के इस अपमान जनक दुर्व्यवहार से सभी ऋषियों ने क्रोध करके राजा वेन को पकड़कर उसके दक्षिण जाँघ को मथने लगे। जिस कारण उसे बहुत ही कष्ट हुआ। कुछ देर तक जाँघ का मन्थन करते रहने से जाँघ से ही एक बौना और कृष्णवर्ण का मनुष्य उत्पन्न हुआ। जो भय से काँपते हुए हाथ जोड़े वह ऋषियों के समक्ष खड़ा हो गया। महर्षि अत्रि ने उसे निषीद अर्थात् बैठ जाने को कहा। इस निषीद शब्द के कारण ही वह पुरुष निषाद वंश का कर्त्ता बना तथा उसी के द्वारा धींवर जाति की उत्पत्ति हुई है। इसी के द्वारा ही तुषार आदि अधार्मिक एवं असभ्य जातियाँ उत्पन्न होकर विन्ध्य पर्वत पर निवास करने लगीं।

क्रोधित ऋषिगण अब राजा वेन की दाहिनी भुजा का मन्थन करने लगे। उससे अग्नि के समान तेज वाला, प्रजा की रक्षा हेतु धनुष-बाण व कवच धारण किये हुए मनुष्य उत्पन्न हुआ। जिसका नाम पृथु पड़ा। राजा वेन स्वर्ग को सिधार गया। महात्मा पृथु के कारण ही राजा वेन नरक का भागी बनने से बच गया। सभी देवतओं के लोक पितामह ब्रह्मा तथा अन्य सभी देवगण, प्रजाजन समूह व

अन्य सभी प्राणियों ने वहां उपस्थित होकर तेजस्वी राजा पृथु को प्रजा के पालन-पोषण हेतु राज्य-पद पर अभिषेक किया ।

राजा पृथु के राज्य में सभी प्रजा व प्राणी सर्व प्रकार से सुखी जीवन यापन कर रहे थे । पृथ्वी जोते जाये बिना ही अन्न से परिपूर्ण रहती थी । वृक्षों के पत्तों से मधुधार टपकती रहती थी । गौएँ भरपूर दूध देती थीं । राजा पृथु ने ब्रह्मयज्ञ प्रारम्भ किया । उस ब्रह्मयज्ञ में जो कुण्ड सोम-रस भरा था उससे अत्यन्त मेधावी सूत व मागध उत्पन्न हुआ । ऋषियों के निर्देश पर सूत व मागध ने राजा पृथु की स्तुति निम्न प्रकार की । वे बोले— हे वेन पुत्र महाराज पृथु ! आपके समान सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ तथा दानशील कोई अन्य नहीं है । आप विजय युक्त क्षमाशील, पराक्रमी तथा देवों पर शासन करने वाले हैं । आप धर्म के ज्ञाता, कृतज्ञ, दयालु, मधुरभाषी, सम्माननीय यज्ञशील ब्राह्मणभक्त, शांत व्यवहार कुशल तथा अपने धर्म में तत्पर रहने वाले हैं । इस स्तुति से प्रसन्न होकर राजा पृथु ने सूत को अनूप देश तथा मागध को मगध देश प्रदान किया । सभी प्रजाजनों ने राजा पृथु को घेरकर जीविका का प्रबंध करने के लिए निवेदन किया ।

प्रजा के कल्याण के लिए राजा पृथु धनुष-बाण धारण

कर पृथ्वी को पीड़ित करने लगे । पृथ्वी गाय का रूप धारण कर तीनों लोकों में छिपने के लिए भागने लगी । राजा पृथु पीछा करते जा रहे थे । कहीं भी पृथ्वी पृथु के भय से मुक्त होने के लिए सुरक्षित स्थान न पा सकी । अन्ततः पृथ्वी भय से कांपती हुई राजा पृथु से प्राणों की भीख मांगने लगी । बोली—हे राजन् आप मेरा वध करके अपनी प्रजा की रक्षा में समर्थ नहीं होंगे । केवल आपके हाथ में पश्चाताप के सिवा कुछ अन्य प्राप्त नहीं होगा । अतएव अपने क्रोध को शांत करें । पशु पक्षी योनि वाली स्त्री का वध कर अपने धर्म का त्याग न करें ।

राजा पृथु पृथ्वी से बोले—हे वसुन्धरे, सुनो, जो व्यक्ति अपने या दूसरों की भलाई के लिए एक अनेकों जीवों को मारता है वह पापी होता है । परन्तु किसी एक को मारने से बहुत लोगों को लाभ होता हो तो उसे मारने में पाप नहीं लगता । अतः यदि तुम मेरी आज्ञा नहीं मानोगी तो प्रजाजन की भलाई हेतु तुम्हें मारने में मैं संकोच नहीं करूँगा । तुम्हें मारकर अपने बाणों से प्रजाजन की रक्षा करूँगा । यदि तुम मेरी कन्या बनो, तो मैं अपना बाण अपने तरकस में रख लूँगा । पृथ्वी बोली—हे

राजन्, जैसा आप चाहते हैं वैसा मैं करने को तैयार हूँ । पहले आप एक सुन्दर बछड़ा बनायें । जिसे देखकर मेरे हृदय में उसके प्रति मातृ स्नेह उत्पन्न होवे और मेरे स्तनों से दूध टपकने लगे । फिर मुझे समतल करें जिससे कि मेरे स्तन से गिरा हुआ दूध सभी दिशाओं में समान रूप से फैल सके । पृथ्वी के इस वचन को सुनते ही राजा पृथु ने पृथ्वी के तल को समतल करने के लिये अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वतों को उठाकर ऊपर नीचे रखकर समतल कर दिया । पर्वत अत्यन्त ऊँचे हो गये । इससे पूर्व पृथ्वी पर न कोई नगर था न गांव, एवं गौरक्षा, कृषि, वाणिज्य, मार्ग, सत्य मिथ्या लोभ और मात्सर्य कुछ भी नहीं था ।

पृथ्वी के परामर्श से प्रभु ने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाकर स्वयं ही पृथ्वी से अन्नरूप दूध का दोहन किया । तभी से प्रजा अन्न के द्वारा जीवन यापन करती है । ऋषियों ने अंगिरा पुत्र बृहस्पति को दोग्धा तथा चंद्रमा को बछड़ा बनाकर चारों वेद रूपी पात्र में तप रूप शाश्वत ब्रह्म दूध को प्राप्त किया । देवताओं ने सूर्य को दोग्धा और इन्द्र को बछड़ा बनाकर जीवन का रूप यज्ञीय हवि स्वरूप दुग्ध को दोहन किया । नागों के तक्षक को बछड़ा एवं ऐरावत तथा धृतराष्ट्र को दोग्धा बनाकर पृथ्वीपात्र में

विषरूपी दूध को दूहा । असुरों ने पृथ्वी का दोहन करके माया रूपी दूध को प्राप्त किया, जिसके कारण असुर गण मायावी तथा अत्यन्त पराक्रमी होकर जीवन यापन करते हैं । इसके पश्चात् यक्षों ने पृथ्वी का दोहन करके अविनाशी दूध का दोहन किया । राक्षसों और पिशाचों ने मृतकों के कपाल में रुधिर का दोहन किया, गन्धर्वों और अप्सराओं ने पद्मपात्र रूपी पात्र में अत्यन्त पवित्र गन्ध द्रव्यरूपी दूध का दोहन किया । पर्वतों ने शिला को पात्र हिमालय को बछड़ा तथा सुमेरु को दोग्धा बनाकर नाना प्रकार के रत्नों व औषधियों को प्राप्त किया । वृक्षों ने भी पलाश पत्रों से पृथ्वी का दोहन कर पृथ्वी से छिन्न दग्धांखुर रूपी दूध को प्राप्त किया जोकि पृथ्वी के समान ही अत्यन्त पवित्र एवं पोषक है । इस प्रकार राजा पृथु के प्रभाव से पृथ्वी अन्न आदि बहुमूल्य चीजें उत्पन्न करने लगी तथा उस पर नगरों व राज्य की भी स्थापना हुई । पृथ्वी को राजा पृथु द्वारा अपनी कन्या मान लिए जाने के कारण ही इसका नाम पृथ्वी पड़ा ।

—:०:—

मन्वन्तर वर्णन

जनमेजय के विशेष आग्रह पर वैशम्पायन जी ने मन्वन्तरों का संक्षेप में निम्न प्रकार वर्णन किया । बोले,

हे राजन् ! स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सार्वणि, भौत्य, रीच्य, ब्रह्म सार्वणि, मेरु सार्वणि तथा दक्ष सार्वणि इस प्रकार चौदह मनु हुए हैं । जिनमें से छः का कार्य व्यतीत हो चुका है अब सातवां मन्वन्तर चल रहा है । शेष सात आगे होंगे । १. स्वायम्भुव मन्वन्तर में मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वशिष्ठ में सातों ब्रह्मा के पुत्र हुए, इस मन्वन्तर में याम नामक देवता होते हैं । (उत्तर दिशा में स्थित सप्तर्षि इनसे अलग हैं ।) स्वायम्भुव मनु के आग्निध्र, अग्निवाहु, मेधा, मेधातिथि वसु, ज्योतिषमान, द्युतिमान, दृव्य, सवन और पुत्र ये दस पुत्र हैं । स्वारोचित मन्वन्तर में और्व स्तम्भ, कश्यप, प्रणि, बृहस्पति, दक्ष, अत्रि और च्यवन ऋषि हुए । इस मन्वन्तर में तुषित नामक देवता रहते हैं । स्वारोचिष के पुत्र हविध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अय, स्म, प्रथित, नभस्य, नभ और ऊर्ज ये पुत्र हुए । ३. उत्तम मनु के पुत्र ईष ऊर्ज, तनुर्ज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह नभस्थ, नभ हैं । इस मन्वन्तर के देवता भानु गण हैं । ४. इस मन्वन्तर में सात ऋषि काक, पृथु-अग्नि, जह्नु, धाता, कपिवान् एवं अकपिवान हैं तथा पुराणों में अनेक पुत्रों तथा पौत्रों का भी उल्लेख है । इस

मन्वन्तर के देवता सत्य हैं। तामस मनु के पुत्र द्युत, तपस्य, सुतवा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, अकल्माष, तन्वी, धन्वी, और परन्तप हैं। ५. इस मन्वन्तर में वेद-वाहु, यदुध्न, वेदशिरा, हिरण्यरोमा पर्जन्य उधर्ववाहु और सत्यनेत्र में सात ऋषि हैं। इसके मनु रैवत है तथा इस मन्वन्तर के देवता रजोगुणी होते हैं। रैवत मनु के पुत्र धृतमान, अवग्रय, नक्त, तत्त्वदर्शी, निरुन्मुक अरण्य, प्रकार निर्मोह, सत्यवाक्, और कृति हैं। ६. चाक्षुष मन्वन्तर के ऋषि भृगु, नभ, विवस्वान, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु ये सात ऋषि हैं। इस मन्वन्तर के देवता आद्य, प्रभूत ऋषि, ऋषभ, और लेखा पाच हैं। महर्षि अङ्गिरा के उरू आदि ही दस पुत्र छठवें मनु के पुत्र कहे गए हैं। ७. वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षि अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप गौतम, भारद्वाज विश्वामित्र और जमदग्नि हैं। इसके देवता साध्यगण, विश्वेगण, रुद्रगण, वसुगण, आदित्य गण, अश्विनी द्वय हैं तथा वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वांकु आदि दस पुत्र हैं। हे राजन् इन सभी ऋषियों के पुत्र पौत्रादि वंशधर सभी दिशाओं में व्याप्त हैं इन मन्वन्तरों में लोकों की व्यवस्था व सुरक्षा के लिए उनचास वायु स्थित रहते हैं। एक मन्वन्तर के समाप्त होने पर उस मन्वन्तर के सभी देवता आदि ब्रह्मलोक को चले जाते हैं

तथा उनके रिक्त स्थानों पर दूसरे मन्वन्तर के ऋषि देवता आदि आ जाते हैं ।

सार्वणि मनु के पांच पुत्र माने गए हैं । सुमेरु पर्वत पर तप करने के कारण मेरु सार्वणि के नाम से इनकी प्रसिद्धि है । ये दक्ष की लड़की के लड़के थे । जो अत्यन्त तेजस्वी थे । रुचि प्रजापति के पुत्र रौत्य भी मनु हुए हैं, शेष मनुओं की उत्पत्ति भूति के गर्भ तथा भूति प्रजापति के पुत्र भौत्य से हुई । इसलिए इनकी प्रसिद्धि भौत्य रूप में हुई । सार्वणि मन्वन्तर में राम, व्यास, दीप्तिमान, भारद्वाज अश्वत्थामा शरद्धान गालव, रुद्र ब्रह्म के समान तेजस्वी ऋषि होंगे । सार्वणि मनु ने दस पुत्र वरीयान, अवरीयान, सम्मत, धृतिमान वसु, चरिष्णु, अघृष्ण, आर्य बाज और सुमति होंगे । प्रथम सार्वणि व मुनियों के नाम मेधातिथि, वसु ज्योतिष्मान, अंगिरा, सवन, हव्यवाहन और पौलहये सात ऋषि होंगे । इस मन्वन्तर के तीन देवता होंगे । प्रथम सार्वणि के नौ पुत्र धृष्टकेतु, पंचहोत्र निहारकृति, पृथु, श्रद्धा, भूरिधाता, ऋचीक, और बृहत होंगे । १०. दसवें मन्वन्तर में हविष्यमान सेकुति, त्रयो-मूर्ति अष्टम, प्रभृति, नभोग और सत्य ऋषि होंगे । इस मन्वन्तर के दो प्रतिपाद्य देवता प्रतिपाद्य माने जायेंगे । दक्ष सार्वणि के दस पुत्र उत्तमौजा, निकुर्वज, वीर्यवान्,

शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्रयुम्न एवं सुवर्चा होंगे । ११. तीसरे सार्वणि के ग्यारहवें मन्वन्तर के ऋषि कश्यपपुत्र हविष्यमान, भृगुपुत्र हविष्यमान, आत्रेय तरुण, अनघ, उदधिष्य, विश्वर और अग्नतेजा नाम के सात ऋषि होंगे । इस मन्वन्तर के ब्रह्मा के पुत्र तीन सम्प्रदायों में बंटकर देवता बनेंगे । इस तीसरे सार्वणि रुद्र के नौ पुत्र सबंतक, सुशर्मा, देवानीक, पुरु द्वह, क्षेमधन्वा, दृढायु, आदर्श दण्डक और मनु होंगे । १२. चौथे सार्वणि के ऋषि द्युति, सतपा, अंगिरा, तपस्वी तपोशन, तपोरवि और विक्षेप नामक सप्तर्षि होंगे । इस मन्वन्तर के देवता ब्रह्माजी के मानस पुत्र पांच वर्ग में विभक्त होंगे । द्वादस सार्वणि मनु के पुत्र देवबाहु, अदुर, देवश्रेष्ठ, विदूरथ मित्रवान मित्रदेव, मित्रसेन, मित्रकृप, मित्रबाहु और सुवर्चा होंगे । १३. तेरहवें रौच्य मन्वन्तर में धृतिमान हव्यप तत्त्वदर्शी निरुत्सुक, निष्प्रकम्प, निर्मोह और सुतपा ये सप्तर्षि होंगे तथा ब्रह्माजी के तीन पुत्र देवता होंगे । रौच्य मनु के पुत्र चित्रसेन, विचित्र, नय धर्मधृत, धृत सुनेत्र, क्षयवृद्धि, सुतपा, निर्भर और दृढ होंगे । १४. चौदहवें मन्वन्तर में अग्निध्र, भार्गव, अतिबाहु, शुचि, युक्त, शुक्र और अजीत ये सप्तर्षि होंगे । इन मनुओं, सप्तर्षियों और मनुष्यों का नित्यप्रति प्रातःकाल कीर्तन करने वाला

सुखी होता है तथा दीर्घायु व यश को प्राप्त करता है ।
भौत्य मनु के पुत्र तरंग, भीरु, उर्व तरस्वान, उग्र, अभि-
मानी, प्रवीण, विष्णु, सक्रन्दन, तेजस्वी और सबल होंगे ।
भौत्य मनु के कार्यकाल के समाप्त होने पर एक कल्प
समाप्त हो जायेगा ।

—:०:—

वैवस्वत मनु और यम की उत्पत्ति वर्णन

वैशम्पायन जी ने मार्कण्डेय से पुनः कहा हे राजन
कश्यप की स्त्री दाक्षायणी के गर्भ से सूर्य की उत्पत्ति हुई ।
सूर्य का विवाह विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से हुआ । संज्ञा
कुछ क्रोधी स्वभाव की थी । वह अपने यौवन की आग
के सामने सूर्य के ताप से सदा ही असन्तुष्ट रहती थी
क्योंकि सूर्य के तेज के कारण संज्ञा की सारी सुन्दरता
नष्ट हो गई थी । एक बार वृद्ध कश्यप के आश्रम पर
अदिति जो गर्भवती भिक्षा के लिये गई । कश्यप ने उसकी
आलस्य नष्ट होने का श्राप दिया । श्राप को सुनते ही
अदिति बिलख-बिलख कर रोने लगी । तब कश्यप द्रवित
होकर बोले - तुम्हारे गर्भस्थ बच्चा नष्ट नहीं हुआ है वह
अण्ड में सुरक्षित है । तभी से सूर्य मार्तण्ड नाम से भी

पहचाने-जाने लगे । सूर्य के प्रचण्ड ताप से तीनों लोक पीड़ित होने लगे । सूर्य के द्वारा संज्ञा के गर्भ से एक कन्या और दो पुत्रों का जन्म हुआ । कन्या का नाम यमुना था तथा पुत्रों का नाम श्राद्धदेव तथा यम । श्राद्धदेव ही वैवस्वत मनु हुए हैं । यम और यमुना की उत्पत्ति जुड़वे रूप में हुई थी ।

सूर्य के तीव्र ताप से पीड़ित व उद्विग्न संज्ञा अपने समान ही रूप यौवन की एक सुन्दर छाया उत्पन्न करके बोली । मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ । तुम यहां रहकर द्वेष व ईर्ष्या से मुक्त होकर स्वस्थ मन चित्त वाली होकर मेरे दोनों पुत्रों व पुत्री का पालन करो । और यह बात मेरे पति भगवान सूर्य को भूलकर भी न बताना । छाया संज्ञा की शर्त को स्वीकार करती हुई बोली—हे देवी ! जब तक कोई मेरा केश पकड़कर मुझे श्राप नहीं देगा तब तक मैं यह राज नहीं खोलूंगी ।

संज्ञा अपने पिता विश्वकर्मा के घर पहुंच गई, परन्तु विश्वकर्मा ने संज्ञा को अपने पति के घर वापिस जाने के लिए कहा । पिता के बार-बार आग्रह पर संज्ञा घोड़ी का रूप धारण कर उत्तर दिशा में कुरु प्रदेश में घूमने लगी । इधर सूर्य से छाया के गर्भ से वैवस्वत मनु के समान आकार प्रकार वाला ही एक पुत्र हुआ । वह सावर्ण नाम

से प्रसिद्ध हुआ तथा दूसरा पुत्र शनिश्चर हुआ । अब छाया ने संज्ञा के बच्चों को पहले जैसा मानना बन्द कर दिया । तथा अपने बच्चों को ही लाड़-प्यार करने लगी । यह सौतेला व्यवहार संज्ञा के छोटे पुत्र यम को सहन नहीं हुआ । फलस्वरूप उसने अपनी विमाता छाया को क्रोध से मारने के लिए पैर उठाया । छाया ने यम को शाप दिया कि तुम्हारा पैर कटकर इसी समय गिर जाये । यम छाया के शाप से भयभीत होकर घबराया हुआ पिता सूर्य के पास गया और पिता को इस शाप के बारे में बताते हुए उसकी निवृत्ति हेतु कुछ करने के लिए प्रार्थना की । बोला—पिताजी ! मां को तो सभी बच्चों पर बराबर स्नेह रखना चाहिए, परन्तु वह तो अपने छोटे पुत्रों का ही अधिक सम्मान करती है और हमारी उपेक्षा करती है । उसकी उपेक्षा के कारण ही मैंने मात्र पैर उठाया था । मारा नहीं था । पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय परन्तु माता को कुमाता नहीं होना चाहिए । माता ने मुझे शाप दिया है परन्तु आप प्रसन्न होकर मेरा अपराध क्षमा कर दें तो मेरे पैर गिरने से बच जायेंगे । सूर्य बोले—हे पुत्र ! अब तो तुम्हारी माता का यह शाप टल नहीं सकता । जाओ कीट पतंगे तुम्हारे पैर का मांस लेकर पृथ्वी के अन्दर चले जायेंगे जिससे तुम्हारी मां की वाणी की भी रक्षा होगी तथा तुम शाप से भी मुक्त हो जाओगे ।

सूर्य देव ने छाया से यह बात जाननी चाही कि वह दोनों छोटे बच्चों को ही अधिक प्यार करती है तथा शेष की उपेक्षा करती है ऐसा क्यों ! परन्तु छाया ने सूर्य को स्पष्ट जवाब न देकर इधर-उधर की बातों में टाल गई । फिर सूर्य देव ने अपने योगबल से सारा भेद जान लिया । अतएव छाया को नष्ट करने हेतु क्रोध के साथ उन्होंने उसके केश पकड़ लिए । छाया ने सारा भेद सूर्य को बता कर अन्तर्धान हो गई ।

सूर्य क्रोध में ही अपने श्वसुर विश्वकर्मा के घर पहुंचे । विश्वकर्मा ने समझा-बुझाकर सूर्य के क्रोध को शांत किया । फिर बोले—आपकी पत्नी संज्ञा आपके अत्यधिक तेजोमय स्वरूप से दुःखी होकर वह बड़वारूपधारिणी होकर सदा तपस्या परायण होकर केवल पत्तों का आहार करती हुई कृश, दीन, जटिल, हाथी के सूंड से मर्दित कमलिनी के समान व्याकुल हो रही है तथा वह ब्रह्म-चारिणी रूप में योगबल से सम्पन्न है । हे पुत्र ! यदि तुम मेरी राय मानो तो मैं तुम्हें अत्यन्त सुन्दर एवं कान्तिमय बना दूँ । सूर्य तैयार हो गये ।

विश्वकर्मा ने सूर्य को शान पर चढ़ाकर धिसा । इस घर्षण से सूर्य की उग्रता कम हो गई और मुख अति सुन्दर

लाल वर्ण का चमकने लगा । उनके मुख से निकलने वाले तेज से धाता, अर्यमा, मित्रावरुण, अश भग, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, जघन्यज, त्वष्टा और अजघन्य विष्णु नामक बारह आदित्यों को देखकर सूर्य बहुत प्रसन्न हुए । विश्वकर्मा सूर्य को पुष्प, चन्दन, अलंकार आभूषण आदि से सम्मानित कर बोले—हे आदित्य ! आप अपनी स्त्री के पास जाइए । इस समय वह घोड़ी का रूप धारण कर उत्तर कुरु प्रदेश में घास चर रही है । तब सूर्य ने भी घोड़े का रूप धारण कर उत्तर कुरु-प्रदेश में अपनी घोड़ी रूप धारण की हुई संज्ञा के पास पहुंच गए । और उस पर आकर्षित होकर उससे रति क्रिया में लीन हो गये तथा घोड़ी रूपी संज्ञा के योनि के अन्दर अपना वीर्य गिरा दिया । संज्ञा ने उसे पर पुरुष समझकर उनके वीर्य को अपने नथुनों से बाहर निकाल दिया जिससे दो अश्विनी कुमार वस्त्र और नासत्व नामक हुए । बाद में सूर्य ने भार्या संज्ञा को अपना असली रूप दिखाया । तभी से उन कुमारों के पिता सूर्य और माता सूर्य की पत्नी हुई । छाया के शाप से दुःखी यम धर्मपूर्वक प्रजा पर शासन करने लगे तथा वे पितरों के अधिपति और लोकपाल हो गये । यमराज का भाई शनिश्चर ग्रह बन गया दोनों अश्विनी कुमार वैद्य हुए । विश्वकर्मा ने अपने शान पर सूर्य का जो

तेज कम किया था उस तेज से भगवान विष्णु का चक्र बनाया । जिसके द्वारा भगवान विष्णु ने असंख्य असुरों का नाश किया । यम की बहन यमुना, यमुना नदी बन गई । श्रद्धा व मनु सार्वणि नाम से प्रसिद्ध हुए ।

—:०:—

वैवस्वत मनु के वंशज

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन करते हुए कहा कि हे राजन् ! वैवस्वतः मनु के नौ पुत्र इक्ष्वांकु, नाभाग, धृष्णु तरिष्यन, प्रांशु, नाभागुरुष, और पृषघ्न थे । पहले वैवस्वत मनु की कोई सन्तान नहीं थी । उन्होंने सन्तान की कामना से मित्र और वरुण को प्रसन्न करने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया । इस यज्ञ से सभी ऋषि, मुनि सभी देवता व गन्धर्व आदि प्रसन्न थे । मित्र व वरुण के अंश से उस यज्ञ में इडा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई जो कि दिव्य वस्त्रालंकारों और दिव्य अस्त्रों से सम्पन्न थी । मनु ने इडा से अपने निर्देशों का पालन करने को कहा । इडा मनु से बोली—चूँकि मैं मित्र वरुण के अंश से उत्पन्न हुई हूँ । अतः सर्वप्रथम हमें उनके यहाँ जाना चाहिये, फिर अन्य कहीं नहीं तो मेरा नाश

हो जायेगा । कहकर इडा मित्र वरुण के पास चली गई ।
तथा हाथ जोड़कर विनय पूर्वक बोली—मैं तो आप लोगों
के अंश से ही उत्पन्न हुई हूँ अतः आप लोग मेरे कार्यों का
निर्देश करें कि हमें क्या करना चाहिए ।

मित्रस्वरूप इडा से बोले—हम लोग तुम्हारे इस सद्
आचरण से प्रसन्न हैं । हे सुभगे ! तुम तीनों त्रिलोक में
हमारी कन्या तथा महाराज मनु के वंशधर के पुत्र के रूप
में होगी । तुम सभी के लिए प्रिय और धर्मात्मा बनकर
सुद्युम्न नाम से वैवस्वत मनुवंश का विस्तार करोगी ।
महाराज मनु का तप पराक्रम व शास्त्रज्ञान अनुपम है ।
अतएव तुम उनके यश की वृद्धि करो ।

मित्र वरुण से विदा होकर इडा जब अपने पिता के
पास जाने लगी कि रास्ते में चन्द्रमा के पुत्र ने उसे देखा
और मोहित हो गया । बुध ने अपने मुख की सीटी बजाई,
इडा व बुध दोनों के नेत्र दो-दो मिलकर चार हो गए ।
फिर क्या था इडा भी बुध पर आकर्षित हो गई और
तत्काल ही दोनों प्रेमपाश में बंध गये । तब बुध से पुरुरवा
नामक पुत्र इडा के गर्भ से हुआ । पुत्रोत्पत्ति के बाद इडा
का स्त्रीत्व नष्ट हो गया और वह पुरुष बनकर सुद्युम्न
नाम से प्रसिद्ध हुई । सुद्युम्न के तीन पुत्र उत्कल, गया
और विनीताश्व हुए । उत्काल को उत्तर का राज्य,

विनिताश्व को पश्चिम का राज्य तथा गया को पूर्व का राज्य मिला । गया की राजधानी का नाम गया पड़ा । प्रजापति मनु इक्ष्वांकु आदि दस पुत्रों के उत्पन्न होने के पश्चात् सूर्य में लीन हो गये । उनका उत्तराधिकारी राजा इक्ष्वांकु ही बना । तथा गुरु वशिष्ठ के निर्देश पर सुद्युम्न प्रतिष्ठानपुर का राजा बना । कुछ ही समय बाद सुद्युम्न ने पुरूरवा को राज्य सौंप दिया । उत्कल के तीन पुत्र धृष्टक, अम्बरीष व दण्ड थे । दण्ड के नाम से दण्डकारण्य प्रसिद्ध हुआ सुद्युम्न में स्त्री भाव व पुरुष भाव दोनों ही विद्यमान था तथा सुद्युम्न इला नाम से भी प्रसिद्ध था । नरिष्यन्त के पुत्र शक और नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए । घृष्णु के पुत्र युद्ध में न जीते जाने वाले धाष्टार्क शर्याति के पुत्र आनर्त नामक और सुकन्या नाम की पुत्री हुई । सुकन्या ही का विवाह च्यवन ऋषि से हुआ था । आनर्त का पुत्र अत्यन्त तेजस्वी रेव हुआ । रेव आनन्द देश का राजा था उसकी राजधानी कुशस्थली थी । इसके सौ पुत्र हुए । बड़े पुत्र का नाम ककुदमी हुआ । रैवत कुछ समय ककुदमी को साथ लेकर ब्रह्मलोक में संगीत सुनने चला गया । ब्रह्मलोक में तो रैवत एक मुहुर्त ही ठहरा । परन्तु वह मृत्युलोक के लिए अनेक युग के बराबर था । रैवत जब ब्रह्मलोक से मृत्युलोक को वापस

लौटा तब यहां यादवों का राज्य हो गया था । उसकी रक्षा में वासुदेव, आदिवृष्णि भोज और अंधक वंशीय वीर तैनात थे । महाराज रैवत ने समय को पहचान कर अपनी पुत्री रेवती से बलराम को ब्याह दिया और स्वयं सुमेरु पर्वत पर तपस्या करने चले गए । और रैवत आदि शेष सभी भाई यादवों के भय से सभी दिशाओं में भाग कर बस गए । इनकी सन्तान अपने को शर्या के वंशज कहने लगी ।

—:०:—

धुन्ध का वध

मनु को छींक आने से भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । इक्ष्वांकु । इसके भी सौ पुत्र हुए, इनमें सबसे बड़ा पुत्र विकुक्षि था । विकुक्षि का पेट बहुत बड़ा था जिससे यह कुशल योद्धा तो नहीं बन सका परन्तु धर्मात्मा होने के कारण अयोध्या का राजा हो गया । विकुक्षि के शकुनि आदि पचास पुत्र उत्पन्न हुए । ये सभी उत्तर दिशा में स्थित होकर राज्य की रक्षा करते थे । विकुक्षि के शशादि अड़तालीस भाई दक्षिण दिशा में स्थित होकर राज्य की रक्षा करते थे । शशादि के पुत्र ककुत्स्थ ने एक बार देवासुर

संग्राम में वृष रूपधारी इन्द्र के ऊपर बैठकर असुरों को जीता था । इसलिए उसका नाम ककुत्स्थ पड़ा । ककुत्स्थ का पुत्र अनेता का पुत्र पृथु का पुत्र विराश्व का पुत्र आर्द्र का पुत्र युवनाश्व और युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त हुआ । इसी श्रावस्त ने श्रावस्तपुरी का निर्माण किया । श्रावस्त के पुत्र बृहदश्व, बृहदश्व के पुत्र राजा कुबलाश्व हुए जिन्होंने धुन्ध का वध किया था । धुन्ध का वध करने के कारण कुबलाश्व को धुन्धकुमार भी कहते हैं ।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन कुबलाश्व के सौ पुत्र थे जो सभी के धर्मपरायण यज्ञप्रिय, विद्वान तथा धनु-विद्या में अति निपुण थे । जब राजा बृहदश्व ने कुबलाश्व को राज्य का भार सौंप कर वानप्रस्थ ग्रहणकर वन गमन करने का परामर्श दिया । ब्रह्मर्षि बोले—हे राजन ! आपका प्रमुख कार्य हमारी रक्षा करना है, आप हमारी रक्षा करें । मेरे आश्रम के पास में उज्जानक नामक समुद्र के किनारे बालुयुक्त समतल मरुभूमि में बालू के अन्दर महाकाय व अत्यन्त बलवान मधु पुत्र धुन्ध तपस्या कर रहा है देवता लोग उसे जीतने में असमर्थ हैं । वह पृथ्वी के विनाश हेतु तपकर रहा है । वह वर्ष में मात्र एक बार ही सांस लेता है । उसके एक बार के सांस लेने मात्र से ही पृथ्वी पर पर्वत कांपने लगते हैं । उसके सांस के छोड़ने से

जो भयंकर धूल उड़ती है उस धूल में छिप जाता है और एक सप्ताह तक सूचाल आता रहता है । उसके श्वास में चिंगारियां बड़े-२ अंगार और भयंकर धुआं निकलता है जिस कारण मुझसे आश्रम में रहा नहीं जाता । अतः आप उस राक्षस का वध करो जिससे सभी प्राणी निर्भय हो जायें ।

तब बृहदाश्व ने ब्रह्मर्षि उत्तंक से कहा—हे ब्रह्मन् ! मैंने तो शस्त्र का त्याग कर दिया है अतः अब मैं शस्त्र नहीं उठा सकता । परन्तु अपने इस पुत्र कुबलाश्व को आपके चरणों में सौंप रहा हूं । यही धुन्ध का वध करेगा । कुबलाश्व अपने सौ पुत्रों सहित राक्षस धुन्ध को मारने के लिए महात्मा उत्तंक के साथ चल दिया । महर्षि उत्तंक की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने कुबलाश्व के शरीर में प्रवेश किया जिससे उसी वक्त आकाशवाणी हुई कि कुबलाश्व आज निश्चय ही धुन्ध का विनाश करेंगे और उन पर देवता लोग आकाश से फूलों की वर्षा करते हुए दुन्दुभी आदि बजाने लगे ।

कुबलाश्व ने अपने पुत्रों को बालु के समुद्र को खोदने का आदेश दिया । पुत्रों ने बालु को खोदते हुए देखा कि धुन्ध पश्चिम की तरफ सोया है । धुन्ध राजकुमारों को देखते ही तीव्र क्रोधाग्नि में जलने लगा तथा उसकी

क्रोधाग्नि में कुबलाश्व के सतानवें पुत्र जल कर भस्म हो गए। शेष रहे मात्र तीन पुत्र। तथा शाम को चन्द्रोदय होते हुए ही समुद्र के तीव्र प्रवाह के समान धुन्ध के शरीर से अत्यन्त वेग से जल धारा वह चली। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वह सम्पूर्ण पृथ्वी को जलमग्न कर देना चाहता हो। तब कुबलाश्व वहां जाकर धुन्ध की सारी जलधारा को पानकर गये तथा अपनी योग माया से तीव्र वर्षा के द्वारा राक्षस की क्रोधाग्नि को शान्त कर दिया। तथा अपने अद्भुत पराक्रम से राक्षस का वध कर उसका मृतक शरीर महर्षि उत्तंक के सामने रख दिया। इससे महर्षि उत्तंक ने प्रसन्न होकर कुबलाश्व को अक्षय धन, विजय धर्मानुराग, स्वर्ग की प्राप्ति तथा उनके मरे हुए पुत्रों को भी दिव्य लोक प्राप्ति होने का आशीर्वाद दिया।

—:०:—

महर्षि गालव का जन्म

महर्षि गालव के उत्पत्ति का वर्णन करते हुए वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! राजा कुबलाश्व के मात्र तीन पुत्र ही बच गये थे। जिसका नाम था दृढाश्व, चन्द्राश्व, और कपिलाश्व। दृढाश्व का पुत्र हर्यश्व, हर्यश्व

का पुत्र निकुम्भ का पुत्र सद्वाताश्व जो कि रणभूमि में एक कुशल योद्धा था । उसकी एक हृषवती नामक कन्या हुई । इस कन्या से विश्व विख्यात् प्रसेनजित नामक पुत्र हुआ । प्रसेनजित की पत्नी का नाम गौरी था । किसी कारणवश प्रसेनजित ने गौरी को शाप दे दिया जिससे गौरी बाहुदा नामक नदी हो गई । गौरी से उत्पन्न पुत्र युवनाश्व एक महान राजा हुआ तथा युवनाश्व का पुत्र मान्धाता हुआ जो कि तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला हुआ । मान्धाता का विवाह शशबिन्दु की कन्या चैत्ररथी से हुआ जो एक साहवी, विन्दमती तथा रूपेणासहशी नाम से भी प्रसिद्ध हुई । इसके दस हजार भाई थे । मान्धाता के दो पुत्र पुरुकुत्स व मुखकन्द हुए । पुरुकुत्स का पुत्र त्रसुहृश्यु हुआ । इसने अपनी पत्नी नर्मदा के गर्भ से सम्भुत नामक पुत्र उत्पन्न किया । सम्भुत का पुत्र सुधन्वा, सुधन्वा का पुत्र त्रिधन्वा त्रिधन्वा का पुत्र त्रय्यारूण हुआ जो कि एक अच्छा विद्वान् था । त्रय्यारूण के बलवान पुत्र सत्यव्रत हुआ । इसने एक विवाह में बाधा पहुंचा दिया था । हुआ यह कि कहीं किसी के विवाह में वर वधु सप्तपदी का मन्त्र बोल रहे थे । अभी मन्त्र पूरा भी नहीं हुआ था कि सत्यव्रत ने बाल स्वभाव वश, मूर्खता व काम वासना से आसक्त होकर उस कन्या का अपहरण कर अपनी

पत्नी बना लिया। इस पर सत्यव्रत के पिता महाराज त्रय्यारूण ने उसे त्याग दिया, बोले मैं तुम नीच का पिता कहलवाना उचित नहीं समझता हूँ। अब तू जाकर चाण्डालों के साथ निवास कर।

पिता की बात सुनकर सत्यव्रत वशिष्ठ जी के यहाँ गया। परन्तु वशिष्ठ ने भी उसके इस अपराध को क्षमा नहीं किया। अब वह चाण्डालों के घर में निवास करने लगा। त्रय्यारूण वन में तपस्या करने चले गए। इधर विश्वामित्र भी अपनी पत्नी व बच्चों को त्याग कर समुद्र के एक जलहीन स्थान में जाकर तपस्या में लीन हो गये। जिससे उनकी पत्नी अपने पुत्र के गले में रस्सी बांधकर गौओं की तरह बेचने के लिए घूमने लगी। जिससे जीविका चले। सत्यव्रत विश्वामित्र के बच्चे को लेकर उसका भरण-पोषण करने लगा। जिससे कि मुनि विश्वामित्र का कृपा-पात्र बन सके। वह विश्वामित्र का बालक भी महर्षि बना। उसके गले में रस्सी बांधे जाने के कारण ही उसका नाम गालव पड़ा।

—:०:—

त्रिशंकु की हत्या

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से कहा—हे राजन् ! सत्यव्रत को विश्वामित्र की कृपा व भक्ति प्राप्त हो गई । अतएव वे वशिष्ठ जी के महत्व को दूर करने के लिए विश्वामित्र की पत्नी का भी भरण-पोषण करने लगे । सत्यव्रत ने बारह वर्षों तक सुनसान एकान्त वन में व्रत आदि का पालन करते हुए जीवन व्यतीत किया । सत्यव्रत के पिता त्रय्यारूण को वन में चले जाने के बाद ही महर्षि वशिष्ठ ही उनके राज्य व अन्तःपुर की व्यवस्था सम्हालते थे । जब सत्यव्रत के पिता ने उसे बनवासी जीवन व्यतीत करने का निर्देश दिया । तब महर्षि वशिष्ठजी ने त्रय्यारूण को ऐसा करने से नहीं रोका । जिस कारण सत्यव्रत वशिष्ठ जी से नाराज था ।

सत्यव्रत की कन्या के अपहरण के अपराध के कारण बारह वर्षों तक उसके राज्य में वर्षा हुई ही नहीं । जिससे अन्न का भी पूर्णरूपेण अभाव हो गया । सत्यव्रत के आश्रम में भी अन्न न रहा । हठात् दैववशात् एक दिन महर्षि वशिष्ठ की दुधारू गाय सत्यव्रत के आश्रम के सामने चर रही थी । उसे देखकर सत्यव्रत का क्रोध और प्रबल हो गया । अतः वह क्रोध, मोह, श्रम से थका हुआ, उन्मत्त,

प्रमत्त और भूख से व्याकुल होने के कारण उस गाय को मारकर उसका मांस खा गया तथा विश्वामित्र के बच्चों को भी खिलाया । इससे दुःखी होकर क्रोध पूर्वक महर्षि वशिष्ठ ने सत्यव्रत से कहा—यदि तुमने पुनः पाप नहीं किया होता । तो तेरे पाप को क्षमा कर दिया जाता । परन्तु अब तूने तीन पाप कर दिए । १. पिता का असंतोष २. गुरु की, गौ की हत्या और ३. असंस्कृत मांस का भक्षण ! इन तीनों शंकुओं (पापों) को करने के कारण वशिष्ठ ने उसका नाम त्रिशंकु रख दिया । तब से वह इसी नाम से प्रसिद्ध हो गया ।

जब विश्वामित्र अपनी तपस्या पूरी कर वन से घर वापस आये तो यह जानकर कि त्रिशंकु ने उनके परिवार का भरण-पोषण किया है, प्रसन्न हो गए और वर मांगने को बोले । त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने का वर मांगा । विश्वामित्र ने एवमस्तु कहा । विश्वामित्र ने सत्यव्रत को अयोध्या की गद्दी पर बैठाया । वहाँ की अनावृष्टि समाप्त हो गई । मुनि ने सत्यव्रत से एक यज्ञ का अनुष्ठान कराया । और सभी देवताओं तथा महर्षि वशिष्ठ की आँखों के सामने ही सदेह स्वर्ग में भेज दिया ।

कंकय नरेश के वंश में उत्पन्न हुई कन्या सत्यरथा से त्रिशंकु का विवाह हुआ । उससे हरिश्चन्द्र नामक पुत्र

उत्पन्न हुआ । हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ करने के कारण सम्राट की उपाधि प्राप्त की । हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित, रोहित के पुत्र हरित, हरित के पुत्र चञ्चु, चञ्चु के दो पुत्र विजय तथा सुदेश । विजय का पुत्र रुरुक जो कि धर्म, अर्थ व तत्व का ज्ञाता था । रुरुक के पुत्र वृक, वृक के बाहु नामक पुत्र हुआ । जो अत्यन्त ही पापिष्ठ व पथ भ्रष्ट राजा हुआ । इसलिये वह शक, यवन, काम्बोज, पारद, पहलव, हैहय एवं तालजंघ आदि मलेच्छ राजाओं के द्वारा राज्यच्युत हुआ । बाहु का पुत्र सगर हुआ । सगर विष से युक्त उत्पन्न होने के कारण सगर कहलाया । उसका पालन-पोषण भृगुवंशी और्व ऋषि के आश्रम में हुआ । कुछ समयोपरान्त सगर ने आर्व ऋषि के द्वारा अस्त्र-शस्त्र प्राप्त कर तालजंघ हैहय आदि राजाओं को मारकर भूमि पर विजय प्राप्त की ।

—:०:—

सगर की उत्पत्ति तथा सागर निर्माण का वर्णन

सगर की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए वैशम्पायन जी ने कहा—सब राज्य मलेच्छों के द्वारा छीन लिए जाने पर राजा बाहु ने अपनी पत्नी के साथ वन को प्रस्थान किया

जब बाहु की पत्नी वन गमन कर रही थी तब उसकी सौत ने विषपान करा दिया । बाहु के मर जाने पर उसकी पत्नी सती होना चाहती थी । परन्तु और्व ऋषि ने उसे सती होने नहीं दिया । फिर इन्हीं ऋषि के आश्रम में उसने स्रव के साथ सगर को जन्म दिया । महर्षि और्व ने सगर का जातकर्म संस्कार आदि करके वेद विद्या और युद्ध विद्या में निपुण कर आग्नेयास्त्र दिया । उसी के बल से उसने पुनः सभी मलेच्छों को मारकर खदेड़कर अपने पिता का राज्य पुनः प्राप्त कर लिया । वह शक, यवन, कम्बोज, पारद, प्रह्लाद आदि सभी को अपने अधीन कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर अधिकार कर लिया । फिर उसने अश्व-मेध यज्ञ के लिए यज्ञ का घोड़ा छोड़ा । तथा उसकी रक्षा हेतु वे स्वयं चल पड़े । इन्द्र समुद्र के किनारे जाते हुए उस घोड़े का अपहरण करके पृथ्वी के नीचे चले गए । सगर ने अपने लड़कों को धरती खोदने के लिए कहा ।

जब लड़के खुदाई करते-करते बहुत ही भीतर पहुँच गए । तब उन्होंने भगवान विष्णु को कपिल मुनि के रूप में योगमग्न बैठे देखा । लड़कों ने कपिल मुनि की योग-निद्रा को भंग कर दिया । मुनि की आंख खुलते ही सगर के सभी पुत्र भस्म हो गए । परन्तु चार पुत्र बहकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और पंचजन बच गए । तभी भगवान विष्णु सगर

के सामने प्रगट होकर बोले—तुम्हारा वंश अविनाशी तथा यशस्वी होगा । यह समुद्र तुम्हारा पुत्र होगा । समुद्र अर्घ्य लेकर सगर के सामने उपस्थित हुआ । सगर ने उसको पुत्र रूप में स्वीकार करते हुए सगर नाम से सम्बोधित किया । घोड़ा उन्हें प्राप्त हो गया । तथा अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया । (सगर के साठ हजार पुत्र थे ऐसा कहा जाता है ।)

—:०:—

सूर्य वंश

महाराज सगर की दो रानियां थीं । बड़ी रानी राजा विदर्भ की पुत्री केशिनी थी तथा छोटी रानी अरिष्टनेमि की सुन्दर कन्या थी । एक दिन और्व ऋषि ने दोनों रानियों को बुलाकर किसी एक को साठ हजार पुत्र का वरदान तथा दूसरे को केवल एक पुत्र का वरदान माँगने को कहा । बड़ी रानी ने केवल एक पुत्र का छोटी रानी ने साठ हजार पुत्रों का वरदान माँगा । वरदान के अनुसार बड़ी रानी केशिनी का एक मात्र पुत्र असमाजस (पंचजन) हुआ । वह एक अत्यन्त शक्तिशाली योद्धा था । छोटी रानी के गर्भ से एक तुम्बे की उत्पत्ति हुई । उस तुम्बे में

तिल के समान आकार के साठ हजार पुत्र हुए थे । जो धीरे-धीरे बड़े हो गये । राजगद्दी पर असमाजस (पंचजन) बैठा । पंचजन का पुत्र अंशुमान के पुत्र दिलीप (खट्वांग) हुए । दिलीप के पुत्र भागीरथ हुए । भागीरथ ने ही गंगा जी को पृथ्वी पर अवतरित किया । जो जाकर समुद्र में गिरी । और आज भी हम गंगा मां का दर्शन कर स्नान कर पुण्य का लाभ करते हुए पाप से मुक्ति पाते हैं । भागीरथ के पुत्र श्रुत, श्रुत के पुत्र नाभाग, नाभाग के पुत्र अम्बरीष, अम्बरीष के पुत्र सिन्धुदीप, सिन्धुदीप के पुत्र अयुताजित, अयुताजित के पुत्र ऋतुपर्ण (जुआ खेलने में चमुर राजा नल का मित्र) ऋतुपूर्ण का पुत्र आर्तुपर्ण, आर्तुपर्ण का पुत्र सुदामा (यह इन्द्र का मित्र था) सुदामा के पुत्र सौदास (इसे कल्माषपाद तथा मित्रसह भी कहते हैं) कल्माषपाद का पुत्र सर्वकर्मा, सर्वकर्मा का पुत्र अनरण्य, अनरण्य का पुत्र निघ्न, निघ्न के दो पुत्र अनमित्र और रघु हुए । अनमित्र के पुत्र दुलिदुह, दुलिदुह के पुत्र दिलीप (पुरुषोत्तम श्री राम के प्रपितामह) दिलीप के पुत्र रघु, जो अयोध्या की राजगद्दी पर बैठे । रघु के पुत्र अज, अज के पुत्र दशरथ हुए । इसी दशरथ के पुत्र भगवान श्री राम हुए । श्री राम के दो पुत्र कुश तथा लव, कुश के पुत्र अतिथि, अतिथि के पुत्र निषथ, निषथ के पुत्र नल, नल के

पुत्र नभ, नभ के पुत्र पुण्डरीक और पुण्डरीक के पुत्र क्षेमधन्वा हुए ।

क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक, देवानीक के पुत्र अहिनगु, अहिनगु के पुत्र सुधन्वा, सुधन्वा के पुत्र अनल, अनल के पुत्र उक्थ, उक्थ के पुत्र वज्रनाभ का पुत्र शंख (व्यषिताश्व) का पुत्र पुण्य का पुत्र अर्थसिद्धि का पुत्र सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण का पुत्र शीघ्र का पुत्र मरु का पुत्र बृहदबल । इस प्रकार ये सभी राजा सूर्यवंश में उत्पन्न हुए ।

विमर्श—राजा नल दो हुए हैं । १. वीरसेन का पुत्र तथा २. इक्ष्वांकु वंश में उत्पन्न राजा नल । इक्ष्वांकु वंश ही सूर्यवंश है ।

—:०:—

विष्णु अवतार

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से श्री कृष्ण की कथा सुनाते हुए कहा—हे राजन् ! तुम्हारी इस अभिलाषा को भगवान् विष्णु अपनी दिव्य देह को त्याग कर तथा देवलोक का मोह त्याग कर पृथ्वी पर वासुदेव के यहाँ क्यों अवतरित हुए । मैं इसके विषय में सुनाता हूँ । ध्यान पूर्वक सुनो । जो कि सबके लिए हितकारी व मंगलकारी है । परमपिता परमेश्वर सभी प्राणियों के आत्मा हैं तथा

देवताओं व मनुष्यों की भलाई हेतु दुष्ट दलन हेतु बार-बार अवतरित होते हैं। भगवान का जो रूप देवलोक में निवास कर सदा तप में लीन रहता है वह सात्विक है तथा जो रूप पृथ्वी पर अवतरित होता है वह सात्विक कहलाता है। तथा जो मूर्ति सृष्टि के संहार के लिये योगनिद्रा के आश्रित रहती है वह तामसी मूर्ति कहलाती है। योगनिद्रा रूपी आश्रम में भगवान एक हजार वर्ष तक शयन करने के पश्चात् पुनः सृष्टि के निर्माण में लग जाते हैं। उस समय ब्रह्मा सभी लोकपाल सूर्य चन्द्र, अग्नि कपिलमुनि, सप्तर्षि, त्र्यम्बक, वायु चारों समुद्र सनतकुमार और प्रजापालक मनु उन भगवान से ही पैदा होते हैं। तथा पुराण पुरुष ग्राम नगर आदि की रचना करते हैं। एक हजार युग बीतने पर फिर वह सृष्टि भगवान के देह में पूर्ण विलीन हो जाती है। सभी के नष्ट होने पर केवल दो दैत्य मधु-कैटभ भगवान विष्णु से युद्ध हेतु रह जाते हैं। प्रभु उन्हें मोक्ष प्राप्ति का वरदान देकर समुद्र में नष्ट कर देते हैं।

—:०:—

वाराहवतार

एक बार भगवान विष्णु क्षीर समुद्र में योगनिद्रा में लीन थे। तभी उनकी नाभि से एक कमल की उत्पत्ति

हुई और उस नाभि कमल से ब्रह्मा आदि देवताओं व ऋषियों की उत्पत्ति हुई। इसी कारण से भगवान विष्णु को पुष्करावतार भी कहते हैं। भगवान विष्णु ने एक बार वाराह का भी अवतार धारण कर वनों व पर्वतमालाओं से युक्त पृथ्वी को जो कि समुद्र में डूबी हुई थी अपने दांतों से निकाला था। जब भगवान विष्णु ने वाराहरूप धारण किया तथा तब चारों वेद उनके पांव, युपदंष्ट्र यज्ञ, चित्ति मुख अग्नि उनकी जिह्वा, कुश, रोम, दिवस, रात्रि नेत्र, वेदाङ्ग व श्रुति कानों के आभूषण, घृत नासिका, त्रवा मुख और सामगान उनका कण्ठ स्वर था। धर्म व सत्य श्री, पशु दोनों जंघा आदि इस प्रकार उनके वाराह रूप का निर्माण होकर भगवान विष्णु सुमेरु शृंग के समय सुन्दर हो गए। फिर भगवान विष्णु ने वाराह रूप में लोक कल्याणार्थ जल में प्रवेश कर पृथ्वी को निकाला था।

—१०—

नृसिंहावतार

सतयुग में दैत्यराज हिरण्यकश्यप ने केवल जलपान कर ही ग्यारह हजार वर्षों तक कठिन तपस्या की। इसके शम दम आदि गुण ब्रह्मचर्य व्रत तप आदि कर्मों से अत्यन्त

प्रसन्न हुए । फिर आदित्य, वसु, साध्य, मरुत रुद्र, यक्ष, राक्षस, अप्सरा, किन्नर, दिक्, उदिक, नदी, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त, खेचर, महाग्रह देवर्षि, सिद्ध, सप्तर्षि, राजर्षि एवं गन्धर्वों के साथ देदीप्यमान ब्रह्माजी हंस युक्त विमान पर बैठकर हिरण्यकश्यप के पास आकर बोले । हे श्रेष्ठ व्रत धारी ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । इच्छित वर मांगो । हिरण्यकश्यप बोला—हे पितामह ! मुझे ऐसा वर चाहिए कि मैं देवता, राक्षस, मनुष्य पिशाच, गन्धर्व, असुर, यक्ष, उरग में मेरा कोई भी वध न कर सके । तपोबल से युक्त ऋषि भी मुझे शाप न दे सकें । शस्त्रास्त्र, पर्वत, वृक्ष, शुष्क अथवा आर्द्र किसी भी पदार्थ से मेरी मृत्यु न हो । जो व्यक्ति केवल एक थप्पड़ मार कर ही सौ भृत्य, सेना वाहनादि के सहित मुझे नष्ट कर सके मैं उसी के हाथों मृत्यु को प्राप्त होऊँ । चन्द्र, वायु, अग्नि, जल, आकाश, इन्द्र; वरुण, यम, कुबेर, दिगपाल आदि सभी मेरे पराधीन हों । हिरण्यकश्यप को एवमस्तु ! कहते हुए ब्रह्मा जी ब्रह्मलोक को चले गए ।

इंद्र आदि सभी देवता ऋषि मुनि गण सभी ने ब्रह्मा जी के पास जाकर उनका अभिवादन करते हुए बोले—हे पितामह ! आपने तो उस दैत्य को ऐसा वरदान दे दिया कि अब वह हम सब को नष्ट कर डालेगा । अतः कृपा कर

हम सबके कल्याण हेतु उसके संहार के लिए कोई उपाय करें । ब्रह्माजी सभी को आश्वस्त करते हुए बोले — उसकी कठिन तपस्या के फलस्वरूप उसकी मनोकामना पूरी तो करनी ही थी । अतएव उसकी मनोकामनायें पूरी होते ही भगवान विष्णु उसका वध कर डालेंगे । ब्रह्माजी से इस प्रकार का आश्वासन प्राप्त कर प्रसन्नता पूर्वक सभी अपने घर को चले गये ।

ब्रह्मा द्वारा वरदान प्राप्त कर हिरण्यकश्यप गर्व में चूर हो गया । अतएव सभी ऋषि मुनियों व देवताओं को सताने लगा । यज्ञ भाग से देवताओं को हटाकर दैत्यों को यज्ञभागाधिकारी बनाया । यह देखकर सभी देवतागण विष्णु की शरण में जाकर हिरण्यकश्यप के कर्मों का वर्णन करते हुए उनके संहार करने की प्रार्थना करने लगे । विष्णु ने शीघ्र ही हिरण्यकश्यप को मारने का वचन देकर आश्वस्त किया । उसके बाद भगवान विष्णु स्वयं ही आधा भाग में मनुष्य, आधा भाग में सिंह का शरीर धारण करके हिरण्यकश्यप की सभा में गये । और सभी एक से एक भयंकर राक्षसों के सामने ही देखते-देखते एक थप्पड़ मारकर हिरण्यकश्यप को मार डाला । सभी देवतागण आकाश से फूलों की वर्षा करते हुए खुशी के बाजे बजाने लगे ।

वामनावतार

राजा बलि के कारण भगवान विष्णु ने वामन रूप धारण कर अपने पैरों से तीन पग में ही सारी पृथ्वी को नाप कर सभी दैत्यों व राक्षसों में भय उत्पन्न कर दिया था । वे दैत्य विभिन्न प्रकार के वेष-भूषा वाले और नाना प्रकार के गंध आदि धारण किये हुए प्रबल उत्साह से सम्पन्न थे उन सभी दैत्यों ने वामन भगवान के आते ही उन्हें घेर लिया । तभी वामन भगवान ने अति भयंकर व विशाल रूप धारण कर थप्पड़ लात मार-मारकर सभी दैत्यों को धराशायी कर दिया । इस प्रकार पृथ्वी का भार उतार कर स्वर्ग का राज्य इन्द्र को सौंप दिया ।

—:०:—

दत्तात्रेय अवतार

जब वेद और वेदोक्त कर्मों का लोप हो गया था । चारों वर्णों के मनुष्यों के विचार संकीर्ण हो गये थे । अधर्म का ही बोल-बाला हो गया था । सत्य का कोई प्रभाव नहीं रहा । तभी भगवान दत्तात्रेय ने अवतार ग्रहण कर पुनः पृथ्वी पर वेदोक्त धर्म, यज्ञ अनुष्ठान, विचार-विस्तार एवं चारों आश्रमों को व्यवस्थित किया । तथा कीर्तवीर्य

को दत्तात्रेय ने यह वरदान दिया कि समय-२ पर तुम्हारे दोनों हाथ सैकड़ों हाथ हो जायेंगे । तुम सारी पृथ्वी का पालन करते हुए धर्म के ज्ञाता होओगे तथा शत्रु तुम्हारा सामना कभी नहीं कर सकेगा ।

— :०:—

परशुरामावतार

भगवान विष्णु ने परशुरामावतार लेकर सहस्रभुज कीर्तवीर्य का नाश किया । उन्होंने रथारूढ़ कीर्तयम को पृथ्वी पर गिरा दिया और पकड़ कर घसीट मारा । तब कीर्तयम भयंकर गर्जना के साथ चीत्कार करने लगा । फिर परशुराम जी ने उसकी सभी असंख्य भुजाओं को काटकर उसके साथियों सहित मार डाला । इसी प्रकार परशुराम जी ने करोड़ों उपद्रवी क्षत्रियों का संहार कर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित कर दिया । उसके बाद आप अपने पाप के प्रायश्चित्त रूप में अश्वमेध यज्ञ करके अपरिमित धन गोधन, हाथी घोड़े आदि को दान करते हुए मरीचि पुत्र कश्यप को सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर दी और स्वयं महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने चले गए ।

— :०:—

रामावतार

२४वें युग में भगवान विष्णु ने ऋषि विश्वामित्र को आगे करके अपने को चार भाग में विभक्त कर राजा दशरथ के घर राम रूप में अवतार ग्रहण किया। तथा अपने भाईयों सहित ११ हजार वर्षों तक अयोध्या में राज्य किया। श्री राम के चरित्र की कथा जन्म से विवाह, बनवास, रावण आदि असंख्य राक्षसों की लीला आदि के विषय में रामायण नामक महाग्रन्थ के द्वारा सुपरिचित पाठकगण हैं ही। अतएव इस विषय में अधिक कुछ कहना उचित नहीं।

—:०:—

श्री कृष्ण अवतार

भगवान विष्णु ने श्री कृष्ण रूप में अवतार ग्रहण कर शाल्व, मैन्द, द्विविद, कंस, अरिष्ट, तृषम, केशी, पूतना, नाग, कवल्यापीड़, चाणूर, मुष्टिक आदि अनेक मनुष्य रूपधारी दैत्यों का नाश किया। बाणासुर, यवनराज नरकासुर दुष्ट राक्षसों व राजाओं का संहार किया।

—:०:—

वेद-व्यास

अठ्ठाइसवें द्वापर युग में भगवान का नौवां अवतार जातुकर्ण्य के साथ वेद-व्यास के रूप में सत्यवती के गर्भ से हुआ । जिन्होंने वेद को चार भागों में बांटा तथा भरतवंश को उत्पन्न किया ।

—:०:—

कल्की अवतार

भगवान विष्णु अपने दसवें अवतार सम्भल ग्राम के विष्णुयश नामक ब्राह्मण के घर कल्की नाम से लेंगे । तथा याज्ञवल्क्य के साथ क्षणिक, वादी बौद्धों को पहले शास्त्रार्थ में पराजित करके फिर शस्त्र से पराजित करेंगे । तत्पश्चात् गंगा यमुना के मध्यदेश में स्थित होकर अपने शेष कार्यों को सम्पन्न करेंगे ।

इस प्रकार से कलियुग समाप्ति पर होगा । सभी राजा, मंत्री, सैनिक, प्रजा इतने भ्रष्ट व दुराचारी हो जायेंगे कि आपस में ही लड़-कट-कर समाप्त हो जायेंगे । इस तरह पीड़ित प्रजा कलियुग के साथ समाप्त हो जाएगी । सतयुग प्रारम्भ होगा । इस युग में जो बचे रहेंगे

वे स्वभाव से शांतिप्रिय व लोकप्रिय होंगे । इस प्रकार सृष्टि का क्रम चलता रहता है ।

—:०:—

देवासुर-संग्राम

एक बार खूब घोर अन्धकार छा गया जिससे सूर्य चन्द्र आदि ग्रह लुप्त हो गए । आकाशीय विद्युत की जग-मगाहट, बादलों की भयंकर गड़गड़ाहट मानो आकाश गिर कर टूट रहा हो । वज्रपात, उल्कापात के साथ-२ अति उष्ण जल की वर्षा हो रही थी मानों आकाश पिघल कर गिर रहा हो । तथा भयंकर भूचाल जन-जन को कम्पायमान कर रहा था । ऐसे ही त्रस्त वातावरण में भगवान विष्णु रथ पर सवार जिस पर गरुड़ पक्षी से युक्त ध्वज लगा हुआ था अपने दिव्य रूप में प्रगट हुए । उन्हें देखकर देवागण आकाश में प्रभु की जय-जयकार करने लगे ।

वैशम्पायन जी ने मार्कण्डेय जी से कहा—हे राजन एक बार देवताओं व दैत्यों में भयंकर संघर्ष छिड़ा । दैत्य गग भयंकर अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर देवताओं पर पिल गये और अपने रण कौशल का प्रदर्शन

करने लगे । तलवार, तीर, धनुष, मूसल, गदा, व शिला-
खण्डों आदि से दैत्य गणों ने भयंकर प्रहार कर देवताओं
को त्रस्त कर दिया । देवताओं के किसी के सर फट गये,
किसी के हृदय बिध गये । कितने के हाथ पैर छिन्न-भिन्न
हो गये । जो देवता बच भी गये थे वे नपुंसक की तरह
हाथ पर हाथ धरे खड़े थे । उन्हें समझ में नहीं आ रहा
था कि वे क्या करें ।

देवताओं की इस प्रकार की दुर्दशा को देखकर इन्द्र
ने भयंकर क्रोध के साथ वज्र द्वारा आक्रमण किया । बहुत
से दैत्यों को मार गिराया तथा तामस अस्त्र के द्वारा
भयंकर अंधकार कर दिया । जिससे दैत्यों व राक्षसों में
भेद कर पाना कठिन हो गया । देवताओं में बल का संचार
हुआ, राक्षसी माया से मुक्त होकर देवता लोग भीषण
युद्ध करते हुए राक्षसों को धराशायी करने लगे । जिससे
सब राक्षस भयभीत होकर युद्ध क्षेत्र में प्राण बचाने के
लिए इधर-उधर सुरक्षित स्थान ढूँढ़ने लगे । फिर दैत्यों ने
मायामयी अग्नि को पैदा कर अंधकार को दूर किया
और देवताओं पर भीषण प्रहार कर दिया । उस औरव
अग्नि से देवगण निस्तेज होकर पीड़ित हो गये । तथा इन्द्र
से शरण की मांग करने लगे । इन्द्र के कहने पर जल

देवता वरुण ने चन्द्रमा आदि जल-जन्तुओं की सहायता से और्व अग्नि को शान्त करने का निश्चय किया ।

इन्द्र देव के कहने से चन्द्रमा वरुण देव के साथ हो लिए । रण क्षेत्र में वरुण ने भयंकर जल वृष्टि की तो चन्द्रमा ने भयंकर हिमपात । इस प्रकार दोनों ने जल व हिम की वर्षा कर और्व अग्नि को शान्त कर दिया । अब राक्षस व्याकुल हो गए । तीव्र ठण्ड के कारण पृथ्वी पर गिरने लगे ।

राक्षसों की इस दुर्दशा को देखकर मयदानव ने अपने पुत्र कौच द्वारा निर्मित मायामय पर्वतास्त्र का प्रयोग किया । उस पर अनेक शिलायें, घाटियां, सिंहों व व्याघ्रों के समूह थे । उस पर्वत के अग्रभाग में बड़े-बड़े वृक्षों से युक्त वन समूह थे । पर्वतास्त्र के प्रयुक्त होते ही देवताओं पर बड़े-बड़े वृक्षों व शिलाओं की वर्षा होने लगी । वरुण व चन्द्रमा की माया के प्रभाव से निष्क्रिय पड़े राक्षस पुनः सजीव होकर युद्ध के लिये तैयार हो गए । शिलाखण्डों की वर्षा से देवगण पुनः आतंकित होकर घबरा गए । इन लोगों को जान बचाना भारी पड़ रहा था । मयदानव की माया की वृद्धि को देखकर भगवान विष्णु ने वायु और अग्नि की राक्षसी माया को नष्ट करने का आदेश दिया, राक्षसी सेना नष्ट होने लगी तब पर्वतीय माया समाप्त

हो गई । अग्नि के प्रकोप से दानवों के विमान नष्ट हो-
 होकर पृथ्वी पर गिर रहे थे । इस प्रकार दानवी माया
 का अन्त हुआ । राक्षस पराजित हुए । इन्द्र को विजय
 प्राप्त हुई । चारों तरफ देवगण भगवान विष्णु की जय-
 जयकार करने लगे । सत्य व धर्म का राज्य स्थापित हो
 गया । सभी प्राणी पाप रहित हो गये । विश्व से अज्ञान
 रूपी अंधकार दूर हो गया । चारों तरफ यज्ञ हवन तथा
 देवताओं के लिए स्वस्तिवाचन होने लगा ।

—:०:—

देवताओं का कालनेमि से युद्ध

दैत्यों के पराजय का समाचार सुनकर कालनेमि नामक
 दैत्य बहुत ही क्रोधित हुआ । उसका शरीर मन्दराचल
 पर्वत के समान बृहदाकार, सूर्य के समान तेज युक्त मुकुट
 धारण किये हुए, चांदी के आभूषणों से युक्त, सौ भुजा,
 सौ मुख व सौ शिरों से युक्त हाथों में सैकड़ों शस्त्र धारण
 किये हुए पर्वताकार कालनेमि ग्रीष्म ऋतु के दावानल के
 समान क्रोध से प्रज्वलित होकर युद्ध क्षेत्र में आया ।
 कालनेमि केकेश धूम्रवर्ण के, दाढ़ी व मूंछ हरे रंग के,
 दाँत आगे को निकले हुए लाल आंखों से युक्त ऐसा प्रतीत

हो रहा था मानो उसने अपनी भुजाओं से आकाश को उठा रखा हो । उसके श्वांस छोड़ने से मेघ उड़ जाते थे, तथा उसके पदचाप से पृथ्वी हिल जाती थी । वह प्रलय-कारी मृत्यु के समान ऐसा प्रतीत होता था मानो वह क्षण भर में ही सभी देवताओं को भस्म कर देना चाहता हो । साधारण प्राणीजन उसे द्वितीय त्रिविक्रम भगवान ही समझ रहे थे । दानवराज मय तभी वहां आया और कालनेमि को हृदय से लगाया । कालनेमि के इस भयंकर रूप से इन्द्र आदि सभी देवता कांपने लगे ।

महाअसुर कालनेमि को देखकर दानवों में नया जोश भर आया । वे शस्त्रों से सुसज्जित होकर पुनः युद्ध के लिये तैयार होने लगे । जो मृत प्राय थे वे भी उठ खड़े हो गये । सबके मन से भय जाता रहा । सभी में नयी शक्ति का संचार इस प्रकार होने लगा । मानो उन लोगों ने अमृत पान कर रखा हो । मय, तार, वराह, हयग्रीव, विप्रचित पुत्र श्वेत, खर, लम्बा, बलि का पुत्र अरिष्ट आदि बहुत से दानव गदा, चक्र, फरसा, मूसल, प्रक्षेपणास्त्र, मुदगर, पर्वताकार, शिलायें, भिन्दीपाल, परिघ आदि अनेकानेक भयंकर शस्त्रों से सजकर चमचमाती खून की प्यासी तलवार लेकर असुर सैनिक कालनेमि को आगे करके युद्ध हेतु रणाङ्गन में उपस्थित हो गये । दूसरे तरफ

देवराज इन्द्र भी यम, कुबेर, अग्नि तथा वायु के संरक्षण में देव सेनाओं को विभिन्न प्रकार के अस्त्रों से सुसज्जित कर युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हो गये। राक्षसों व देवताओं की सेनाओं में भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। देवगण प्रारम्भ में तो बहादुरी से लड़े परन्तु बाद में शिथिल पड़ गए। दोनों सेनाओं में जमकर संघर्ष हो रहा था। बहुत सी सेना ने प्राणमोह से युद्ध स्थल का त्याग कर दिया। बहुत से वीर योद्धा रणक्षेत्र में स्तम्भ की तरह दृढ़ होकर खड़े रहे। दोनों में भीषण युद्ध हो रहा था। तभी महान् दैत्य कालनेमि युद्ध स्थल में आया। और देव सेनाओं पर प्रहार करने लगा। कटे वृक्षों की तरह देव सेना पृथ्वी पर लोटने लगी। बहुतों के वक्ष स्थल व मस्तक खण्ड-खण्ड हो गए। कालनेमि के मुष्टिक प्रहार से बहुत से गन्धर्व व यक्ष मर गए तथा बहुत से घायल होकर धराशायी हो गये। सभी शेष देवगण बुद्धि विहीन हो गये। इन्द्र भी किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। वरुण कुबेर व सभी दिक्पाल हतप्रभ हो गए। यम जिनमें सभी को अचेत करने की क्षमता है वे स्वयं ही अचेत हो गये। उन्हें प्राण रक्षा हेतु युद्ध स्थल से बाहर ले जाना पड़ा। इस प्रकार कालनेमि ने सभी देवताओं को पराजित कर दिया। वरुण, इन्द्र आदि लोकपालों का कार्य स्वयं कालनेमि करने लगा।

सूर्य, चन्द्र, अग्निदेव, वायुदेव आदि सभी देवता अपनी पराजय स्वीकार कर उसका पानी भरने लगे। उसने ब्रह्मा के पद पर भी अपना अधिकार कर लिया। दैत्यगण दानवराज कालनेमि की स्तुति करने लगे।

परन्तु जब वेद, धर्म, क्षमा, सत्य नारायण तथा भगवती लक्ष्मी ये पांचों दानवराज कालनेमि के अधिकार में नहीं आये तो वह अत्यन्त क्रोधित होकर वैष्णव पद को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् विष्णु के पास गया। वह श्यामवर्ण, पीताम्बर धारी, शंख, चक्र तथा गदा से युक्त भगवान् विष्णु को देखकर क्रोध कर बोला—अच्छा ! यह मेरे पूर्वज दानववंशियों का शत्रु है इसी ने समुद्र में रहने वाले मधु कैटभ आदि असंख्य दानवों का नाश किया है। इसी दुष्ट ने मेरे पूर्वज हिरण्यकश्यप आदि दैत्यों का नाश किया है आज अच्छा मौका है। मैं इस दुर्मति को अपने किये गये कर्मों का मजा चखाकर सदा-सदा के लिए शांत कर देता हूँ। इस प्रकार दानवराज कालनेमि भगवान् विष्णु को अपमानजनक शब्द बोलता रहा। परन्तु भगवान् विष्णु को रञ्च मात्र भी क्रोध नहीं आया। वे सदा की भांति प्रसन्नचित्त थे। वे मन्द-मन्द मुस्कान के साथ दानवराज की क्रोध रूपी वाणी को सुन रहे थे। फिर बोले—हे दानव ! घमण्ड अत्यन्त ही तुच्छ होता है। वीर

वही होता है जिसे कि शक्ति रहते हुए भी क्रोध नहीं आता है। अतएव तुम अपने धैर्य को खोकर गर्व के दोष के कारण पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो चुके हो। तुम झूठे बादलों की तरह गरजते हो। वीर योद्धा पुरुष गरजते नहीं हैं। कर्म करते हैं। स्त्रियां गरजती फिरती हैं। यह तुम निश्चय जानो कि आजमें तुम्हारा वध करके देवताओं को पुनः अपने पदों पर प्रतिष्ठित करूँगा।

विष्णु की इस प्रकार की वाणी को सुनकर दानव-राज कालनेमि जोर का ठहाका मारकर हँसा। और भयंकर क्रोध कर भगवान विष्णु पर प्रहार किया। साथ में अनेक राक्षसों ने भी भीषण शस्त्रों से भगवान विष्णु पर आक्रमण किया। कालनेमि ने अपनी भयंकर गदा विष्णु-वाहन पक्षीराज गरुड़ के मस्तक पर दे मारी। पक्षीराज गरुड़ बहुत पीड़ित हुए तथा चक्कर खाकर पृथ्वी पर आ गए। इससे भगवान विष्णु को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर क्या था क्रोध कर अपना सुदर्शन चक्र हाथ में ले लिया। फिर अपने चक्र से कालनेमि की बांहों व मस्तक को काटकर पृथ्वी पर धराशायी कर दिया। और कालनेमि सदा के लिए शान्त हो गया। साथ में सभी राक्षसों को भी मार गिराया। सभी देवता व ऋषिगण भगवान विष्णु की जय जयकार करने लगे। तथा उनकी स्तुति व

पूजन करने लगे । भगवान् विष्णु ने सभी देवताओं को अपने-२ पदों पर आसीन कर दिया । तथा सभी देवताओं को पूर्णतया आश्वस्त कर अपने-२ कर्मों को करने का उपदेश देकर अपने पवित्र बैकुण्ठ धाम को चले गए ।

—:०:—

ऋषिगणों की ब्रह्मलोक यात्रा

जब भगवान् विष्णु ब्रह्मलोक की यात्रा करके अपने दिव्य लोक को पहुँच गये । वहाँ वे अपने अस्त्र-शस्त्रों को रखकर आराम करना चाह रहे थे कि उन्होंने देखा कि उनके आश्रम के सामने समस्त देवतागण व ऋषिगण उपस्थित हुए हैं । उसी समय त्रिलोकी का अन्तिम क्षण जानकर नयन शालिनी कालरूप निद्रा देवाधिदेव भगवान् श्री विष्णु की स्तुति करने लगी । भगवान् विष्णु एकावर्ण विधि से समुद्रीय मेघ के समान शीतल तथा दिव्य शय्या पर लेट गए । सभी देवगण व ऋषिगण उनकी स्तुति कर रहे थे । इस शयनावस्था में ही भगवान् विष्णु की कुण्डली से सूर्य के समान तेजोमय, हजारों पत्र सहित तथा कई वर्ण वाले एक कमल की उत्पत्ति हुई । उसी कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । और ब्रह्मा जी के मुख से निकली श्वांस

से इस संसार की सृष्टि हुई। तत्पश्चात् ब्रह्मा द्वारा रचित प्रजाजन चार वर्णों में बंटकर वेदों में बतलाये गये कर्मों के अनुसार अपने-अपने धर्म तथा भगवान की भक्ति में लीन हो गये। भगवान विष्णु के शयन करते-२ सतयुग और त्रेतायुग अर्थात् एक दिव्य सहस्र वर्ष बीत गए। द्वापर युग के अन्त में सभी जीवात्माओं के पीड़ित होने पर सभी ऋषिजनों के स्तुति करने पर भगवान विष्णु निद्रा से जागे। तथा ब्रह्मा सहित देवताओं व ऋषियों को उपस्थित देखकर बोले—हे देवगणों ! आप लोगों को क्या कष्ट है। किस दुष्ट ने आप लोगों को सताया है। आप लोगों के भय का क्या कारण है। आप लोग बतायें। मैं इस समय आप लोगों के भय के कारण को नाश करने हेतु तैयार हूँ, आप ही लोगों के लिए निद्रा का त्याग किया है।

पितामह ब्रह्मा भगवान विष्णु से विनय पूर्वक बोले, 'हे प्रभु ! इस समय किसी पर कोई आपत्ति नहीं है। देवगण जैसे सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण आदि सभी अपने-२ कार्य को सुचारु रूप से कर रहे हैं। प्रजाजन भी सुखी हैं। तथा प्रसन्न चित्त होकर चारों वर्ण भली-भाँति अपने कर्मों का पालन करते हुए धर्म का पालन करते हैं। राजा लोग भी यशस्वी व शक्तिशाली बनकर सब प्रकार

से प्रजा के हित में कार्य करते हैं । यज्ञ करते हैं । देव पूजन कर्म आदि करते हैं । इस समय पृथ्वी पर किसी प्रकार का क्लेश नहीं है । परन्तु हे नाथ ! आज कल प्रत्येक नगर में राजा हो गए हैं । प्रत्येक नगर में । हजारों गांव हैं । अतएव प्रत्येक राजा के पास करोड़ों की संख्या में सैनिक हैं । अतएव इस बढ़ती सैनिकों की संख्या के भार से पृथ्वी पीड़ित है । अतः हे प्रभु ! इन बढ़ते सैनिकों के बोझ से पृथ्वी को हल्का करने की कृपा करें । इस समय सम्पूर्ण मानव धर्म के कार्यों में व्यस्त हैं । अतः आप ऐसा उपाय करें, जिससे कि धर्म का नाश न हो । मेरा तो विचार यही है कि पृथ्वी का बोझ हल्का करने हेतु राजाओं का संहार करना चाहिये । तथा इस पर विचार करने के लिए ब्रह्मा ने विष्णु को सुमेरु पर्वत पर चलने का निमन्त्रण किया ।

—:०:—

पृथ्वी का विपत्ति वर्णन

ब्रह्मा की प्रार्थना के अनुसार भगवान् विष्णु सुमेरु पर्वत पर पहुंच गए । साथ में सभी देवतागण भी गए । सुमेरु के शिखर पर देव सभा भवन अपनी दिव्य व अनुपम शोभा से सुशोभित था । उसके स्तम्भ सोने से निर्मित

थे तथा तोरण हीरे का द्वार रत्नों से जुड़ा हुआ था । सभा भवन के अन्दर दिवालों व छतों पर तथा फर्श पर नाना प्रकार के सुन्दर चित्र अंकित थे । उसके ऊपर देवताओं के विमान सदा ही उड़ान भरते थे । वहाँ की वाटिका में हर प्रकार के तथा हर मौसम के पुष्प पुष्पित थे । यहाँ विश्व-कर्मा की चित्रकारी को देखकर सभी देवताओं का मन गद्-गद् था ।

सभा में सभी देवतागण शान्त भाव से बैठ गये । ब्रह्मा जी ने सभा की कार्यवाही प्रारम्भ की । सभाध्यक्ष की आज्ञा पाकर पृथ्वी भगवान विष्णु को सम्बोधित कर विनयपूर्वक कहने लगी । हे भगवन् ! आपमें मैं तथा समस्त संसार व समस्त प्राणी आदि समाविष्ट हैं । आप जिन-जिन को धारण करते हैं । उन सबका भी बोझ हमें ढोना पड़ता है । जब-जब मेरे ऊपर भार बढ़ा है तब-तब आपने मेरा भार हल्का किया है । हे नाथ ! आप ही युद्ध क्षेत्र में वीर तथा निर्भीक क्षत्रियों राजाओं का विनाश कर मेरा बोझ हल्का कर सकते हैं । कारण कि मैं इन क्षत्रिय राजाओं की सेनाओं के बढ़ते बोझ से पीड़ित हो रही हूँ । हे देव ! आप ही मेरा बोझ हल्का कर मुझे भय मुक्त कर सकते हैं । मैं आपकी शरणागत हूँ ।

सभी देवगणों ने पितामह ब्रह्मा से निवेदन किया कि

हे पितामह ! अब आप हम लोगों को आज्ञा करें अब हम लोगों को पृथ्वी को भय मुक्त करने के लिए क्या करना चाहिये । ब्रह्माजी बोले—हे देवगणों मैंने पृथ्वी को भय मुक्त करने के लिए पहले से ही उपाय सोच रखा है । एक बात मैं आप लोगों को बताता हूँ उसे ध्यान पूर्वक सुने । एक बार मैं अपने पुत्र कश्यप के साथ सागर के पश्चिम तट पर स्थित होकर वेद, इतिहास, पुराण आदि नाना प्रसंगों के विषय में चर्चा कर रहा था कि गंगा, जलधर तथा मारुति सहित सागर मेरे सामने आया । वह सब प्रकार से सुन्दर व सुशोभित था । परन्तु वह मेरे यहां मुझे परास्त करने की भावना से आया । उसके खारे जल ने मुझे पीड़ित कर दिया । तथा मुझे वह उत्तेजित करना चाह रहा था । मैंने उसे कहा—शान्त हो जाओ । वह शान्त हो गया और अपनी सीमा में चला गया । फिर मैं देवताओं की भलाई हेतु गंगा व सागर दोनों को शाप देकर बोला—हे सागर ! मेरे समक्ष तुम राजा बनकर आये हो । अतएव अब तुम राजा ही बनो । अब तुम भरतवंश में जन्म लेकर शांतनु नाम से प्रजा पर राज्य करोगे । और यह सुन्दर नयनों वाली सुन्दरी स्त्री नदियों में श्रेष्ठ गंगा भी स्त्री का जन्म ग्रहण कर सदा तुम्हारी जीवन साथी रहेगी ।

सागर ब्रह्मा द्वारा शाप सुनकर दुःखी होकर बोला, 'हे देव ! मैं आपका सेवक हूँ। मैं आपके द्वारा ही निर्धारित कर्त्तव्य पालन के अनुसार पूर्णिमा के दिन वृद्धि को पाता हूँ। यदि मैंने पूर्णिमा के दिन कर्त्तव्य पालन करते हुए वायु के वेग से उछल कर आपको स्पर्श ही करा दिया है तो मैंने कोई अपराध नहीं किया है। यदि मुझसे अपराध हो ही गया है तो उसे आप क्षमा करने की कृपा करें। साथ ही गंगा नदी भी निर्दोष है। इन्हें मेरे कारण शाप नहीं मिलना चाहिये। आप इन्हें भी शाप मुक्त करें। तब ब्रह्माजी सागर से बोले—हे सागर ! तुम मेरे शाप से भयभीत न हो। देवताओं के कल्याण हेतु ही तुम्हें मनुष्य रूप में जन्म लेने को कहा है। शाप का कारण सुनो। इस समय अष्टवसु स्वर्ग से विमुख होकर पाताल चले गए हैं। वे पुनः गंगा के गर्भ से जन्म ग्रहण करेंगे। जिससे सभी देवगण प्रसन्नचित्त होंगे। वसुओं के पुर्नजन्म का कार्य तुम्हारे व गंगा के सहयोग से ही सम्पन्न होगा। तुम मानव जीवन में भी चक्रवर्ती राजा बनकर चारों वर्णों का वर्णानुसार पालन करते हुए गंगा सहित नाना प्रकार के आनन्दों का उपभोग करते हुए सारे कष्टों को भूल जाओगे।

ब्रह्मा जी देवगणों से बोले, 'हे देवताओं ! इस शांतनु-

वंश में पुनः जन्म पाकर सात वसु तो स्वर्ग चले गये परन्तु गंगा पुत्र भीष्म भी वसु ही हैं जो इस समय पृथ्वी पर हैं। राजा शांतनु की दूसरी पत्नी से विचित्रवीर्य नामक पुत्र हुआ। वही राजा हुआ। विचित्रवीर्य के पुत्र राजा पाण्डु व धृतराष्ट्र हुए। महाराज पाण्डु की दो पत्नियाँ कुन्ती और माद्री थीं। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी थी जो सर्वगुण सम्पन्न तथा तीनों लोकों में पतिव्रत धर्म के लिये प्रसिद्ध थी। अतएव हे देवगणों तुम सभी शांतनुवंश में जन्म ग्रहण करो। कुछ धृतराष्ट्र के तथा कुछ पाण्डु के यहां। दोनों के पुत्रों में भीषण प्रलयकारी युद्ध होगा। इस युद्ध में पृथ्वी के प्रायः सभी राजा लोग अपनी-२ सेनाओं के साथ मर कट जायेंगे। जिससे पृथ्वी का भार कम हो जायेगा। यदि कोई राजा उस युद्ध में बच भी गया तो उनको रात के सोते समय भगवान् शंकर के अंश रूप अश्वत्थामा अपनी अस्त्र रूपी अग्नि में सभी को जलाकर भस्म कर देगा। इस संघर्ष के अन्त में तृतीय द्वापर युग का अन्त हो जायेगा तथा भगवान् श्रीकृष्ण के निधन होते ही घोर कलियुग प्रारम्भ हो जायेगा। अब तुम लोग कुन्ती माद्री व गान्धारी के गर्भ से जन्म धारण कर दो पक्षों में बैठकर युद्ध की रचना करो। सभी राजा दोनों दल के पक्ष में होकर भिड़ जायेंगे। जिससे सभी नष्ट हो

जायेंगे । पृथ्वी का भार हल्का हो जायेगा । इस प्रकार ब्रह्माजी के निर्देशानुसार समस्त देवताओं ने अवतार ग्रहण किये । भगवान विष्णु ने ययाति वंश के विद्वान वासुदेव के यहां जन्म ग्रहण किया ।

—:०:—

नारद-विष्णु संवाद

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से नारद विष्णु के मध्य हुई बातचीत के सम्बन्ध में बताया—कि हे राजन् ! ब्रह्मा जी के निर्देशानुसार सभी देवताओं ने भरतवंश में जन्म ग्रहण किया, जैसे युधिष्ठिर धर्म, अर्जुन इन्द्र के, भीमसेन वायु के, नकुल तथा सहदेव दोनों अश्विनी कुमारों के, कर्ण सूर्य के, द्रोणाचार्य बृहस्पति के, विदुर यमराज के तथा दुर्योधन कलि के रूप में सभी किसी न किसी देवताओं के अंश रूप में पैदा हुए । समस्त लोकों में भ्रमण करने वाले महर्षि नारद देव सभा में पहुंच कर कुपित वाणी में भगवान विष्णु से बोले—हे विष्णु ! सभी देवताओं ने राजाओं के संहार करने हेतु पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया है यह सब बेकार है । जब तक तब नारायण पृथ्वी पर अवतार लेकर राजाओं का संहार नहीं करेंगे । तब तक

देवताओं से कुछ भी होने वाला नहीं है । क्योंकि सभी देवताओं की शक्ति आप ही के द्वारा संचालित होती है । जब सभी ने आपकी योजना के अनुसार जन्म ग्रहण कर लिया तो आपने क्यों नहीं अवतार लिया । आपको भी पृथ्वी पर अवतरित होना चाहिए । अतः हे भगवन ! आप भी अवतरित होकर पापी राक्षसों का विनाश कर पृथ्वी का भार हल्का करें ।

ब्रह्मर्षि नारद के वचनों को सुनकर विष्णु मुस्कराते हुए बोले—दैत्यों का नाश करने हेतु देवगणों ने पृथ्वी पर अवतार धारण किया है । यह मुझे भली-भांति ज्ञात है । अब ब्रह्मा जी मुझे आदेश दें कि मुझे किस वंश में और किस रूप में अवतार ग्रहण करना चाहिए । ब्रह्माजी विष्णु से बोले—हे भगवन् ! मैं आपको एक बात बताता हूँ । महात्मा वरुण के पास यज्ञ के समय दूध देने वाली अनेक गायें थीं । एक बार भगवान् कश्यप ने वरुण से यज्ञ हेतु उन गायों को लिया । परन्तु यज्ञ कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् अपनी दोनों पत्नी अदिति व सुरभी के कहने से कश्यप मेरी गायों को लौटाना नहीं चाहते थे । ये गायें ही हमारी जीवनीय शक्ति है । आपके सिवा कोई अन्य सहायक नहीं है । कृपा कर आप उनसे मेरी गायों को दिलवायें तथा उनको इस धृष्टता के लिये उचित दण्ड दें ।

तो हे विष्णु ! वे कश्यप मेरे श्राप से पृथ्वी पर वासुदेव नामक ग्वाले के रूप में मथुरा में जन्म ग्रहण कर गायों का पालन कर रहे हैं । तथा उनकी दोनों पत्नियां अदिति व सुरभी भी देवकी व रोहिणी के रूप में अवतरित होकर उनकी पत्नी रूप में आनन्द मय जीवन व्यतीत कर रही है । अतएव आप वासुदेव के घर ही देवकी के गर्भ से ग्वाल बाल के रूप में अवतरित होकर पापियों का संहार करें ।

—:०:—

विष्णु पर्व

नारद कंस संवाद

नारद जी सुरलोक से चलकर मथुरा में स्थित एक उपवन में आये । उन्होंने अपने आने की सूचना एक दूत के द्वारा उग्रसेन के पुत्र कंस के यहाँ भिजवाई । समाचार पाते ही कंस ने नारद से मिलने के लिए प्रस्थान कर दिया । नियत स्थान पर पहुँचकर कंस ने अग्नि के समान तेजोमय शरीर धारण किये हुए, पवित्र आत्मा एवं सूर्य के समान चमकने वाले ब्रह्मर्षि का दर्शन किया । झुककर दण्डवत प्रणाम किया तथा विधिवत पूजा अर्चना कर सुन्दर आसन पर बैठने का निवेदन किया ।

नारद जी अपना आसन ग्रहण कर कंस से बोले—हे वीर ! तुमने मेरा स्वागत किया है । मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । अब मैं तुम्हारे हित की बातें कहता हूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनो । मैं ब्रह्मलोक आदि का भ्रमण करता हुआ जब सुमेरु पर्वत पर स्थित देवसभा में गया तो वहाँ मैंने स्वयं ब्रह्मा जी सहित देवताओं को मन्त्रणा करते हुए देखा व सुना,

वही तुम्हें बता रहा हूँ । वे लोग तुम्हारे अनुयायियों के साथ तुम्हारा भी वध करने की योजना बना रहे थे । तथा तुम्हारी बहन देवकी के आठवां पुत्र ही तुम्हारा प्राण घातक सिद्ध होगा । भगवान् विष्णु ही तुम्हारा वध करेंगे तथा इन्होंने ही तुम्हारे पूर्व जन्म में तुम्हारा वध किया था । अब तुम सावधान होकर देवकी के गर्भ को नष्ट करने का प्रयत्न करो । अब मैं चलता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो ।

कंस नारद की बातों को सुनकर हँसता रहा । और बोला मेरे बल के सामने खड़ा होने की किसकी शक्ति है । यदि मैं चाहूँ तो पल भर में ही सारे मनुष्यों, पशु, पक्षियों व अन्य प्राणियों को नष्ट कर दूँ । फिर भी उसने सावधानी रूप में हयग्रीव, केशी, प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, वृषभ पूतना व कालिया को निर्देश भेजा कि वे पृथ्वी पर भय मुक्त होकर विचरण करें और जो भी मेरा शत्रु मिले उसका वध कर दें । हयग्रीव व केशी नामक गण को देवकी के गर्भस्थ बालकों का ध्यान रखने का आदेश दिया । अपने सभासदों से बोला कि हालाँकि नारद एक दूसरे में भगड़ा कराने में चतुर हैं । उनको इसी में बड़ा आनन्द आता है । फिर भी हमें अपने शत्रु से सावधान तो रहना ही चाहिए ।

—:०:—

योगनिद्रा-विष्णु वार्ता

क्रोध व भय से युक्त कंस ने अपने अनुयायियों को अपने शत्रुओं को ढंढ कर बध करने का आदेश दिया तथा देवकी के गर्भ की जानकारी रखने का आदेश दिया जिससे कि समय रहते उसके गर्भ को नष्ट किया जा सके। साथ ही यह भी आदेश दिया कि अन्तःपुर में देवकी की सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिए। तथा वासुदेव को भी कष्ट न पहुंचाया जाय। बस मात्र नजरबन्द ही रखा जाय। इधर भगवान विष्णु भी कंस द्वारा देवकी के गर्भ की नष्ट करने की योजना जान गए। तब उन्होंने विचार किया कि वह दुष्ट तो देवकी के सात गर्भ को नष्ट कर ही देगा। हमें देवकी के आठवें गर्भ में जन्म लेकर अपना कार्य पूरा करना होगा। इसी मध्य भगवान विष्णु को ध्यान आया कि दानव राज कालनेमि के छः पुत्र पाताल में रहते हैं। जो कि महान तपस्वी व अमृतपान कर दीर्घायु हैं। उन्होंने अपने दादा हिरण्यकश्यप की इच्छा के विपरीत ब्रह्माजी की भक्ति व आराधना कर यह वरदान मांग लिया था कि हम देवता, विशाल सर्प, शाप देने वाले मुनियों यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और किसी भी मनुष्य के द्वारा न मर सकें। इस पर ब्रह्माजी ने एवमस्तु कह दिया। इन लोगों द्वारा ब्रह्माजी की आराधना करने

के कारण हिरण्यकश्यप ने इन सब से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर घर से निकाल दिया । तथा शाप दिया कि तुम सभी देवकी के गर्भ से जन्म ग्रहण करोगे और कंस एक-एक करके तुम छःहों को गर्भ के समय ही में मार डालेगा ।

भगवान् विष्णु शीघ्र भूतल लोक में पहुँच गए जहाँ कालनेमि के छःहों पुत्र जलशय्या पर निश्चिन्त होकर सोये थे । विष्णु ने अपनी माया शक्ति के द्वारा उनके प्राणों को लेकर निद्रा देवी को देकर आदेश दिया कि वह देवकी के गर्भ में स्थापित करे । निद्रा देवी ने ऐसा ही किया । उन छःहों असुरों ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया और कंस ने सभी को मार दिया । फिर विष्णु ने कहा—देवकी के सातवें गर्भ में जो चन्द्रमा का अंश प्रवेश करेगा वह मेरा बड़ा भाई होगा । सातवें माह में वह देवकी के गर्भ से परिवर्तित होकर रोहणी के गर्भ में स्थापित हो जायेगा । उस बालक का नाम संकर्षण होगा । और समाचार यह प्रचारित हो जायेगा कि देवकी का सातवां गर्भ भय से स्वयं ही गिर गया । इसके पश्चात् देवकी के आठवें गर्भ में मैं प्रवेश कर जन्म ग्रहण करूँगा, हालांकि कंस मुझे भी वध करने के अनेकों उपाय करेगा परन्तु वह सफल नहीं होगा । तथा हे निद्रादेवी तुम वासुदेव के अभिन्न मित्र

गोपराज नन्द की पत्नी के नवें गर्भ में प्रवेश कर कृष्णपक्ष की नवमी को जन्म ग्रहण करो । मैं भी उसी समय आधी रात को जन्म ग्रहण करूँगा फिर आठवें माह में एक साथ जन्म लेंगे जिससे गर्भ में परिवर्तन होकर मैं यशोदा के पास पहुंच जाऊँगा और तुम देवकी के पास आ जाओगी । कंस की मति विपरीत होगी । वह आठवें गर्भ को नष्ट करने के लिए तुम्हारा पैर पकड़कर पत्थर पर मारेगा । परन्तु तुम आकाश में स्थित हो जाओगी । उस समय की तुम्हारी शोभा अनुपम होगी । मेरे समान कृष्ण वर्ण की तुम्हारी भुजायें बलराम के मुख के समान तुम्हारा सुन्दर मुख, तुम्हारे हाथों में त्रिशूल सोने की मूठ वाली तलवार मदिरा से पूर्ण पात्र और अत्यन्त स्वच्छ कमल तथा तुम्हारे शरीर पर नीले रंग रेशमी वस्त्र व पीताम्बर का उत्तमोत्तम शोभायमान होगा । चंद्रमा की किरणों के समान तुम्हारे वक्ष पर सुन्दर हार होगा । तुम्हारे सिर पर सुन्दर मुकुट व काले भौरे के समान बाल शोभायमान होंगे । तुम्हारी इस अनुपम सुन्दरता को देखकर चंद्रमा को भी ईर्ष्या होने लगेगी । मेरी आज्ञा से तुम स्वर्ग में स्थित हो जाओगी । इन्द्र मेरी आज्ञा मानकर तुम्हारा स्वागत कर अपने देव-गणों में सुन्दर स्थान देंगे । इन्द्र तुम्हें अपनी बहन मानेंगे और विन्ध्याचल पर तुम्हारा शाश्वत स्थान होगा । कुशिक

गोत्रीय होने के कारण तुम्हारा नाम कौशिकी होगा । तुम्हारे आशीर्वाद से प्राणियों की मनोकामनायें पूर्ण होंगी । इच्छित रूप धारण कर चारों तरफ भ्रमण कर सकोगी । विन्ध्याचल पर ही स्थित दो राक्षस शुम्भ-निशुम्भ का वध करोगी । भूत-प्रेत तुम्हारे साथ होंगे । प्रत्येक नवमी को मनुष्य तुम्हें बलि देकर तुम्हारी पूजा करेंगे किसी भी मनुष्य पर भयंकर कष्ट क्यों न ही । वह जैसे ही तुम्हारा स्मरण करेगा उसका संकट दूर हो जायेगा ।

—:०:—

भगवान श्री कृष्ण का जन्म

भगवान विष्णु ने देवकी के आठवें गर्भ से जन्म धारण किया तथा ठीक उसी समय यशोदा के गर्भ से निद्रादेवी ने कन्या के रूप में जन्म ग्रहण किया । भगवान ने जैसे ही जन्म लिया कि समस्त भूमण्डल काँप उठा पर्वत हिलने लगे । समुद्र का जल ऊपर को उछलने लगा । हवा तेज बहने लगी । तारा गण अत्यधिक प्रकाशवान हो गये । भगवान के जन्म के समय अभिजित नक्षत्र जयन्ती नामक रात्रि और विजय नामक मुहूर्त था । देवगण आकाश में मधुर वाद्य बजाते हुए वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए

पुष्पों की वर्षा करने लगे । गन्धर्व व अप्सरायें नाचने गाने लगीं । वासुदेव उन्हें देखकर बोले—हे प्रभो ! आप अपना रूप प्रकट कीजिये । मुझे कंस से बहुत भय है कि वह कहीं आपका वध न कर दे । क्योंकि आपसे बड़े मेरे सात पुत्रों को नष्ट कर चुका है ।

भगवान ने अपना रूप वासुदेव को दिखाया । वासुदेव उनके अलौकिक रूप को देखकर आनन्द विभोर हो उठा । फिर भगवान बोले—हे पिताजी ! आप मुझे गोपीराज नन्द के यहां ले चलिए । उन्होंने भगवान की आज्ञा से उन्हें लेकर नन्द की पत्नी यशोदा के पास ले जाकर उनके निकट सुला दिया । और यशोदा के गर्भ से उत्पन्न कन्या को लेकर वापस आये तथा देवकी के पास सुला दिया । इन सब कार्यों का पता नहीं चला । फिर वासुदेव ने देवकी को कन्या उत्पन्न हुई है इसकी सूचना कंस को भिजवा दी । कंस अपने सेवकों के साथ सूचना पाते ही शीघ्र पहुँच गया । और वासुदेव देवकी को भयभीत कर कन्या को माँगा । देवकी अवरूद्धित व दुःखी कण्ठ से बोली—हे भाई ! तुमने पहले ही मेरे सात पुत्रों को मार डाला है । यह कन्या भी मरी हुई सी है । इसे क्या मारोगे । स्वयं देख लो, कंस ने कन्या को देखा । मरा हुआ देखकर प्रसन्न हुआ तथा उसका पैर पकड़कर पत्थर पर दे मारा ।

कंस द्वारा कन्या को पत्थर पर पटकते ही वह आकाश में उड़ गई । तथा काली रात में वह ठीक उसी प्रकार शोभा को प्राप्त थी जैसा कि भगवान विष्णु ने योगनिद्रा को बताया था । वह बार-बार नाचती, हंसती और आकाश में घूमते हुए मदिरापान करने लगी । फिर भयंकर अट्टहास कर क्रोधित स्वर में कंस से बोली—हे पापी कंस ! तूने मेरा वध करने के लिए मुझे पृथ्वी पर पटका । यह तू निश्चित होकर जान ले । जब तुम्हारी मृत्यु का समय आयेगा तब मैं अपने हाथों से तेरा शरीर फाड़कर तेरा रक्त पिऊंगी ।

उस कन्या के बच जाने तथा इस प्रकार की वाणी को सुनकर कंस बड़ा लज्जित हुआ । अकेले में देवकी से बोला—हे बहन मैंने अपनी मृत्यु के भय से तुम्हारे अनेक पुत्रों को मार डाला । परन्तु अब ऐसा ज्ञात होता है कि मेरी मृत्यु का कारण अब कोई दूसरा व्यक्ति ही बनेगा । वास्तव में मैं बड़ा निर्दयी व दुष्ट हूँ । अपने प्रियों का ही नाश कर दिया । फिर विधि है जो भाग्य में लिख दिया है उसे मनुष्य कैसे टाल सकता है । हे सती ! अब तुम पुत्र वध के सन्ताप का त्याग करो । अब तुम यही समझो कि विधि के विधान के कारण ही मैंने ऐसा दुष्कर्म किया है । मैं तो इस कार्य को करने में निमित्त मात्र हूँ ।

समय ही मनुष्य का भयंकर शत्रु है यही उसका विनाश करने वाला है । अतएव अब तुम्हें पुत्रों की चिन्ता त्याग कर शोकपूर्ण रुदन बन्द करना चाहिए । क्योंकि मनुष्य की गति ही ऐसी है कि वह काल पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता । मैंने आपके साथ घोर अन्याय किया है । इसलिए मैं आपके चरणों में पड़कर क्षमा याचना करता हूँ ।

देवकी भी कंस पर करुणा कर बोली—उठो ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है । विधि के नियम में ऐसा ही होना था । वास्तव में मनुष्य कुछ नहीं करता । सब कार्य ईश्वराधीन है । मनुष्य तो एक निमित्त मात्र होता है । जाओ ! तुम यह भूल जाना कि मैंने तुम पर क्रोध किया है । क्योंकि जिसको जाना होता है । वह मृत्यु को अवश्य प्राप्त होता है उसके पश्चात् उसका केवल अवशेष मात्र रह जाता है ।

यथा—मृत्यु नाऽनहु ते पूर्व शेषोः हेतु प्रवर्तते ।

विधिना पूर्वदृष्टं न प्रजासर्गेण तत्त्वतः ॥

—:०:—

श्री कृष्ण की ब्रज यात्रा

वासुदेव ने अपनी दूसरी पत्नी रोहिणी को भी श्री कृष्ण के जन्म से पूर्व ही पहुंचा दिया था। फिर वासुदेव को सूचना प्राप्त हुई कि रोहिणी के गर्भ से चन्द्रमा के समान सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ है। जब नन्द मथुरा में कर चुकाने आये। तब वासुदेव ने नन्द से मिलकर कहा—हे मित्र ! तुम शीघ्र ही ब्रज पहुंचकर यशोदा के पुत्र व रोहिणी के पुत्र दोनों का ही जातकर्म आदि संस्कार पूर्ण कर दोनों का भली-भांति पालन-पोषण करो। तथा सावधानी पूर्वक दोनों बालकों की रक्षा करो। दोनों बालक लगभग समान आयु के हैं आप ऐसी व्यवस्था रखें कि दोनों ही गायों के भ्रुण्ड के साथ खेलें घूमें। बाल्यावस्था में बालक स्वतन्त्र व उच्छ्रंखल स्वभाव के होते हैं। कृपा कर आप इसके लिए भी सावधान रहना। वृन्दावन में आप गोपों का निवास स्थान न स्थापित कीजियेगा क्योंकि केशिन नामक राक्षस, अनेकों सर्प और हिंसक पशु-पक्षियों का भय है।

यथा—न च वृन्दावने कार्यो गवाँ घोषः कथंचन ।

भेतव्यं तत्र वसता केशिन, पापदर्शिनः ॥

हे मित्र अब रात समाप्त हो रही है आप अब शीघ्र

ही ब्रज को वापस जायें । क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि आपके ऊपर हिंसक पक्षी मंडरा रहे हैं । तब नन्द वासुदेव विदा होकर यशोदा व अपने बच्चों के साथ पालकी में बैठकर ब्रज को वापस हो लिए । और ब्रज में उस स्थान पर पहुंच गए । जहाँ गाय ही गाय थीं गोप बालक लम्बी-लम्बी चोटियों वाले थे क्रीड़ा कर रहे थे । वहाँ दूध दही घी की मधुर सुगन्ध आती थी । गोपिकायें सुन्दर-सुन्दर अंगियां व साड़ी पहने वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित होकर सिर पर जल की गगरी लिए शोभा को प्राप्त हो रही थीं । उस गोप ब्रज में प्रवेश करते नन्द प्रसन्नचित्त हो गए बूढ़े गोप गोपियों ने उनका भरपूर स्वागत किया । नन्द ने रोहिणी की गोद में श्री कृष्ण को दे दिया ।

—:०:—

श्री कृष्ण द्वारा छकड़े को पलटना

नन्द ने वहाँ बहुत दिनों तक गोपों के साथ निवास किया । दोनों पुत्रों (रोहिणी व यशोदा के) का नामकरण संस्कार कर रोहिणी के पुत्र का नाम संकर्षण तथा यशोदा के पुत्र का नाम श्रीकृष्ण रखा । एक दिन श्रीकृष्ण सुख-पूर्वक निद्रा में सो रहे थे । उसी समय यशोदा जी श्री

कृष्ण को छकड़े (बैलगाड़ी) के नीचे लिटाकर यमुना जी में स्नान करने चली गई। तब तक श्रीकृष्ण जग गए और रोदन करते हुए जैसे कि स्तनपान करने की इच्छा हो, हाथ पैर चलाने लगे। उन्होंने पांव जैसे ही ऊपर उठाया पांव छकड़ा में लगा। छकड़ा पलटकर चूर-चूर हो गया। उसी समय यशोदा गीले वस्त्र में ही शीघ्रता से लौटीं तो छकड़ा को पलटे हुए व टूटे देखकर घबड़ा गई कि बच्चे को कोई हानि तो नहीं हुई। परन्तु बच्चे को सुरक्षित पाकर प्रसन्न हो गई तथा बच्चे को छाती से लगाकर स्तनपान कराने लगीं कि यदि बच्चे को कुछ हो जाता तो नन्द जी आज कितने नाराज होते। तब तक नन्द जी भी वहां आ गए वे भी छकड़े को पलटा अथवा टूटा हुआ देखकर घबड़ा गए। सोचने लगे बच्चे सुरक्षित तो हैं। घर में जाकर बच्चे को सुरक्षित पाकर नन्द का हृदय प्रसन्न हुआ। यशोदा से पूछा यह छकड़ा कैसे पलटा ! यशोदा ने बच्चे को छकड़े के नीचे लिटाकर यमुना स्नान करने जाने तथा लौटने पर छकड़े को पलटा होने की बात बतायी। उन्हें भी पता नहीं था कि छकड़े को किसने पलटा। तब तक गोप बच्चे आ गए। बोले यह छकड़ा इसी बच्चे ने अपने पैर के भार से उलट दिया। जिससे यह टूट भी गया। हम लोगों ने अपनी आंखों से देखा।

यह सुनकर नन्द जी भयमिश्रित प्रसन्न मुद्रा में हो गए ।
तथा श्रीकृष्ण द्वारा छकड़े पलटे जाने पर आश्चर्य चकित
हो रहे थे । फिर टूटे छकड़े को जोड़कर ठीक कर दिया ।

—:०:—

पूतना वध

कंस ने अपने दूतों को आदेश दिया ही था कि पूरी पृथ्वी पर खोजो कि कौन सेरा शत्रु है और उसका वध कर डालो । उसके बाद कंस की धाय पूतना पक्षी का रूप धारण कर नन्द के घर आधी रात को पहुंचकर घोर भयानक आवाज करने लगी । फिर दूध की वर्षा करती हुई छकड़े पर जा बैठी । उसके बाद श्रीकृष्ण के पास जाकर उनको स्तनपान कराने लगी सभी लोग गहरी निद्रा में सोये थे अतएव पूतना के आगमन का किसी को पता नहीं चला । श्रीकृष्ण ने पूतना का स्तनपान तो किया ही, साथ ही उसके प्राण को भी पी गए । पूतना भयंकर चीत्कार करते हुए पृथ्वी पर पड़ गयी । उसकी भयंकर आवाज को सुनकर सभी गोप, नन्द व यशोदा जाग गये । नन्द के घर भीड़ लग गई । सभी ने मरी हुई विशाल शरीर वाली स्त्री पूतना को देखा जिसके स्तन कटे हुए

थे । यह घटना क्यों और कैसे हुई । इसका पता किसी को नहीं चला । यहां तक कि यशोदा जी को भी, जो कि श्री कृष्ण (बालक) को लेकर सोयीं थीं, उन्हें भी इस सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था । सभी लोग आश्चर्य चकित होते हुए अपने घर को गये । नन्द व यशोदा भी आश्चर्य में पड़ते हुए श्री कृष्ण के जीवन के लिए भयभीत हो गये । साथ ही उनके मन में यह बात भी उठने लगी कि यह सब कंस के द्वारा ही किया गया है ।

यशोदायामजात्य नन्दगोपः सबान्धवः ।

कंसाभ्वयं चकारोग्रं विस्मय च जगासह ॥

—:०:—

यमलार्जुन वृक्ष का भंग होना

समय बीतने के साथ-साथ दोनों गोप बालक संकर्षण व श्रीकृष्ण शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह वृद्धि को प्राप्त होने लगे । दोनों घुटनों के बल चारों तरफ दौड़ने लगे । कभी-कभी थोड़ा बहुत खड़ा होने की चेष्टा भी करते थे । दोनों बालकों का समान रूप से पालन-पोषण होता था । अतएव दोनों के वस्त्र, शय्या, आसन तथा बाल क्रीड़ाओं के हाव-भाव भी समान ही थे । उठना बैठना नाक भौंह

सिकोड़ना सब समान था । दोनों ही साथ खेलते हुए अपने शरीर में कभी उपला का भस्म लपेटे, कभी उपले का चूरा तथा कभी हाथ में, देह में, गोबर व मिट्टी लपेटे बाल लीला करते हुए यशोदा व नन्द को आनन्दित कर रहे थे । परन्तु बड़े होने के साथ-साथ शरारती भी होने लगे । एक दिन माता यशोदा ने नाराज होकर श्री कृष्ण के कमर में रस्सी बाँधकर ओखली से बांध दी । बोली अब तेरे में शक्ति है तो इससे छुड़ाकर चला जा । कहकर अपने काम में लग गई ।

ततो यशोदा संक्रुद्धा कृष्णं कमललोचनम् ।

आनाय्य शकटोमूले भर्त्सयन्ती पुनः पुनः ॥

दाम्ना चैवोदरे बद्ध्वा प्रत्यबन्धदुल्लखले ।

यदि शक्नोषि गच्छामि तमुक्त्वा कर्म साऽकरात् ॥

श्री कृष्ण ओखली को धीरे-धीरे खींचते हुए घर से बाहर निकल गए, और वहां पहुंच गए, जहां यमल व अर्जुन नामक जोड़े वृक्ष एक साथ खड़े थे । दोनों की जड़ें एक साथ जमीन में लगी थीं । उसके मध्य से श्री कृष्ण पार होकर ओखली को खींचने लगे । ओखली अटक गई श्री कृष्ण द्वारा धक्का देकर झटके से ओखली के खींचने पर दोनों वृक्ष पृथ्वी पर धराशायी हो गये । श्री कृष्ण

उन दोनों के मध्य खड़े होकर ताली बजा-बजाकर हँस रहे थे । गोप बालायें उन्हें इस दशा में देखकर माता यशोदा के यहां दौड़ी-दौड़ी गई । बोलीं—अरी माता ! तुम यहां क्या कर रही हो । तेरो लला कहाँ है कैसे है, कुछ खोज खबर नहीं रखती । यमलाजुन के वृक्ष दोनों टूटकर जड़ समेत पृथ्वी पर पड़ो हैं ता बीच तुम्हारो श्री लला खड़ो है और ताली दे-दे के ठठो मारो है । अरी जल्दी चलो देर न करो । गोप बालाओं से श्रीकृष्ण का समाचार पाकर यशोदा घबड़ायीं तथा दौड़ती हुई श्रीकृष्ण के पास गयीं कि कहीं कछु भयो तो नाहिं, परन्तु वहां देखती है कि श्रीकृष्ण दोनों वृक्षों के बीच में ताली बजा-बजाकर हँस रहे हैं । सभी गोप भी एकत्र हो गए हैं तथा श्रीकृष्ण को सुरक्षित पाकर भगवान को दुहाई देते हैं । नन्द जी उनके कमर से रस्सी को खोलकर हृदय से लगा लेते हैं । गोप लोग नन्द से कहते हैं कि न वर्षा, न बिजली, न हाथियों का उपद्रव तो यह वृक्ष कैसे गिरा । हे नन्दजी ! इसके पहले दो दुर्घटनायें हो चुकी हैं । एक छकड़े का टूटना तथा दूसरा पूतना का मरना । तीसरा यह है यमलाजुन वृक्ष का गिरना । ये सब हम सभी के लिए अशुभ सूचक है । अब हम लोगों को यह स्थान बदलकर अन्यत्र चले जाना चाहिए । इस प्रकार जिसके जो समझ

में आता वही बात कहता । और नन्द जी श्रीकृष्ण को ऐसे हृदय में लगाये थे । जैसे खोया हुआ बहुमूल्य रत्न पा लिया हो ।

—:०:—

श्री कृष्ण द्वारा ब्रज त्यागने की योजना

संकर्षण व श्रीकृष्ण दोनों भाई अब सात वर्ष की आयु के हो गये । संकर्षण नीले वस्त्र तथा श्रीकृष्ण पीले वस्त्र पहनते थे, माथे पर चन्दन का टीका लगाते थे । सिर पर कमल पुष्प के मुकुट, कान में मोर पंख का कुण्डल, गले में बनमाला, कंधे पर मूँज की रस्सी का जनेऊ, हाथ में तुम्बी व छींका से मुशोभित बंशी बजाते हुए लम्बी शिखा धारण कर गौवों को वनों में चराते थे । खेलते थे । एक बार श्रीकृष्ण संकर्षण से बोले—हे भैया ! अब हम लोगों को इस वन को त्याग देना चाहिए । क्योंकि गौओं ने इस वन के काष्ठ वृक्ष व घासों को काट-काट कर बरबाद कर दिया है । अब गौवों के लिए नये और अच्छे घास उपलब्ध भी नहीं हैं । वृक्ष भी अब इतने दूर-दूर व पत्रहीन दिखाई देते हैं कि शीतल व सुगन्धित वायु मिलना कठिन हो गया है । पहले तो सुविधा से काष्ठ व घास पास में ही मिल

जाया करता था । अब इसके लिए काफी दूर जाना पड़ता है फिर भी कठिनाई से ही मिलता है । पक्षी भी लगभग अब इन वन को त्याग चुके हैं । अब यह ब्रज गांव न रह कर नगर हो गया है । पर्वतों की शोभा गौएँ हैं और गौएँ ही हमारे लिए परमगति हैं ।

शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं वनम् ।

वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परमा गतिः ॥

अतएव अब हम लोगों को वहाँ चलना चाहिए । जहाँ कि गौवों को नवीन तृण उपलब्ध हो तथा हमको खेलने के लिए भी सुन्दर व उपयुक्त स्थान उपलब्ध हो सके । यहां जो थोड़ा बहुत घासें उपलब्ध भी हैं, वह भी गोबर व गोमूत्र से क्षारीय बन गए हैं जिनके चरने से गौवों का दूध हितकर नहीं होता । हम लोगों को सब ब्रज को त्याग कर वृन्दावन चलना चाहिए । यह यमुना के किनारे सुन्दर व हरे वृक्षों व घासों से युक्त है । जिस पर सुन्दर-सुन्दर सुस्वादु फल व फूल लगे हैं । वहाँ सदा शीतल व मनोरम ऋतु व दृश्य रहता है । वहाँ गोपिकायें आनन्द से विहार कर सकती हैं । पास में ही नन्दन वन है जिसके मध्य में उच्च शिखर वाला गोवर्धन पर्वत है । गोवर्धन पर्वत के ऊपर नीले मेघ के समान हरा भरा एक योजन

में फैला भाण्डीर नामक वट वृक्ष है। उन सबको देखकर हम लोग आनन्दित होंगे। इन ब्रज वासियों को ब्रज त्यागने के लिए भय उत्पन्न करना होगा। जिससे कि ये ब्रज को त्यागकर अन्यत्र चलने को छटपटाने लगे। कह कर श्रीकृष्ण ने अपने शरीर से हजारों भीषण आकार वाले भेड़िये उत्पन्न कर दिये। भेड़िये गोपों गौवों, गोपियों व बछड़ों पर आक्रमण कर आतंक मचाने लगे। कितने गौवों व बछड़ों को मार दिया तथा गोप बालकों को उठा ले गए। पूरे ब्रज में आतंक छा गया। लोगों को घर से निकलना कठिन हो गया। तथा गौवों को वन में जाना भी। उन भेड़ियों से भयभीत होकर सभी ब्रज वासी इकट्ठे रहने लगे।

—:०:—

ब्रज वासियों का वृन्दावन जाना

भेड़ियों का आतंक चरम सीमा पर था। सभी वृद्ध गोपों ने आपस में परामर्श किया कि अब इस असुरक्षित स्थान में रहना ठीक नहीं है। मनुष्यों, गौवों व बछड़ों को मारना भेड़ियों को नित्य प्रति का काम हो गया था। सभी ने नन्द से भी ब्रज त्यागने का परामर्श दिया। नन्द

वृद्ध गोपों के परामर्श को स्वीकार करते हुए बोले—ऐसी दशा में ब्रज को त्यागने में देर नहीं करनी चाहिए । सभी ब्रज वासियों में मुनादी पिटवा देनी चाहिए कि सभी शीघ्र से शीघ्र अपने गौवों व बछड़ों को एकत्र कर तथा छकड़ों पर अपना सारा सामान लादकर वृन्दावन चलने के लिए एकत्र हो जायें । ब्रज त्यागने व वृन्दावन चलने की सूचना सभी ब्रज वासियों में विद्युत गति की तरह फैल गई । थोड़े ही समय में सभी अपने-अपने गौवों, बछड़ों व सामान लाए छकड़ों के साथ एकत्र हो गये । तथा वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर दिया । गोपिकायें सिर पर व बगल में गगरी दबाये एक पंक्ति में चल रही थीं । उनकी नीली पीली व लाल रंग की चोलियों के रंग का मेल इन्द्र धनुष को भी मात कर रहा था । वे छकड़े अपने तीव्र गति में ऐसे लग रहे थे जैसे वे हवा में तैर रहे हों । सभी ने वृन्दावन पहुँचकर अपने छकड़ों को चन्द्राकार स्थिति में खड़ा किया । फिर गौशालाओं का तथा अपने रहने के लिए झोंपड़ियों का निर्माण किया । छकड़े से उतार कर अपना सभी सामान अपनी झोंपड़ियों में उचित स्थानों पर रखा । ब्रजभूमि मरुभूमि की तरह उदास हो गई । अब वहाँ कौवे मंडराने लगे । वृन्दावन में गौवों को सुन्दर चारा उपलब्ध होने लगा तथा मनुष्यों को मधुर जल व स्वादिष्ट फल,

सभी आनन्दित हो गये । भेड़ियों का भय जाता रहा । सभी गौएँ, गोप-गोपिकायें, संकर्षण आदि श्री कृष्ण के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे ।

—:०:—

कालियानाग

एक बार श्री कृष्ण दह के समीप स्थित कदम्ब के वृक्ष पर चढ़े गये और उस पर से कालिया दह में कूद पड़े । उनके कूदने से जल बौखला उठा तथा भयंकर शब्द कालिया नाग के निवास स्थान तक पहुंच गया । उसे सुन कर वह क्रोधित हो उठा । उसकी आंखें लाल-र हो गई । अपने पाँचों मुखों से आग की लपटें छोड़ने लगा जिससे दह का पानी उबलने लगा । कालिया नाग के विष से दह का जल कृष्णवर्ण का हो गया । श्री कृष्ण जल में तैर रहे थे । कालिया नाग श्री कृष्ण की तरफ फुंकारता हुआ भपटा तथा उन्हें पकड़कर जोर से बांध लिया तथा काटने लगा । कालियानाग के मुख से निकलती हुई आग की लपटों, गरम उच्छ्वास तथा काटने से उसके तीव्र विष का श्री कृष्ण पर कोई प्रभाव तो नहीं पड़ा । परन्तु उसके गरम उच्छ्वास से दह के किनारे के सभी वृक्ष व घास जलकर भस्म हो गए ।

नन्द सहित सभी गोप दह के किनारे खड़े होकर अश्रु पात करते हुए विलाप कर रहे थे—हाय श्री कृष्ण हाय श्री कृष्ण ! इस पर बलराम (संकर्षण) क्रोधित होकर उच्च स्वर में बोले—हे श्री कृष्ण ! इस नाग को मारकर जल्दी बाहर आओ । नन्द बाबा सहित जन समूह तुम्हारे लिए चिन्तित हैं । तब श्रीकृष्ण ने कुश की रस्सी से कालियानाग को नाथ कर उसके मस्तक पर नाचने लगे । कालियानाग पीड़ित होकर विनय पूर्वक श्री कृष्ण से बोला—हे प्रभो ! मैंने आपको पहले पहचाना नहीं था । इसलिए मैंने आप पर क्रोध किया था अब मैं आपकी शरण में हूँ कृपया आप हमें प्राण दान करें तथा आगे मुझे निर्देश दें कि हमें क्या करना है ।

श्री कृष्ण बोले—तुम इस यमुना जल को त्याग कर सपरिवार समुद्र में जाकर निवास करो । आज के बाद यहाँ यदि मैंने तुम्हें तुम्हारे पुत्रों अथवा भाई बन्धुओं को देखा तो निश्चय ही वध कर दूँगा । तुम्हारे यहाँ रहने से सभी भय करते हैं तथा यमुना जल भी दूषित हो गया है । इसलिए शीघ्रतिशीघ्र तुम्हें यह स्थान छोड़ देना चाहिए । तुम्हें गरुड़ से भय है परन्तु वह तुम्हारे मस्तक पर मेरे पादचिह्नों को देखकर भगवान का स्मरण कर चला जायेगा । तुम्हें कुछ नहीं बोलेंगा । इसके बाद श्रीकृष्ण

के चरणों में नतमस्तक होकर कालियानाग नन्द व सभी गोपों के देखते-देखते दह से चला गया श्री कृष्ण दह से बाहर निकल आये । सभी गोप उन्हें घेरकर स्तुति करते हुए दुहाई देने लगे । तब नन्द से कहने लगे—अब हम लोगों को जरा भी भय नहीं है क्योंकि अब हम लोगों को विश्वास हो गया कि हम ब्रज वासियों पर आया बड़ा संकट भी श्री कृष्ण के द्वारा दूर हो जायेगा ।

—:०:—

धेनुकासुर का वध

एक दिन श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई खेलते हुए तथा गौओं को चराते हुए गोवर्धन पर्वत पर पहुँच गये । गोवर्धन के उत्तरी भाग में यमुना के किनारे तमालपत्रों से ढका हुआ तालवन में दोनों भाई घूमकर दृश्यावलोकन करने लगे । वहाँ की भूमि साफ-सुन्दर कुश से युक्त तथा मिट्टी वाली समतल भूमि थी । वहाँ ऊँचे-ऊँचे ताल फलों से युक्त तालवृक्ष सुशोभित थे । श्रीकृष्ण बलराम से बोले, 'जब ये फल सुगन्ध से नाक को तृप्त कर रहे हैं तो इसका स्वाद अमृत तुल्य होगा । इसलिए हे भैया ! इस अत्यन्त स्वादिष्ट, सुगन्धित व सुन्दर फलों को भאड़ना चाहिए ।

श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर बलराम जी मुस्कराते हुए वृक्षों को हिला-र कर फलों को झाड़ने लगे । फलों का ढेर लग गया ।

उस तालवन में गधे के रूप में एक धेनुकासुर नामक राक्षस रहता था । वह गिरते हुए फलों की आवाज सुन कर क्रोध से आँखें लाल-लाल कर दौड़ते हुए आया । धेनुकासुर यमराज की तरह मुंह फैलाये बलराम को काटने लगा । फिर ज्योंही बलराम को दुलत्ती मारनी चाही । तभी बलराम ने उसके दोनों पैरों को पकड़ कर तमाल वृक्ष पर पटक मारा । उसके शरीर की सारी हड्डियां चूर-चूर हो गईं । मर कर चेष्टाहीन हो गया । साथ ही वृक्ष से बहुत से फल गिरे । फिर एक-एक करके बलराम ने उस धेनुकासुर के सभी अनुयायियों को एक-एक करके मार डाला ।

—:०:—

प्रलम्बासुर का वध

वैशम्पायन जी जनमेजय से बोले हे राजन् ! एक बार दोनों भाई बलराम और कृष्ण गोवर्धन पर्वत के ऊपर स्थित भण्डारी वृक्ष (वट वृक्ष) के नीचे खेल रहे थे ।

पीताम्बर धारण किए श्री कृष्ण तथा बलराम नीलाम्बर धारण किये कृष्ण व गौर वर्ण वाले, कंधे पर छींका लिए श्वेत पुष्प के बनमालाओं को पहने तथा नाना प्रकार के पुष्प आभूषणों को बनवासी रूप में ग्वालबालों के साथ सुशोभित हो रहे थे । कभी पुष्प तोड़ते हवा में हाथों को लहराते हुए गीत गाते व ग्वाल बालों के साथ क्रीड़ा करते थे ।

इसी बीच प्रलम्ब नामक राक्षस भी गोपवेश में आकर हँसने खेलने कूदने लगा तथा पूर्णतया उन सब के साथ हिल मिल गया । साथ ही बलराम कृष्ण को मारने के लिये सदा ही मौके की ताक में रहता था । वह श्रीकृष्ण को मारने में तो अपने को असमर्थ समझ रहा था । अतएव बलराम के घात लगाने के चक्कर में ज्यादा रहता था । एक दिन हरणि नामक खेल-खेलने के लिए दो-दो ग्वाल बालकों ने एक साथ जोड़े बनाए । जैसे श्रीकृष्ण श्रीदामा के साथ बलराम प्रलम्ब के साथ आये । खेल में श्रीकृष्ण ने श्रीदामा को तथा बलराम ने प्रलम्ब को परास्त कर दिया । फिर सभी विजयी ग्वाल बाल अपने द्वारा पराजित विपक्षी गोप के कन्धे पर चढ़कर वट वृक्ष के नीचे आने लगे । प्रलम्ब बलराम को अपने कन्धों पर लेकर तीव्र गति से विपरीत दिशा में भागने लगा । तथा अपने शरीर

को नील पर्वत के समान विशाल सिर, सूर्य के समान चमकता हुआ मुकुट, विशाल मुख लम्बी व दृढ़ बाँहें, बड़ी बड़ी आंखों वाला होकर साक्षात् यमराज का रूप धारण कर लिया ।

प्रलम्बासुर के इस भयानक रूप को देखकर तथा अपने को धोखे में पड़ा जान कर बलराम श्री कृष्ण से बोले—हे श्रीकृष्ण ! यह राक्षस मनुष्य के रूप में आकर धोखे से मुझे लिए जा रहा है । अब इसे किस प्रकार दण्डित करूँ । श्रीकृष्ण बोले—हे भैया ! आप यह मनुष्यों जैसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं । आप तो जगदीश्वर, विश्वव्याप्त, सुक्ष्मा तिसु परमात्मा हैं आप तो प्रलय काल के उपस्थित होने पर भी समुद्र में शयन करते रहते हैं । हम और आप कोई भिन्न नहीं हैं । हम दोनों एक आपके ही रूप हैं । जो आप हैं, वही मैं हूँ । हम दोनों एक शरीर के दो अंग हैं । हम ने तो एक ही शरीर के दो भाग करके विश्व को धारण किया है । इसलिए आप अपने नारायण रूप को याद करके अपनी वज्रतुल्य मुष्टिका से प्रहार कर इस पापी का सिर तोड़ दीजिये ।

यथा—

तमास सस्मित कृष्ण साम्ना हर्षाकुलेन च ।

अभिज्ञो रौहिणेयस्य वृतस्य च बलस्य ॥२७॥

अहोऽयं मानुषोभायो व्यक्तमेवामुपाल्यते ।
 यस्तव जयन्मयं देवं गुह्यदह्यतरं गतः ॥२८॥
 स्मर नारायणात्सान लोकाना त्व विपर्यये ।
 अवच्छत्नाऽत्मानं समुद्राणां समागमे ॥२९॥
 पुरातनानां देवानां ब्रह्मणः सलिलस्य च ।
 आत्मवृत प्रभावाणां सस्मराह्यं व वै पुनः ॥३०॥
 यथाऽहमपि लोकानां तथा त्व तच्च मे मतम् ।
 उभावेकशरीरो जगदार्थद्विधा कृतौ ॥३१॥
 लोकानां शाश्वतो देवस्त्व हि शेषः सनातनः ।
 आवयोदेहमात्रेण द्विधैदं धार्यते जगत् ॥३२॥
 अहं यः स भवानेन तस्त्वं सोऽहं सनातनः ।
 द्वावेव विहिती हवामेकदेहो महाबावालौ ॥३३॥
 ददास्से मूढवत्त्वं किं प्राणेषु जहि दानवम् ।
 मूर्च्छिन् देवरिपम् सूर्यं वज्रकल्पेन मुष्टिनां ॥३४॥
 श्रीकृष्ण के स्मरण दिलाने से बलराम ने प्रलम्बासुर
 के सिर पर वज्र के समान मुष्टिका प्रहार किया । जिससे
 प्रलम्बासुर का सिर शरीर में धंस गया तथा लात के
 प्रभाव से उसने जमीन पर धराशायी होकर प्राणों को
 त्याग दिया ।

गोपों द्वारा इन्द्रोत्सव मनाना

ब्रज में इन्द्रोत्सव मनाने की तैयारी गोप लोग कर रहे थे । वर्षाऋतु का आधा मौसम बीत चुका था । श्री कृष्ण ने वृद्ध गोपों से पूछा—इन्द्रोत्सव क्या चीज होता है । एक वृद्ध गोप बोला—इन्द्र सभी देवताओं और मेघों के अधिपति हैं । उन्हीं की कृपा से वर्षा होती है, अन्न उपजता है तथा उन्हीं की कृपा से हम सभी देहधारी जीवन धारण करते हैं । सारा ब्रह्माण्ड तृप्त होता है । इसलिए इन्द्र को प्रसन्न रखने के लिए इन्द्रोत्सव मनाया जाता है ।

—:०:—

श्री कृष्ण द्वारा गोवर्धनोत्सव मनाना

श्रीकृष्ण ने गोपों से कहा जीविका तो गोधन से ही चलती है । हमारे देवता पर्वत, वन और गौएँ ही हैं । किसानों की जीविका खेती, वैश्य की जीविका व्यापार से और हम गोपों की जीविका गोधन से है । विद्या का साधक विद्या की आराधना व पूजन करता है । कृषि की सीमा खेत, खेत की सीमा पर्वत है और पर्वत से हमारी गति है ।

ब्राह्मण मन्त्रयज्ञ और कृषक हल के अग्रभाग से कृषि यज्ञ करते हैं तथा हम गोपों को गिरियज्ञ करने का विधान है।

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षकाः ।

गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्मामिगिरिर्वने । ६।

श्रीकृष्ण आगे बोले—अब हम लोगों को बिना देर किये ही गिरिराज गोवर्धन की पूजा करनी चाहिए। गौओं के सर्वांग को विभूषित कर, कण्ठ में धारा आदि पहना कर गिरिराज की परिक्रमा कर पूजन करना चाहिए। इन्द्र देवताओं के देवता हैं अतः देवता लोग उनका पूजन करें। हम लोगों को गोवर्धन पर्वत का पूजन करना चाहिए। यदि आप लोग मुझ पर स्नेह करते हैं तो मेरे कहने से आप लोग गिरियज्ञ करें। अब वर्षा ऋतु समाप्त होकर शरद ऋतु प्रारम्भ हो गयी है। आकाश साफ हो गया है। जल व घास स्वादिष्ट हो गए हैं। बहुत से वन वृक्ष, कदम्ब आदि पुष्पों से आच्छादित हो गए हैं। खरीफ की फसल भी परिपक्व हो गई है अब गिरियज्ञ करने का अच्छा सुहावना मौसम है।

सभी गोपों ने श्रीकृष्ण के बल, बुद्धि की प्रशंसा करते हुए गिरियज्ञ करने की बात स्वीकार कर ली और कहा 'हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारे द्वारा किए गये कठिन कार्यों असी-

मिल बल, स्वच्छ कीर्ति और वरिष्ठ पराक्रम को देखते हुए तुम्हारे आदेश का कौन उल्लंघन कर सकता है। अब तुम्हारे कथनानुसार ही इन्द्रोत्सव न करके गोपों व गौओं के हित के लिए गिरियज्ञ ही होगा दूध की खीर तैयार करके पवित्र जल से परिपूर्ण कलश स्थापित किये जायें। कल्पित नदियों को दूध से परिपूर्ण किया जाये। इस प्रकार के कार्य करने से गोपों व गौओं में उत्साह तथा आनन्द भर जायेगा। बैल व बछड़ों के गर्जन से ब्रजभूमि में खुशी की हलचल छा जायेगी। दही के सरोवर, घृत के कुएँ और दूध की कृत्रिम नदियाँ भर कर अन्न आदि का मेरु पर्वत बनाया जाये। इस प्रकार के श्रीकृष्ण के आदेश पर गोपों ने सब समान एकत्र कर लिया। गिरियज्ञ प्रारम्भ हो गया।

थोड़े समय में ही गोप-गोपियों और गौओं का विशाल समूह एकत्र हो गया। यज्ञस्थली के पास ही अग्नि कुण्ड, चरुस्थली व नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्य पुष्पमाला और धूप आदि सामग्री रख दी गई। यज्ञकार्य सम्पन्न होने पर श्रीकृष्ण ने अपनी माया से गोवर्धन रूप धर कर सभी वस्तुओं का भोग लगाया। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन व दक्षिणा से सन्तुष्ट किया। सभी गोपों ने पर्वत देव को प्रणाम किया। तथा निवेदन किया—हे देव ! आप हमें

निर्देश करें कि हम लोग क्या करें । पर्वत रूपधारी भगवान ने कहा यदि तुम लोगों को अपनी गौओं से प्रेम है तो आज से मेरी ही पूजा करना । मेरे आशीर्वाद से तुम लोग असंख्य गौओं वाले होवोगे । तुम लोगों का सभी प्रकार से हित करूँगा । अब तत्काल ही बछड़ों वाली गौओं को मेरे सामने लाओ । उन्हें देखकर मुझे प्रसन्नता होगी । सभी गौएँ बछड़े व गोप, गोपियाँ सुन्दर-२ आभूषण व वस्त्रों से सुसज्जित थे । कुछ गोप बैलों पर चढ़े थे कुछ नाच रहे थे कुछ भागती हुई गौओं को घेर रहे थे । इस प्रकार पर्वत की परिक्रमा कर गोवर्धन पूजा को सम्पन्न किया ।

—:०:—

श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को धारण करना

श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्रोत्सव रोक देने से इन्द्रदेव कुपित हो गये । परिणामस्वरूप इन्द्र ने सभी मेघों को बुलाकर आदेश दिया । कहा—कृष्ण भक्त गोपों ने वृन्दावन में जाकर मेरी पूजा नहीं की है । अतः तुम लोग सात दिन भयंकर वर्षा करके गोपों के जीवन स्वरूप गौओं को पीड़ित करो । मैं भी वहाँ पहुँचकर भीषण गड़गड़ाहट के

साथ वायु और वर्षा का संचालन करूँगा । इस प्रकार भयंकर वर्षा और वायु के कारण बच्चे वाली गौएँ कष्ट पाकर विनाश को प्राप्त होवेंगी ।

इन्द्र की आज्ञा पाते ही मेघ आकाश में छा कर घन-घोर अन्धकार कर भीषण गर्जना के साथ भयंकर वर्षा करने लगे । आकाश से वर्षा की मोटी जलधार ऐसे गिरने लगी । मानो जल से परिपूर्ण महासागर ही आकाश में पहुँचकर जल उड़ेल रहा हो । जंगली जानवर वर्षा जल से रक्षा हेतु इधर-उधर भागकर शरणस्थली खोजने लगे । नाम मात्र को भी सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन नहीं होते थे । पृथ्वी पर बाढ़ के समान चारों दिशाओं में जल ही जल दिखाई देने लगा, जल की धार इतनी तीव्र गति से बह रही थी हवा इतनी तेज थी कि पेड़ समूल उखड़कर धराशायी होने लगे । गौओं और गोपों को भीषण वर्षा व जल से पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उखाड़कर उसके नीचे शरण देने का विचार किया । फिर श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को गाजर मूली की तरह उखाड़ कर अपने बायें हाथ की उंगली पर धारण किया फिर श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए गोपों से कहा—हे गोपों ! मैंने इस पर्वत को गौओं की रक्षा हेतु घर के समान बना दिया है । इस पर्वत को उखाड़कर मैंने कोस भर चौड़ा और

पाँच कोस लम्बा स्थान बना दिया है । इसमें ब्रज तो क्या तीनों लोकों की रक्षा हो जायेगी, अब तुम लोग अपने गौओं सहित इसके अन्दर आ जाओ । श्रीकृष्ण की इस प्रकार की बातों को सुनकर गोप व गौएँ प्रसन्न हो गये ।

सभी गौएँ व गोप उस पर्वत के नीचे आ गए । तथा उनके घर के बर्तन आदि वस्तुओं से लदे हुए छकड़े भी खड़े हो गए । श्रीकृष्ण के इस पराक्रम को देखकर इन्द्र लज्जित हो गए । वर्षा रुक गई । मेघ छूट गये । आकाश साफ हो गया । सूर्य व चन्द्रमा दिखाई देने लगे । गौओं व गोपों का संकट खत्म हो गया । सभी पर्वत के नीचे से बाहर आ गये । तब प्रसन्न मुख भगवान् श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को अपने स्थान पर स्थापित किया ।

—:०:—

इन्द्र श्रीकृष्ण वार्ता

इन्द्र श्रीकृष्ण के इस पराक्रम को देखकर प्रसन्न हुए तथा उनके दर्शनार्थ देवलोक से पृथ्वी पर आये । यहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण को गोवर्धन के निर्जन स्थान में ग्वाल-बाल के रूप में देखा । जो वृक्ष पर वनमाल धारण किये हुए, अनुलेपन लगाये, हाथ में वज्र धारण किये, सिर पर

विद्युत का मुकुट पहने तथा कानों में कुण्डल धारण किये बैठे थे । इन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण को अपने सहस्र नयनों से दर्शन कर मधुर वाणी में बोले—हे महाबाहो ! आपने मेघों के इस महाजल प्रलय को रोककर असाधारण कार्य किया है । इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । जब तुमने मेरा पूजन रुकवाया, तब मैं भयंकर क्रोध में था । तथा सात रात्रि तक घनघोर वृष्टि की । इसे तुम्हारे सिवा कोई भी देवी देवता अथवा राक्षस रोक पाने में समर्थ नहीं था । तुमने अपने प्रभाव से गौओं की रक्षा कर गोलोक की भी रक्षा की है । मैं तो देवताओं का इन्द्र हूँ परन्तु तुम आज से गौओं के इन्द्र हो जाओ । आज से तुम्हें लोग गोविन्द नाम से पुकारेंगे । फिर मन्दाकिनी के जल से भरे कलश को उठाकर श्रीकृष्ण का गोविन्द पद पर अभिषेक किया ।

श्रीकृष्ण को गोविन्द पद पर अभिषेक करने के साथ ही इन्द्र ने उनसे कहा—हे गोविन्द ! मैं तुम्हें गोविन्द पद पर अनुमोदित करता हूँ । अब मैं जिस कार्य के लिए यहां आया हूँ उसे तुम सुनो । तुम्हें कंस, केशी और अरिष्ट नामक राक्षस को शीघ्र ही मारना है । तथा तुम्हारी बुआ कुन्ती को मेरे अंश से अर्जुन नामक पुत्र प्राप्त हुआ है । उसके साथ तुम मैत्री भाव रखकर सदा ही उसका रक्षक व सहायक बने रहना । उसके समान भारतवर्ष में कोई

अन्य वीर न धनुर्धर है न होगा । तथा तुम्हारे बिना पल भर वह कहीं न रह पायेगा । तुम्हारी सहायता से वह महान् यश को प्राप्त करेगा । अर्जुन को मेरे ही समान समझना ।

श्रीकृष्ण बोले—मुझे भलि-भांति ज्ञान है बुआ कुन्ती के पुत्र अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम तथा उनकी सौत माद्री के पुत्र नकुल सहदेव के सम्बन्ध में, कि कौन किसके अंश से पैदा हुआ है । कुन्ती-पुत्र कर्ण के सम्बन्ध में भी भली-भांति ज्ञान है । उधर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन आदि युद्ध करना चाहते हैं । यह भी मुझे भली प्रकार ज्ञात है । आप विश्वास रखें । मेरे रहते अर्जुन का बाल-बांका नहीं कोई कर पायेगा । सभी पांडव भी अर्जुन हेतु रणभूमि में अक्षत जमे रहेंगे । अर्जुन की प्रत्येक इच्छा को मैं सदा ही पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा ।

—:०:—

अरिष्टासुर वध

एक बार श्रीकृष्ण सायंकाल में गोधूलि के समय खेल रहे थे तभी अरिष्टासुर नामक राक्षस जो कि भयंकर रूप वाला कोयले के समान कृष्णवर्ण वाला, माथे पर तीक्ष्ण

सींग, लाल अंगारे के समान चमकीले नेत्र, अत्यन्त ऊँचा कद व पूँछ वाला था। उसके सम्पूर्ण शरीर में गोबर लिपटा हुआ था। वह घरों के छप्परों को गिराता हुआ अपने तोक्ष्ण सींग से अनेकों गौओं व बछड़ों को मारकर शेष गौओं को भय से कंपा दिया था। शेष गौएँ भगवान् श्री कृष्ण की शरण में आयीं। यहां भी वह राक्षस भीषण गर्जना करते हुए आया तथा श्रीकृष्ण का वध करने की इच्छा से उन पर झपटा। परन्तु श्रीकृष्ण ने अत्यन्त स्फूर्ति से उसके मुख का अगला भाग पकड़ लिया। दोनों आपस में दो बादलों की तरह टकरा गये। श्रीकृष्ण ने राक्षस के सींग में अपना पैर फंसा कर गोले कपड़े की तरह निचोड़ दिया, तथा उसका बांया सींग उखाड़ कर उसी से उसे क्षत-विक्षत कर दिया। थोड़े ही समय में वह राक्षस मुख व बगल से रक्त, उड़ेलते हुए सदा के लिए धराशायी हो गया। श्रीकृष्ण के इस पराक्रम को देखकर सभी ब्रजवासी प्रसन्न हो गये तथा श्रीकृष्ण की भी इन्द्र की तरह स्तुति करने लगे। सन्ध्या समय व्यतीत हो गया। चांदनी रात उज्ज्वल हो गई। श्रीकृष्ण वन में जाकर रासलीला करने लगे।

कंस द्वारा अक्रूर को श्रीकृष्ण हेतु प्रस्थान

कंस श्रीकृष्ण के विजय और उत्कर्ष से भयभीत हो गया । पूतना वध, कालियानाग का दमन, प्रलम्बासुर का वध, धेनुक राक्षस का वध, गोवर्धन पर्वत का धारण करना, इन्द्र पूजन को गोपों को न करने देना, यमलार्जुन वृक्षों का पतन तथा नवयुवक अरिष्ठासुर के संहार से कंस भी अपनी मृत्यु को निकट जानने लगा । इस सम्बन्ध में क्या किया जाए उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी । नारद के द्वारा कंस को पुनः यह पता लगा था कि श्रीकृष्ण देवकी के ही आठवें पुत्र हैं जो इस समय नन्द गोप के घर ग्वाल बाल के रूप में पल रहे हैं । जिस लड़की को तुमने पटका था वह नन्द की पत्नी यशोदा की लड़की थी । वासुदेव ने तुम्हें धोखा देकर पैदा होते ही रात-रात में ही बच्चे (श्रीकृष्ण) को यशोदा के यहाँ तथा उनकी लड़की को अपने यहां लाये । यह किसी को पता नहीं चला । अब वह लड़की विन्ध्याचल में निवास करती है ।

एक दिन रात्रि समय में जब कि सारी जनता सो चुकी थी । कंस ने अपने पिता, भाई बन्धु, वासुदेव, दारुक, कंस सत्यक, वैतरण, भोज, विक्रदु, भयेसख, विपृथु, अक्रूर, कृतवर्मा व अत्यन्त तेजस्वी भूरिश्रवा आदि को बुलाकर

कहा । आप सभी लोग कुशल, वेदज्ञ, न्याय के पालनकर्ता हैं तथा धर्म, अर्थ व काम के प्रवर्तक, मन्त्रज्ञ व उत्तम धनुर्धर हैं । फिर भी आप लोगों के रहते मेरा शत्रु दिन दूना रात चौगुनी वृद्धि को प्राप्त कर रहा है । तथा मेरे कुल को ही नष्ट करने पर तुला है । वह मनुष्य रूप में साधारण गोप बनकर जो पराक्रम दिखाता है । उससे निश्चय ही जान पड़ता है कि मेरे पूर्व जन्म का शत्रु विष्णु अथवा इन्द्र छद्मवेश में इस भूतल पर विचरण कर रहे हैं । नारद के कथनानुसार जिस प्रकार कोआ जिसके सिर पर बैठता है उसके नेत्रों को निकाल लेता है । ठीक उसी प्रकार वासुदेव भी मेरा अन्न खाकर मूलोच्छेदन में तत्पर है तथा—

यथा हि वायसो मूर्ध्नि पहनयाँ यस्यावतिष्ठति ।३२।

नेत्रे तुदति तस्यैव वक्ष्येणमिषगृद्धिना ।

वसुदेवस्थैवायं सपुत्रज्ञाति बान्धवः ।

छिनपति मममूलानि भुङ्क्ते च मम पार्श्वतः ।३३।

फिर कंस ने अक्रूर को निर्देश दिया कि तुम वृन्दावन जाकर कृष्ण व बलराम को सभी गोपों के साथ ले आओ । नन्द से कहना कि वे वार्षिक कर लेकर आवें तथा कहना कि राजा ने धनुषयज्ञ का आयोजन किया है । सभी गोप

यहां आकर वन में निवास करें तथा यज्ञ में आने वाले अतिथियों के स्वागत में सभी सामान लेकर उपस्थित हों। तुम जैसे भी हो सके उन दोनों बालक बलराम श्री कृष्ण को यहां ले लाओ। उन्हें यहां आने पर मैं जैसा उचित समझूंगा, वैसा करूंगा। यदि वे मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर नहीं आयेंगे तो भी वे दण्डित होंगे। वे बच्चे हैं उनको मधुर वाणी से फुसलाकर लाना। कंस की इस प्रकार की वाणी को सुनकर सभा में उपस्थित सभी लोग दुःखी होकर मन ही मन कंस की निन्दा करने लगे। कंस की आज्ञा पाकर अक्रूर ने भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की अभिलाषा से ब्रज के लिए प्रस्थान किया।

—:०:—

श्रीकृष्ण द्वारा केशी का वध

अक्रूर मन के समान तीव्र गति वाले स्थ से श्रीकृष्ण के दर्शन करने की मनोकामना से चल दिया। उसके वृन्दावन आने के पूर्व ही मथुरापति कंस ने केशी नामक महाबलि दैत्य को श्रीकृष्ण के वध हेतु भेजा वृन्दावन पहुंच कर सारे वनों व वृक्षों को नष्ट कर गोप गोपियों तथा गौओं को सताने लगा। जिससे सभी ने भयभीत होकर

जंगल में जाना छोड़ दिया और श्रीकृष्ण की शरण में आकर केशी राक्षस के दुष्कर्मों का वर्णन कर आर्तनाद करने लगे । श्रीकृष्ण ने सभी को भय मुक्त किया और स्वयं केशी के यहां पहुंच गए । दोनों आमने-सामने हो गए । केशी दैत्य ने पहले श्रीकृष्ण की छाती में अपने पैर से वज्रपात किया । फिर उनके पेट व बगल में मुक्कों से प्रहार करने लगा, तथा अवसर मिलते ही अपने पैने दांतों से श्रीकृष्ण का हाथ काट डाला । फिर अत्यधिक क्रोध कर वह ज्योंही श्रीकृष्ण का पेट फाड़ने लगा । त्योंही श्री कृष्ण ने उसके मुख में अपना हाथ घुसेड़ दिया । राक्षस के दांत टूक-टूक हो गये, मुख से रक्त निकलने लगा, होंठ फट गए, नेत्र विकृत हो गये तथा लाल रक्तम हो गये, चेतना नष्ट हो गई और तड़पने लगा । पसीना व स्वयं के मलमूत्र से लथ-पथ हो गया । कुछ समय पश्चात् ही सदा-सदा के लिए शान्त हो गया । श्रीकृष्ण उसका वध कर उसी स्थान पर खड़े हंस रहे थे । मृत्यु को प्राप्त केशी को देखकर गोप गोपियाँ भय से मुक्त होकर खुशियाँ मनाने लगे । और भगवान श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे ।

—:०:—

अक्रूर का आगमन तथा नागलोक का वर्णन

दिन व्यतीत हो गया । रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशित होकर सुशोभित होने लगा । तब अक्रूर ने ब्रज पहुँचकर कृष्ण, बलराम, नन्द तथा गोप के बारे में जानकारी प्राप्त की । फिर नन्द के घर पहुँचे तो गायों के दूध निकालने के स्थान पर बछड़ों के बीच श्रीकृष्ण विराजित थे । वे श्री कृष्ण के दर्शन पाते ही प्रसन्न हो गये । तथा पास से श्री कृष्ण के मुख मण्डल की शोभा व श्याम वर्ण देह को देख सोचने लगे । ये तो साक्षात् विष्णु हैं । इनके वक्ष पर श्री वत्स का चिह्न अंकित है तथा शत्रुओं के मारने में अद्वितीय हैं । देखकर उनका हृदय गद्गद् हो गया ।

श्रीकृष्ण व गोपों के साथ अक्रूर जी नन्द के पास पहुँचे । और श्रीकृष्ण बलराम से प्रेमपूर्वक बोले—कल हम लोग मथुरा चलेंगे । वहाँ आनन्द रहेगा । कंस के आज्ञानुसार सभी गोपजन अपना वार्षिक कर लेकर वहाँ चलेंगे । वहाँ धनुर्यज्ञ का आयोजन है । इसलिए तुम लोगों की अपने भाई बन्धुओं से भेंट हो जायेगी । कंस के भय के कारण वे लोग तुम लोगों से मिल नहीं पाते । इसलिए भी काफी चिन्तित रहते हैं । माता देवकी भी तुम लोगों का दर्शन पाकर अत्यन्त प्रसन्न होंगी । वे तम लोगों के

वियोग में सदा ही अश्रुपात करती रहती हैं । मुख मण्डल मलीन रहते हैं । क्षीणकाय होकर वह तुम्हारे आगमन की दिन रात प्रतीक्षा करती हैं ।

अक्रूर जी की बातों को सुनकर भली-भांति विचार कर श्रीकृष्ण ने सभी से मथुरा चलने को कहा । सभी गोप जन शीघ्र ही दूध, दही, घृत, भैंस, बैल आदि के साथ वार्षिक कर लेकर मथुरा चलने को तैयार हुए । श्रीकृष्ण बलराम व अक्रूर तीनों ही रात भर वार्ता करते रहे । प्रातः हो गया, चांदनी धूमिल हो गई लगभग सभी तारे अस्त हो गये । सूर्योदय होने के पूर्व की लालिमा आकाश में छा गयी । गौओं, बछड़ों व पंछियों की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी । तभी गोप गणों ने बैलगाड़ी पर कंस को देने हेतु सब सामान लादकर मथुरा के लिए प्रस्थान किया । बलराम व श्रीकृष्ण अक्रूर के रथ पर सवार हो गए । यमुना किनारे पहुंचने पर अक्रूर ने बलराम श्री कृष्ण से कहा—तुम लोग यहां रुककर घोड़ों व रथ की तथा घोड़ों के आभूषण की रक्षा करो व घोड़ों के सामने घास डाल दो । मैं यमुना जल के अन्दर जाकर सर्वेश्वर भगवान की पूजा करूँगा । जब तक मैं न आऊँ । तब तक मेरी प्रतीक्षा करना ।

श्रीकृष्ण अक्रूर जी से बोले—ठीक है आप जायें परन्तु

अत्यधिक विलम्ब मत करना । अक्रूर जी नागलोक में पहुंच गए । वहाँ उन्होंने हजार मस्तक वाले, उन्नत ध्वजा युक्त, हल मूसल धारण किए हुए, नीलाम्बर ओढ़े, एक कुण्डल पहने, गौरवर्ण वाला शरीर मद मत्त, कमलनेत्र, स्वास्तिक चिह्नधारी भगवान अपने मस्तक पर सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण किये स्वच्छ व पवित्र आसन पर बैठे हैं । उनका मुकुट बाईं तरफ कुछ झुका हुआ तथा वक्ष पर स्वर्ण कमल की माला है, शरीर पर सुगन्धित रक्त चन्दन का लेप है । वासुकि महा सर्प उन एकाग्रेन्द्रवर भगवान की पूजा में व्यस्त है ।

यथा—

रसातले स दहशे नागलोकमिमं यथा । ३१।

तस्य मध्य सहस्रायं हेमतालोच्छु तहवजम् ।

लांगलासक्तहस्ताग्रं मुसलोपाश्रितोदरम् । ३२।

असिताम्बरवीतं पाण्डरं पाण्डुरासनम् ।

कुण्डलकधरं मत सुप्तम्बुरुहेक्षणम् । ३३।

भोगोत्करासने शुभं स्वेन देहेन कल्पिते ।

स्वासीनं स्वस्तिकाम्यां च राहाभ्यां महीधरम् । ३४।

किञ्चित्सव्यात्रन मौलिना हेमचूलिना ।

जातरूपमयः पद्मैमलियाऽऽच्छन्सवक्षसम् । ३५।

रक्तचन्दनदिग्धांग दीर्घबाहुमरिदमम् ।

पद्मनाभसिताभ्रामं भामिज्ज्वलित तेजसम् । ३६।

ददर्श भोगिनां नाथं स्थितमेकार्णवेश्वरम् ।

पूज्यमानं द्विजिहवेन्द्रै वासुकि प्रभुम् । ३७।

कम्बल व अश्वतर नामक दो नाग उनको चंवर डुला रहे थे । वासुकि कर्कोटक आदि मन्त्री बैठे थे । समुद्र जल व पद्म पुष्प से सुसज्जित स्वर्ण कलश से उन अनन्त भगवान का अभिषेक हुआ । फिर अक्रूर ने देखा कि उनकी बगल में ही श्री वत्सधारी श्रीकृष्ण के समान मुख मण्डल वाले अन्य पुरुष सुशोभित हैं । अक्रूर ने कुछ पूछना चाहा । परन्तु वाक्शिवत समाप्त हो गई । फिर उन्हें प्रणाम कर अक्रूर जी यमुना जल से बाहर निकले । रथ के पास आए । उन्होंने देखा कि बलराम कृष्ण एक दूसरे को देख रहे हैं । अक्रूर ने पुनः यमुना जल में गोता लगाकर हजार मस्तक वाले अनन्त भगवान व श्रीकृष्ण को देखा । फिर बाहर आये और मन्त्र का जाप करते हुए रथ के पास पहुंचे । श्रीकृष्ण अक्रूर से बोले—आपने यमुना जल में ऐसी क्या विचित्र वस्तु देखी है । जिससे आपका हृदय व्याकुल जान पड़ता है । अक्रूर बोले—बेटा ! जो मैंने वहाँ देखा वह यहां भी देख रहा हूं । इस विश्व में तुम्हारे सिवा

कोई अन्य आश्चर्य नहीं है। चलो अब चलें सूर्यास्त पूर्व मथुरा पहुँचना है। वस वे लोग चल दिये।

—:०:—

बलराम श्रीकृष्ण का कंस की धनुष यज्ञशाला में जाना और धनुष भंग करना

अक्रूर जी बलराम-कृष्ण के साथ सूर्यास्त होते-होते कंस की राजधानी मथुरा पहुँच गये। अक्रूर जी पहले इन दोनों भाईयों को अपने घर ले गए। तथा समझाया कि आपके पिता वासुदेव जी कल से कंस द्वारा दी गई प्रताड़ता को सहन कर रहे हैं दुखी हैं। इसलिए आज उनके यहाँ मत जाओ। हां कोई ऐसा कार्य करो। जिससे वे आनन्दित हो उठें। तब श्रीकृष्ण बोले यदि आप आज्ञा दें तो हम लोग राजमार्ग के द्वारा मथुरा नगरी को देखते हुए कंस के भवन में प्रवेश कर जायें।

अक्रूर जी ने कृष्ण बलराम दोनों भाईयों को मथुरा नगरी देखने की आज्ञा दे दी। दोनों भाई मस्त हाथी की तरह नगर में प्रवेश कर गये। रास्ते में उन्होंने एक धोबी को देखा। जो कि महाराज कंस के सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों को साफ कर रहा था। श्रीकृष्ण ने उससे सुन्दर-२ वस्त्र माँगे। इस पर उस धोबी ने दोनों भाईयों को उल्टा-सीधा

सुनाया । बोला—तुम लोग महामूर्ख हो, जान पड़ता है जंगल से पहली बार नगर में प्रवेश किया है । तुम लोगों को न भय है न शर्म, राजा के वस्त्रों को मांग रहे हो । इस प्रकार खरी-खोटी सुनाई । बस क्या था श्रीकृष्ण ने जोर का थप्पड़ धोबी के गाल पर जड़ दिया । धोबी का मुँह विदीर्ण हो गया और सदा के लिए शान्त हो गया । फिर अपनी रुचि के अनुसार वस्त्र पहनकर के माला हेतु बगीचे में माली के यहां गए । माली ने बहुत सारी मालायें तैयार कर रखी थीं श्रीकृष्ण ने विनय पूर्वक माली से माला माँगी । माली ने श्रद्धा के साथ सारी माला उनके सामने रखते हुए हाथ जोड़कर बोला—सब माला आपके लिए ही हैं । आपको जो-जो पसन्द आए ले लें । श्रीकृष्ण माली पर प्रसन्न हो गये । बोले—हे ! माली तुम्हारे यहाँ धन की कभी कमी नहीं होगी । लक्ष्मी तुम्हारे यहां सदा निवास करेगी । माली ने वरदान प्राप्त कर चरणों में सिर झुका कर प्रणाम किया ।

फिर दोनों भाइयों बलराम-कृष्ण जैसे ही राजमार्ग पर बड़े । रास्ते में कुबड़ी औरत दिखाई दी । जो महाराज कंस के लिए अनुलेपन बनाकर ले जा रही थी । उससे श्री कृष्ण ने कहा—हे भद्रे ! यह अनुलेपन किसके लिए ले जा रही हो । कुब्जा औरत बोली—ज्ञात होता है तुम

लोग कहीं बाहर के हो । इसीलिये हमें पहचान नहीं रहे । मैं महाराज कंस के लिए ले जा रही हूँ । यदि तुम लोगों को चाहिए तो इसमें से अपनी आवश्यकतानुसार ले लो । श्रीकृष्ण बोले—हम दोनों मल्ल हैं । यहाँ पहली बार आये हैं । महाराज कंस के वैभव शाली राज्य व धनुष को देखने । कुबड़ी औरत ने श्रीकृष्ण दोनों भाइयों के रूप यौवन पर मोहित होकर सारा अनुलेपन दे दिया । दोनों भाइयों ने अपने शरीर में अनुलेपन खूब लेपा । फिर श्रीकृष्ण ने अपने हाथ की दो अंगुलियों से कुब्जा के कूबड़ को दबाया । उसका कुबड़ अन्दर को दब गया । वह सीधी व सुडौल महिला हो गई । फिर वहाँ से चलकर दोनों भाई कंस के राज भवन में प्रवेश कर धनुष यज्ञशाला पहुँच गए । वहाँ के पहरदार से श्रीकृष्ण बोले—हे भाई ! हम लोग बाहर से राजा का धनुष यज्ञ देखने आए हैं । अतएव धनुष यज्ञ के महोत्सव के लिए जो धनुष रखा है । वह कौन सा है । यदि आप उसे दिखा दें तो आपको महान् कृपा होगी । हम लोग उसे देखने को लालायित हैं । पहरदार ने खम्बे के समान उस मोटे धनुष को दिखा दिया । उस धनुष को किसी देवता में भी यह सामर्थ्य नहीं थी कि उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा सके । उसे श्री कृष्ण ने कौतुहल पूर्वक देखा । फिर उठकर सरलता से उस पर प्रत्यञ्चा

चढ़ाकर बार-बार खींचने लगे एक बार जोर के झटके से धनुष दो टुकड़े हो गया। टूटने की यह आवाज बड़ी भयंकर थी। दसों दिशायें व पृथ्वी काँप गयी बलराम श्री कृष्ण नन्द आदि गोपों के पास पहुँच गये और धनुष रक्षक भयभीत होकर इसकी सूचना देने के लिए कंस महाराज के यहाँ पहुँचा। बोला—महाराज दो अजनबी नवयुवक पता नहीं किस प्रकार धनुष यज्ञशाला में घुस आए। उनमें एक श्याम वर्ण था जो पीताम्बर धारण किए व सफेद चन्दन का लेप किये था। दूसरा गौर वर्ण का नीलाम्बर धारण किए हुए था। सिर पर चोटी रख वे दोनों देवतुल्य लग रहे थे। मानो अभी-अभी वे आकाश से उतर कर आए हों। श्याम-वर्ण वाले युवक ने धनुष को सरलता से ही प्रत्यंचा चढ़ाकर ज्योंही खींचा त्योंही भयंकर आवाज के साथ धनुष टूट गया। उसके टूटने से पृथ्वी काँप उठी। धनुष तोड़ने के बाद पता नहीं फिर वे कहाँ चले गए। हे प्रभु इसी की सूचना देने मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। कंस पहरेदार को विदाकर अपने महल में चला गया।

कंस का कुबलिया हाथी व मल्लयुद्ध

प्रातःकाल में महोत्सव देखने हेतु रंगभूमि में दर्शनार्थी एकत्र हो गए तथा कुछ आ भी रहे थे। सभा मंच अत्यन्त

सुन्दर खम्भों, वेदियों चित्रों आदि से सुसज्जित किया गया था। महीन पर्दों से युक्त अन्तःपुर की स्त्रियों को बैठकर देखने के लिये मंच पर सुन्दर स्थान बनाया गया था। वहाँ के चंवरी हार तथा आभूषणों की जगमगाहट से दर्शकों की आँखें चौधियाँ रही थीं। जगह-२ पर मदिरा जल व फल के रस से भरे हुए गिलास रखे हुए थे। उन सभी मंचों के बीच में कंस का मंच निर्मित था। जो सूक्ष्म वस्त्रों, स्वर्ण स्तम्भों एवं विभिन्न प्रकार की मालाओं से सुसज्जित रंगभूमि में पूर्व दिशा में सुशोभित था।

कंस की रंगशाला के मुख्य द्वार पर कुबलिया पीड हाथी को नियुक्त किया। फिर स्वयं जब उसने मंच पर आकर आसन ग्रहण किया तब उसके वस्त्र अति सुन्दर शुभ्र वर्ण के थे। वहाँ जो परदे झिलमिला रहे थे। सफेद थे। उन सबके मध्य राजा कंस चन्द्रमा के समान सुशोभित था। सभी पुरवासी कंस की जय-जयकार करते हुए शुभ-कामनायें प्रकट करने लगे। रंगशाला के मध्य में कंस के तीन पहलवान अपनी जांघ पर हाथ से ताल ठोकते हुए घूमने लगे। जोशीले बाजे बजने लगे।

बलराम व श्रीकृष्ण भी हँसते हुए ताल ठोकते हुए रंगशाला के द्वार पर पहुँचे। महावत ने कंस के आदेश के अनुसार कुबलिया हाथी को भड़का दिया। जिसने आगे

बढ़कर दोनों भाइयों को द्वार में प्रवेश करने से रोका तथा मारने के लिए तैयार हो गया । श्रीकृष्ण कंस के मन की बात को ताड़ गये कि वह हमें मरवाना चाहता है । फिर उन्होंने हाथी की सूंड को पकड़कर ऐंठ कर हाथी को जमीन पर गिरा दिया । दाँतों को उखाड़ कर हाथ में ले लिया । और उसी के दांत से उसे मार-मार कर उसका कचूमर निकाल दिया । महावत को भी मार डाला । बलराम हाथी की पूंछ पकड़कर घसीटने लगे । थोड़ी देर में हाथी ने भी चीकार करते हुए प्राण त्याग दिये । फिर श्रीकृष्ण हाथ में हाथी के दांत लिए ही बलराम के साथ रंगशाला में प्रवेश कर ताल ठोंकने लगे । यादवों ने रंगशाला में आए वनमाला धारी दोनों बालकों के दर्शन कर सिंहनाद करते हुए करतल ध्वनि से उनका स्वागत कर आनन्दित होने लगे । उन लोगों के प्रति इस प्रकार से नागरिकों की सहानुभूति को देखकर कंस को बड़ा कष्ट हुआ ।

—:०:—

कंस वध

जब बलराम श्रीकृष्ण सभा भवन में पहुंचे । तब उनके हाथों में हाथी दांत रुधिर व मद लगने के चिह्न बन गए

थे । सिंहनाद करते हुए जांघ पर ताल ठोकते हुए चारों तरफ घूम रहे थे । कंस दोनों भाइयों को क्रोध से ऐसे देख रहा था मानो निगल जाना चाहता हो । क्रोधित कंस ने महाबली पहलवान चाणूर को श्रीकृष्ण से तथा मुष्टिक को बलराम से मल्लयुद्ध करने का आदेश दिया । चाणूर को पहले से ही श्रीकृष्ण को मारने की आज्ञा थी । कंस की आज्ञा को सुनकर यादवों ने एक साथ चिल्लाते हुए कहा—यह मल्लयुद्ध की जोड़ी बेमेल है तथा इस सभा में किसी भी प्रकार का शस्त्र प्रयोग किए बिना ही मल्लयुद्ध करने का निश्चय हुआ है । कुश्ती लड़ने वालों को बीच-बीच में जल पीने व उपले की राख मलने की व्यवस्था थी । जिससे उनकी थकान मिटती रहे ।

मल्लयुद्ध प्रारम्भ हो गया । श्रीकृष्ण चाणूर को तथा बलराम मुष्टिक को बड़ी देर तक छकाते रहे । कृष्ण बालक थे और चाणूर विशाल देह वाला मल्ल । चारों तरफ कोलाहल मच रहा था । दोनों में भयंकर युद्ध हो रहा था कभी कोई नीचे होता कभी कोई । कभी कोई मुक्का मारता कभी कोई, कभी कोई पैरों में दबाकर कष्ट देता तो कभी कोई । तो कभी कोई किसी को गेंद की तरह दूर फेंक देता । सभी दर्शक शान्त होकर दोनों पहलवानों की भयंकर कुश्ती को देख रहे थे । और दोनों

पहलवानों की प्रशंसा कर रहे थे कंस ने रंगशाला के बाजों को बजवाना बन्द कर दिया । तब देवता आकाश मार्ग से तुरही व विभिन्न बाजे बजने लगे और श्रीकृष्ण की विजय की कामना करने लगे । अब श्रीकृष्ण ने चाणूर को बहुत खेल खेलाने के बाद उसका बल क्षीण कर दिया । फिर उसे अपनी भुजाओं से नीचे झुकाकर उसके हृदय को घुटनों से पीड़ित करने लगे और जोर का एक मुक्का उसके मस्तक पर दे मारा । चाणूर सदा-सदा के लिए शान्त हो गया । उसी क्षण एकाएक पृथ्वी कांप उठी, रंग-मंच हिल उठे, कंस के मुकुट से एक मणी खिसक कर गिर पड़ी । अब श्रीकृष्ण तीसरे पहलवान तोशल से मल्लयुद्ध करने लगे । थोड़े समय पश्चात् ही बलराम ने मुष्टिक को मार डाला । तथा श्रीकृष्ण ने तोशल के पैर को पकड़कर सौ बार घुमाया फिर पृथ्वी पर पटक मारा । तोशल के मुख-कान से रक्त-धारा बह चली और वह भी सदा के लिए शान्त हो गया ।

चाणूर, मुष्टिक व तोशल बड़े मल्लों की मृत्यु होते ही शेष सभी पहलवान भाग खड़े हुए । नन्द व गोप आदि इस कुशती को देखकर स्तब्ध व मौन होकर अपने स्थान पर बैठे रहे । वासुदेव की आंखें भी छल-छला गईं । कंस ने जैसे ही विजयी श्री कृष्ण को देखा । वह क्रोध से कांपने

लगा । उसका शरीर पसीना-पसीना हो गया । उसके हृदय में क्रोधाग्नि जल रही थी । मुख लाल हो गया था । होंठ काँप रहे थे । क्रोधित कंस ने भीमकाय सेवकों को इन दोनों गोप बालकों को सभा से बाहर निकाल देने का आदेश दिया और यह भी घोषित किया कि अब मेरे राज्य में कोई भी ग्वाला नहीं रहेगा । नन्द व वासुदेव को जंजीरों में जकड़ने को कहा । तथा श्रीकृष्ण के अनुयायियों व गोपों का सारा धन सम्पत्ति ले लेने का आदेश दिया । श्रीकृष्ण ने दुष्ट कंस को क्रोध से देखा । फिर नन्द, वासुदेव व अन्य बान्धवों को अपमानित होते तथा माता देवकी को ज्ञान शून्य होते देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गये और पलक झपकते ही कंस के मंच पर पहुँच गए । तत्क्षण कंस उन्हें देखकर भयभीत व व्याकुल हो गया । तभी श्रीकृष्ण ने अपनी लम्बी भुजा फैलाकर कंस के सिर के बाल खींच लिए । कंस का मुकुट गिर पड़ा, उसका बल क्षीण हो गया । चेष्टाहीन व व्याकुल होकर ठण्डी व दीर्घ साँस छोड़ने लगा । फिर श्रीकृष्ण उसे पृथ्वी पर पटक कर घसीटने लगे । जिससे पृथ्वी पर गड़ढा हो गया । इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने लीलापूर्वक कंस को मार डाला ।

उग्रसेन का राज्याभिषेक वर्णन

कंस के मारे जाने के बाद कंस के पिता उग्रसेन पुत्र शोक में विह्वल लड़खड़ाते हुए वहाँ पहुँचे । जहाँ श्रीकृष्ण यादवों द्वारा घिरे हुए थे । और कंस की मृत्यु पर दुःख प्रकट कर रहे थे । वे श्रीकृष्ण से भरपूर हुए आर्त स्वर से बोले—हे वत्स ! तुमने मेरे पुत्र को मार कर अपना क्रोध शान्त किया है तथा यश प्राप्त कर अपनी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है । साधु समाज में तुम्हारा सम्मान होगा । शत्रु तुमसे भय करेंगे । तथा तुमने यादव वंश की रक्षा की है । तुम्हारी शक्ति का सभी राजाओं को ज्ञान हो गया है अतएव अब राजागण तुम्हारी पराधीनता स्वीकार करेंगे । इसलिए अब तुम कंस के रथ, हाथी, घोड़े व पैदल सेना धन-धान्य से सम्पन्न राज्य पर अधिकार कर राज्य की समुचित व्यवस्था करो ।

यथा—

स कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुवाच यदुससदि ।
 वाष्पसंदिग्धया वाचा दीनया सक्जमानया ।३।
 पुत्रो निर्यातितः क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपु ।
 स्वधर्माधिकता कीर्तिनाभ विश्वावतं भुवि ।४।

स्थापित सत्सु महात्म्य शंकिता रिपवः कृताः ।
 स्थापितो यादवो वशो गचिता सुहृदः कृताः । १५।
 सान्तेषु नरेन्द्रेषु प्रतापस्ते प्रकाशितः ।
 मित्राणि त्वां भाजयन्तिः संश्रयिष्यन्तिपार्थिवा । १६।
 प्रकृतयोऽनुयास्यन्ति स्तोष्यन्ति त्वां द्विजातयः ।
 सचिविग्रहमुख्यास्त्वां प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः । १७।
 हस्त्यध्वरथ सम्पूर्ण पदादिमसंकुलम् ।
 प्रतिगृहाण कृष्णेन कंसस्य दलमभ्यम् । १८।
 धनं धान्यं च यत्किञ्चिद्रत्नान्याच्छादनानि च ।
 प्रतीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पुरुषः । १९।

हे श्रीकृष्ण ! अब यादवों पर एक मात्र तुम्हारा ही अधिकार है, तुम्हीं अब उनके मति और कुमति हो । अब कंस का दाहसंस्कार करके उसे जलाञ्जलि देना शेष है । मैं इससे उग्रहण होकर अपने बन्धु-बान्धवों व पत्नियों के साथ वन में निवास करूँगा । अतएव अब उसके दाह संस्कार की उचित व्यवस्था करो । तुम्हारी कृपा से ही कंस की अच्छी गति सम्भव है ।

उग्रसेन की बातों को सुनकर श्री कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ । श्रीकृष्ण उग्रसेन से बोले—हे तात ! आपने समयानुकूल ठीक ही कहा है । आप श्रेष्ठकुल में उत्पन्न

हुए हैं। आपसे तो कोई भी रहस्य गुप्त नहीं है। इस संसार में सभी मनुष्य अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल पाते हैं। इन सबका काल ही कारण है। काल किसी को नहीं छोड़ता। चाहे कोई कितना भी बड़ा विद्वान धन से सम्पन्न, रूप सम्पन्न, दानी, ब्रह्मवादी नीतिज्ञ तथा चाहे लोकपालों व इन्द्र के समान महापराक्रमी व शक्तिशाली राजागण ही क्यों न हों। अनेकों धर्म परायण त्रिकालदर्शी प्रजा के पालन में तत्पर, युद्ध विशारद, उदारचित्त वाले राजा भी काल के वशीभूत होकर परलोक गमन कर गए। काल की महिमा अपरम्पार है। इसे मात्र मोक्ष तत्व के ज्ञाता, ज्ञानीजन, समदर्शी और सिद्ध पुरुष ही जान सकते हैं। हे तात ! मैंने तो कंस को लोकहित के लिये मारा है। उसके राज्य पर अधिकार जमाने के लिए नहीं। मैं तो पुनः वन में जाकर गोपों व गौओं के साथ ही विचरण करूँगा। मैं राजा नहीं होना चाहता। मेरी इच्छा है कि आप राज्य पद पर अधिष्ठित होकर चिरकाल तक राज्य करें।

श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर उग्रसेन ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। श्रीकृष्ण ने उग्रसेन को राज्य पद पर अभिषेक किया। फिर उग्रसेन ने श्रीकृष्ण की सहायता से कंस का दाह संस्कार यमुनातट पर करके जलाञ्जलि

दिया । श्रीकृष्ण ने भी अनेक गौओं दस करोड़ मुद्रा रत्न वस्त्र व ग्राम आदि ब्राह्मणों को दान दिया ।

—:०:—

मथुरा पर जरासंध का आक्रमण

कंस का विवाह जरासंध की पुत्रियों से हुआ था । कंस की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण-बलराम मथुरा नगरी में ही आनन्द पूर्वक रहते हुए विचरण करते थे । जरासंध को अपनी पुत्रियों द्वारा ही कंस की मृत्यु का समाचार मिला । जिससे उसे बड़ा कष्ट हुआ । अतः प्रतापी राजा जरासंध अपनी छः अंगों से सम्पन्न विशाल सेना को लेकर यादवों के संहार हेतु मथुरा नगरी की ओर चल दिया । कंस जरासंध की सहायता से ही अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर यादवों को अपमानित करते हुए राज्य करता था । उग्रसेन के प्रति वासुदेव का अगाध प्रेम होने के कारण ही कंस वासुदेव से भी ईर्ष्या करता था ।

अपनी पुत्रियों अस्ति और प्राप्ति के आग्रह पर ही जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण कर दिया । जरासंध की विशाल सेना व यादवों के मध्य भयंकर संग्राम होने लगा । रुक्मी से श्रीकृष्ण, भीष्मक से उग्रसेन, व्रथस्थ से वासुदेव,

बभ्रु से कौशिक, चेदिराज से गद आदि अन्यान्य वीर योद्धा अपने विपक्षियों से युद्ध में तल्लीन थे। सत्ताइस दिन तक भीषण युद्ध हुआ। वृत्तासुर और इन्द्र के मध्य हुए, युद्ध के समान ही जरासंध और बलराम में घनघोर युद्ध हो रहा था। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के सम्बन्ध को जानते हुए रुक्मी का वध तो नहीं किया। परन्तु अपने युद्ध कौशल से रुक्मी के छक्के छुड़ाते हुए उनकी सेनाओं का संहार करने लगे। युद्ध क्षेत्र मास के लोथड़ों शवों, व रक्तमय कीचड़ से भर गया। बलराम के बाणों की भयंकर मार से व्याकुल होकर जरासंध क्रोध कर बलराम की तरफ रथ पर सवार होकर तेजी से दौड़ा। दोनों के भीषण युद्ध में दोनों के ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र रथ घोड़े व सारथी सब नष्ट हो गए। तब दोनों में गदा युद्ध होने लगा। दोनों मद-मस्त हाथी की तरह आपस में लड़ते थे। उस समय देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध व महर्षि आदि उपस्थित होकर देखने लगे। युद्ध क्षेत्र में दोनों योद्धा ऐसे लग रहे थे। मानो दो मद-मस्त हाथी आपस में क्रीड़ा कर रहे हों। दोनों एक दूसरे पर भयंकर प्रहार कर रहे थे। गदाओं की टकराहट से दिशायें गंजित थीं। बलराम गदा प्रहार से घबड़ाते नहीं थे। परन्तु जरासंध बलराम के प्रहारों को सहन करता हुआ अपना बचाव करता रहा।

दोनों महा योद्धा पैंतरा बदलते हुए एक दूसरे पर प्रहार करते थे । बीच-बीच में दोनों ही विश्राम कर लेते थे । कोई भी युद्ध में परास्त नहीं हो रहा था । अन्त में बलराम ने गदा छोड़कर सूसल धारण कर लिया । उसी वक्त आकाशवाणी बलराम के कानों में हुई । हे बलराम ! जरासंध की मृत्यु तुम्हारे हाथ से नहीं है । अतः तुम अपना क्रोध त्याग करो । अभी इसकी मृत्यु का समय भी नहीं है । अतः शान्त हो जाओ । यह आकाशवाणी सुनकर बलराम ने युद्ध का त्याग किया । जरासंध भी बिना विजय प्राप्त किये ही वहां से लौट गया । रात्रि हो जाने के कारण किसी ने उसका पीछा नहीं किया । श्रीकृष्ण बलराम भी अपनी सेनाओं के साथ मथुरा वापस आ गए । वृष्णियों ने जरासंध को पराजित करके भी अपनी जीत कभी नहीं मानी । इस प्रकार जरासंध बीस अक्षौहिणी सेना के साथ वृष्णी यादवों के साथ अठारह बार लड़ा । परन्तु उसे सफलता एक बार भी न मिली ।

—:—

कालयवन वध

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से आगे कहा हे राजन् ! वृष्णि और अन्धक वंश के गुरु महर्षि गार्ग्य थे । वे पत्नी

के रहते हुए भी पक्के पूर्ण ब्रह्मचारी थे । अतएव उनकी कोई सन्तान नहीं थी । एक बार सभा में किसी बात पर महर्षि गार्ग्य के साले ने उन्हें नपुंसक कहकर धिक्कारा । जिससे महर्षि को बड़ा क्लेश हुआ । अतः उन्होंने सन्तान प्राप्ति की इच्छा से अजितञ्जय नगर में बारह वर्ष तक लौहचूर्ण को खाकर ही भगवान् शंकर की कठिन तपस्या की । भगवान् शंकर ने उनके कठिन तप से प्रसन्न होकर वर दिया । हे मुनि ! तुम्हें शीघ्र ही श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा । तथा रणक्षेत्र में वृष्णियों व अन्धक वंशीय यादवों पर विजय प्राप्त करेगा ।

यवनराज को जब यह ज्ञात हुआ कि महर्षि गार्ग्य को शिवजी ने पुत्र होने का वर दिया है । यवनराज के भी कोई सन्तान नहीं थी । अतएव महर्षि को अनुनय विनय करके अपने अन्तःपुर में रख दिया । यहाँ गोपाली नामक अप्सरा के गर्भ से महर्षि का पुत्र हुआ । जिसका नाम कालयवन पड़ा । यह दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त हुआ । कुछ समय बाद यवनराज की मृत्यु हो गई । गद्दी पर कालयवन बैठा । इसके अत्यन्त पराक्रम के भय से अनेक पहाड़ी राजा तय, शक, तुषार, दरद, पारुद, शृंगरा, खश, पहलव आदि अनेक राजा उसके आधीन हो गये ।

एक बार कालयवन ने ब्राह्मणों की सभा में पूछा, हमें

किस वंश के राजा से युद्ध करना चाहिए । तब नारद जी बोले—तुम्हें वृष्णि व अन्धक वंश के राजा पर आक्रमण करना चाहिए । और इधर भगवान कृष्ण के पास आकर भी कालयवन के जन्म सम्बन्धी सारी बातें बता दीं । कालयवन असंख्य टिड्डी दल के समान अपनी सेना को लेकर मथुरा पर आक्रमण करने चल दिया ।

श्रीकृष्ण ने कालयवन के आगमन का समाचार पाकर अपने बन्धु-बान्धवों को बुलाया और बोले—हम लोगों के ऊपर इस समय कठिन संकट आया है । कालयवन भगवान शंकर के वरदान से मेरे द्वारा न मारे जाने वाला शत्रु है । महर्षि नारद के कथनानुसार अब हमारे मथुरा में रहने का समय पूरा हो चुका है । जरासंध को पराजित करने व कंस के मारने के कारण सभी राजा गण हमसे ईर्ष्या करते हैं । अब हम लोगों को मथुरा में रहना श्रेयस्कर नहीं है । यथा शीघ्र इसे त्यागकर अन्यत्र चलना चाहिए । श्रीकृष्ण ने वहां से भागने का निश्चय करके एक सुन्दर घड़े में काला विषधर साँप बन्द कर अपने दूत से कालयवन के पास पहुँचवाया । दूत उस घड़े को कालयवन के सामने रखकर बोला—श्रीकृष्ण इस काले साँप की ही तरह भयंकर है । कालयवन समझ गया श्रीकृष्ण द्वारा यह मुझे डराने का उपक्रम है । उसने घड़े में तीखी दांतों वाली

चीटियों को डाल दिया जो सांप को खा गईं । और उसे श्रीकृष्ण के पास भिजवा दिया । इसे देखकर श्रीकृष्ण शीघ्र ही सभी बन्धु बान्धवों को लेकर मथुरा से द्वारका पहुंच गये । वहां उनके रहने की व्यवस्था करके अकेले ही मथुरा लौटे और कालयवन के सामने गये । श्रीकृष्ण को देखते ही कालयवन क्रोध करके उन पर बाज की तरह झपटा । पीछे-पीछे भागा । परन्तु पकड़ने में सफल नहीं रहा । फिर भी पीछा करना नहीं छोड़ा ।

अति प्राचीन काल में महाराजा मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द देवासुर संग्राम में विजयी हुआ । जब देवताओं ने उससे वर मांगने को कहा तो वह बोला—मैं युद्ध से थकने के कारण सोना चाहता हूं । अतः मुझे जो भी जगाये वह जलकर भस्म हो जाए । सभी देवताओं ने एवमस्तु कह दिया । तत्पश्चात् वह एक हिमालय की एकान्त गुफा में आकर सो गया । और भगवान श्रीकृष्ण के जब तक दर्शन नहीं हुए सोता रहा ।

जब श्रीकृष्ण कालयवन के भय से भागे जा रहे थे तब देवर्षि नारद ने मुचुकुन्द के वर के बारे में बताया । यह सुनते ही श्रीकृष्ण गुफा में घुस कर मुचुकुन्द के सिर के पीछे खड़े हो गये । उसके बाद कालयवन भी पीछा करता हुआ गुफा में घुस गया । वह मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण

ही सो रहे हैं, जानकर क्रोध से लात मारी । लात लगते ही मुचुकुन्द जग गए । आंखें खोलों और कालयवन पर दृष्टि जाते ही कालयवन भस्म होकर राख हो गया ।

तब श्रीकृष्ण राजा मुचुकुन्द से बोले—हे राजन् ! मुझे नारद द्वारा ज्ञात हुआ कि आप यहाँ चिरकाल से सो रहे हैं । आपने मेरा बहुत बड़ा कार्य किया, आपका शुभ हो । कालयवन भगवान् शंकर द्वारा वर प्राप्त मेरा घोर शत्रु था जो मुझसे सौ वर्षों में भी नहीं मारा जाता । आपने उसे पलक झपकते ही भस्म कर मेरा बहुत बड़ा कार्य किया है । श्रीकृष्ण द्वारा वार्ता होने के बाद मुचुकुन्द गुफा से बाहर निकले पृथ्वी के छोटे आकार अल्प उत्साही, अल्पवीर्य, अल्प पराक्रमी मनुष्यों तथा अपने राज्य पर दूसरे का अधिकार देखकर पृथ्वी पर रहने की इच्छा त्याग दी व तप करते हुए प्राण त्याग कर स्वर्गलोक के वासी हो गये ।

—:०:—

द्वारिकापुरी की स्थापना

श्रीकृष्ण ने कालयवन के भय से सभी यादवों को द्वारिका पहुँचा दिया था । वहाँ रात्रि समाप्त होने पर

प्रातः में वासुदेव दुर्ग के निर्माण हेतु उपयुक्त स्थान का चुनाव किया । शुभ तिथि तथा रोहिणी नक्षत्र में दुर्ग का निर्माण स्वस्ति वाचन के साथ प्रारम्भ हुआ । वासुदेव ने यादवों से कहा—हे बन्धुओं ! यह द्वारावती नाम की निर्माण की जा रही नगरी ठीक इन्द्र की अमरावती के समान ही भव्य व सुन्दर होगी । इसमें अपने-अपने भवनों के निर्माण हेतु आप लोग गली चौराहे व राजमार्ग युक्त भूमि की नाप करा लें । भवन निर्माण का कार्य कुशल राजगीरों जो कि अच्छे शिल्पज्ञ थे उनसे कराया गया । भवन निर्माण की रूपरेखा व कला-कृतियों आदि का निर्माण प्रजापति के पुत्र विश्वकर्मा की देख रेख में हुआ । सभी छोटे शिल्पी इन्हीं के नेतृत्व में कार्य करते थे । विश्वकर्मा श्रीकृष्ण से बोले—हे नाथ ! इतनी थोड़ी भूमि सभी यादवों के लिये कम पड़ रही है । अतः समुद्र से थोड़ा और स्थान ले लें, तो ठीक रहेगा । श्रीकृष्ण उसी क्षण समुद्र से बोले—हे समुद्र ! मुझे बारह योजन लम्बी चौड़ी भूमि की आवश्यकता है । जिससे मेरी इस निर्माण हो रही नगरी में स्थान की कमी न रहे । तथा सेना आदि के लिए सुविधा जनक भी रहे । इसलिए तुम मेरी बात मानो और बारह योजन पीछे हट जाओ ।

श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर समुद्र बारह योजन पीछे

हट गया। जोड़े ही समय में विश्वकर्मा ने मनोयोग से द्वार, तोरण, अट्टालिकायें आदि से युक्त भव्य व सुन्दर नगरी का निर्माण किया। पृथ्वी पर इतनी दिव्य व उत्कृष्ट नगरी कोई अन्य न थी। उसके अन्दर श्रीकृष्ण के लिए विशाल अन्तःपुर व स्नानागार का भी निर्माण किया। इस प्रकार परम सुन्दर वैष्णवी द्वारावती नगरी बनकर तैयार हो गयी। वह नगरी स्त्री, पुरुष, विद्वान, वणिक व अन्य सभी प्रकार के द्रव्यों से परिपूर्ण थी। श्री कृष्ण उस देदीप्यमान नगरी में यादवों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे, और विश्वकर्मा श्रीकृष्ण द्वारा सम्मानित होकर अपने लोक को चले गये।

श्रीकृष्ण ने कुबेर के सेवक निधिपति यक्ष शंख को बुलाया और कहा—हमारी इस नगरी में जिसके पास धन की कमी हो उसे धन से परिपूर्ण कर दो। क्योंकि मैं अपनी इस नगरी में किसी भूखा, दुर्बल-पतला, दुःखी, निर्धन अथवा भिखारी नहीं देखना चाहता। भगवान् श्रीकृष्ण जी की आज्ञा पाते ही यक्ष शंख ने निधियों को आदेश दिया कि इस द्वारावती नगरी में घर-घर में प्रचुर धन की वर्षा कर दो। निधियों ने वर्षा कर दी अब कोई गरीब व दुःखी न रहा। फिर श्रीकृष्ण ने वायुदेव को बुलाकर कहा—हे वायो ! तुम स्वर्ग की देव सभा में जाओ और

देवताओं की अनुमति प्राप्त कर तुम सुधर्मा नाम की देव-सभा को लेकर यहाँ लौट आओ । वायुदेव शीघ्र ही स्वर्ग-लोक की देवसभा को गए और वहाँ से देवताओं की आज्ञा प्राप्त कर सुधर्मा नामक सभा को लाकर भगवान श्री कृष्ण के सामने रख दिया । और प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर अपने लोक को चले गए । श्रीकृष्ण ने द्वारका नगरी के मध्य सुधर्मा को स्थापित कर दिया । इसके बाद महाराज उग्रसेन की राजा, काशी नरेश को पुरोहित, अन्नाधृष्टि को सेनापति विक्रदु को मंत्री, वृद्ध तथा प्रमुख दस यादवों को सर्वाध्यक्ष पद को सौंपकर श्रीकृष्ण यादवों के साथ द्वारावती में निवास करने लगे तथा कुछ काल बाद श्री कृष्ण की आज्ञा से बलराम जी ने रेवत की पुत्री रेवती से विवाह कर लिया ।

—:०:—

रुक्मिणी हरण व श्रीकृष्ण से विवाह

प्रतापी जरासन्ध ने चेदिराज दमघोष की भलाई की इच्छा से सभी राजाओं के समक्ष घोषणा की कि भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल, के साथ होगा । अतः स्वयम्बर हेतु सुवक्त्र, भगदत्त, शल, शाल्व, भूरिश्रवा

व कुन्तिवीर्य आदि राजाओं को निमन्त्रित किया। जनमेजय ने वैशम्पायन जी से राजा रुक्मी के सम्बन्ध में जानने की इच्छा प्रकट की। तब वैशम्पायन जी से बोले—हे राजन ! राजर्षि यादव का ख्याति नाभा विदर्भ नामक पुत्र हुआ था। जिसने विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में विदर्भा नामक नगरी बसाई थी। जिसके क्रक कौशिक आदि अनेक पुत्र हुए। उसी वंश में भीम के द्वारा त्रेष्णिगण उत्पन्न हुए और वक्र के वंश में भीष्मक की उत्पत्ति हुई। भीष्मक का अन्य नाम हिरण्यरोमा भी था जो कि कुण्डिन नगर के राजा हुए। भीष्मक के एक पुत्र रुक्मी तथा पुत्री रुक्मिणी हुई। रुक्मी ने परम प्रतापी द्रुप से अनेक दिव्यास्त्र और परशुराम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त करके भगवान से वैर करने लगा। रुक्मिणी की अद्वितीय सुन्दरता को सुनकर श्री कृष्ण ने उससे विवाह करने का निर्णय किया। रुक्मिणी भी श्रीकृष्ण से ही विवाह करने का दृढ़ निश्चय कर चुकी थी। परन्तु रुक्मि अपनी बहन रुक्मिणी की शादी किसी भी दशा में करने को तैयार नहीं था।

राजा जरासन्ध ने भीष्मक से शिशुपाल के लिए रुक्मिणी की याचना की। दमघोष का विवाह श्रीकृष्ण की बहन श्रुतश्रुवा से हुआ था जिसके गर्भ से शिशुपाल, दशग्रीव, रौम्य, उपदिश और बलि पाँच पुत्र सर्वशास्त्रज्ञ

व अत्यन्त पराक्रमी थे । जरासन्ध और दमघोष एक ही वंश में उत्पन्न हुए थे । जरासन्ध शिशुपाल का पुत्रवत पालन-पोषण करता था । तथा कंस जरासन्ध का दामाद था जिसका कि श्रीकृष्ण, ने वध कर दिया था । इसलिए जरासन्ध की वृष्णियों व अंधक यादवों से शत्रुता हो गई थी । इसी कारण इसने भीष्मक से उनकी पुत्री रुक्मिणी मांगी । जिसे भीष्मक ने स्वीकार कर लिया ।

रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करने के लिए दन्तवक्र पौण्ड्र, वासुदेव आदि अन्य राजाओं के साथ विदर्भ नगर में पहुंच गया । भीष्मक ने सभी को बहुत सम्मान दिया । अपनी बुआ को प्रसन्न करने के लिए श्री कृष्ण बलराम भी वृष्णवंशी यादवों की विशाल सेना के साथ पहुंच गये । वहां उनका स्वागत क्रथ कैशिक नामक राजा ने किया । और उन्हें उपवन में ठहराया । विवाह से एक दिन पूर्व रुक्मिणी ज्येष्ठा नक्षत्र में चार घोड़ों वाले रथ पर चढ़ कर भगवती इन्द्राणी की पूजा करने के लिए मन्दिर जा रही थी । रुक्मिणी की सुरक्षा में सुरक्षा सैनिक चारों तरफ सतर्क थे । जब रुक्मिणी मन्दिर के निकट पहुंची । तब श्रीकृष्ण ने उन्हें देखा । वह उस समय साक्षात् लक्ष्मी के समान सुन्दरता से परिपूर्ण थी । सुन्दर धवल वस्त्र में रुक्मिणी की सुन्दरता अति अनुपम लग रही थी ।

श्रीकृष्ण मोहित हो गये । तथा बलराम व प्रमुख वृष्णियों से परामर्श कर उन्हें अपहरण करने का निश्चय किया । रुक्मिणी के मन्दिर से पूजा करके बाहर निकलते ही श्री कृष्ण ने उन्हें पकड़कर अपने रथ पर बैठा लिया । उस समय जो भी उन्हें रोकने आया । बलराम ने वृक्ष उखाड़ कर पीछे भगा दिया । बलराम की सहायता हेतु वृष्णि सेना उनके चारों ओर एकत्र हो गई । बलराम की सहायता में युयुधान, सात्यकि, अक्रूर, विपृथु, गद, कृतवर्मा, चक्रदेव, सुदेव, प्रसेन आदि को छोड़कर स्वयं रुक्मिणी के साथ द्वारावती को प्रस्थान कर दिया ।

रुक्मिणी अपहरण का समाचार सुनते ही जरासन्ध दन्तवक्र, शिशुपाल आदि विपक्षी राजा गण श्रीकृष्ण के वध करने हेतु चल दिए । चेदिराज दमघोष ने भी अपने महारथी भाइयों को विशाल सेना के साथ श्रीकृष्ण से युद्ध हेतु भेजा । इन सबको देखकर बलराम जी वृष्णिवंश के महारथी योद्धाओं के साथ युद्ध करने के लिए शत्रु के सामने पहुंचे । भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया । युयुधान व सात्यकि ने जरासन्ध को छः बाणों से बींध दिया, अक्रूर ने दन्तवक्र को नौ बाणों से तथा दन्तवक्र ने अक्रूर को दस बाणों से घायल कर दिया । इस प्रकार दोनों तरफ के योद्धा आपस में भयंकर युद्ध करते हुए एक दूसरे को बाणों

व अन्य अस्त्रों से घायल कर रहे थे । सभी कुपित वीरों ने शिशुपाल को घेर लिया । बलराम ने वृक्ष उखाड़ कर बंगराज को हाथी समेत मार दिया । और बंगराज के रथ पर अधिकार कर लिया । तब अनेक कौशिक वंशीय वीरों को मार डाला । अनेक धनुर्धारियों तथा मगध देश के वीर सैनिकों को नाशकर जरासन्ध की तरफ बढ़े । जरासन्ध व बलराम में अति भीषण युद्ध हुआ । अस्त्र-शस्त्रों की टकराहट से वायु मण्डल गुंजित हो रहा था ।

भीष्मक के पुत्र रुक्मि ने प्रण किया कि जब तक मैं अपनी बहन के अपहरण कर्त्ता श्रीकृष्ण का वध नहीं कर दूंगा तथा अपनी बहन को वापस लौटा नहीं लूंगा तब तक मैं कुण्डिनपुर वापस नहीं आऊंगा । ऐसी प्रतिज्ञा करके वह शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित ऊँची ध्वजा से युक्त रथ पर चढ़ कर विशाल सेना के साथ चल दिया । साथ में सहायतार्थ अनेक राजा गण भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ चले । रुक्मि, नर्मदा तट पर श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के साथ बैठा देखकर आग-बबूला हो गया और सेना को पीछे छोड़कर अकेले ही श्रीकृष्ण को मारने हेतु तेजी से बढ़ा । रुक्मि ने श्रीकृष्ण पर एक साथ ही चौंसठ बाण सारे । उत्तर में श्रीकृष्ण ने रुक्मि पर सत्तर बाण मारकर रण का ध्वज एवं सारथी का मस्तक काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया ।

उसी क्षण रुक्मि के सहायतार्थ दक्षिण पथ के राजागण भी पहुँच गये और श्रीकृष्ण पर प्रहार कर दिया। तब श्री कृष्ण ने अपने बाणों से अंशुमान का हृदय बाँध कर धराशायी कर दिया। श्रुतवा के चार घोड़ों, वेणुधारी के रथ के ध्वज व उसके दाहिने हाथ को काट कर गिरा दिया। श्रीकृष्ण ने ऋथ कैशिक को बाणों से विकल करते हुए अनेकानेक वीरों को मार गिराया। यह देखकर रुक्मि की सेना भाग चली। रुक्मि श्रीकृष्ण पर भीषण रूप से प्रहार करने लगा। श्री कृष्णने जब रुक्मि के सारे धनुष व बाणों को नष्ट कर दिया। तब वह तलवार लेकर श्रीकृष्ण पर झपटा। श्रीकृष्ण ने रुक्मि की तलवार को काटकर उसकी छाती में तीन बाण मारकर धराशायी कर दिया। रुक्मि को छटपटाते हुए देखकर रुक्मिणी व्याकुल हो गई और उसके प्राण रक्षा की भीख श्रीकृष्ण से मांगने लगी। तब श्रीकृष्ण रुक्मि को प्राणदान देकर रुक्मिणी के साथ द्वारावती की ओर चल पड़े। इधर बलराम भी अपनी यादव सेना की सहायता से जरासन्ध आदि को परास्त कर द्वारकापुरी को चल दिये।

रुक्मि का सारथी उसे रथ में लिटाकर नगर को वापस चल दिया। परन्तु रुक्मि अपने नगर को वापस नहीं लौटे। क्योंकि वे युद्ध में जाते समय प्रण कर चुके थे

कि जब तक मैं अपनी बहन को साथ लेकर वापस नहीं लौटूँगा । कुण्डनपुर वापस नहीं आऊँगा । अतः विदर्भ में ही भोजकट नाम से एक सुन्दर नगर बसाया । वहीं निवास किया । बलराम को यादवों के साथ द्वारावती पहुँचने पर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ विवाह कर राम-सीता व इन्द्र-शची की तरह आनन्द पूर्वक रहने लगे ।

रुक्मिणी सर्वगुण सम्पन्न नारी होने के कारण श्री कृष्ण की सबसे बड़ी रानी हुई । श्रीकृष्ण के द्वारा रुक्मिणी के गर्भ से चारुदेव, सुदेव, प्रद्युम्न, सुषेण, चारुगुप्त, चारुबाहु, चारुबिन्दु, सुचारु, भद्रचारु और चारु नामक दस पुत्र तथा चारुमति नामक एक पुत्री हुई । रुक्मिणी के अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने अन्य सात कन्याओं से विवाह किया था । जो सूर्यपुत्री कालिन्दी, राजाधिदेव की पुत्री मित्रबिन्दु अयोध्या नरेश नग्नजित की लड़की सत्या, जाम्बवान की पुत्री जाम्बवती, केकय नरेश की पुत्री रोहिणी, मद्रराज की पुत्री लक्ष्मणा, सत्राजित की पुत्री सत्यभामा, राजा शैव्य की पुत्री तन्वी थी । इसके अतिरिक्त सोलह हजार अन्य कन्याओं से भी विवाह किया था । इन सबसे उनके हजारों पुत्र उत्पन्न हुए थे । जो सर्वशास्त्रज्ञ महाबली याज्ञिक, पुण्यकर्मा व असामान्य भाग्य से सम्पन्न थे ।

रुक्मि वध

कुछ समय पश्चात् रुक्मि ने अपने पुत्री शुभाङ्गी का स्वयम्बर रत्ना । जिसमें देश-विदेश के राजाओं को आमंत्रित किया । जिसमें श्रीकृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न भी गया । शुभाङ्गी प्रद्युम्न को चाहती थी । अतः स्वयंवर के दिन शुभाङ्गी ने प्रद्युम्न के गले में वर माला पहना दी । प्रद्युम्न-शुभाङ्गी का विधिवत् विवाह हो गया । सभी राजा व राजकुमार अपने-२ घर को चले गये तथा प्रद्युम्न जी शुभाङ्गी को लेकर द्वारका आकर विहार करने लगे ।

कुछ समय पश्चात् शुभाङ्गी से अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा राजा रुक्मि को एक सुन्दर सौभाग्यवती पौत्री रुक्मवती हुई । कन्या के बड़ी होने पर श्रीकृष्ण ने रुक्मि से रुक्मवती को अपने पौत्र अनिरुद्ध के लिए मांगा । परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मी का वैरभाव होने के कारण उसे स्वीकार न था । परन्तु प्रद्युम्न की प्रार्थना व रुक्मिणी के आग्रह पर तथा अनिरुद्ध को रूप गुण सम्पन्न देखकर रुक्मि पौत्री के विवाह हेतु तैयार हो गया । तब श्रीकृष्ण बलराम अपने पुत्रों व वृष्णिणों के साथ विदर्भ पहुंच गये । रुक्मि के भी सम्बन्धी भाई बन्धु आए । शुभ तिथि मिति में विवाह हो गया । बरातियों का खूब सत्कार हुआ ।

इसी अवसर पर वेणुदार, श्रुवा, चाणूर, अंशुमान आदि राजाओं ने जो रुक्मि के पक्ष के थे । रुक्मि से बोले—हे राजन ! आप जुआ में पूर्ण निपुण हैं । बलराम जुआ खेलना पसन्द तो करते हैं परन्तु निपुण नहीं हैं । अतः हम लोग आपकी सहायता से द्युति क्रीड़ा में उन्हें परास्त करना चाहते हैं । रुक्मि ने जुआ खेलना पसन्द किया । सभा भवन में सभी राजा गण अपने-२ स्थान पर बैठ गये । बलराम को भी सभा में बुलाकर जुआ खेलने को कहा गया । बलराम ने स्वीकार कर लिया ।

कलह की जड़ व मूर्खों का सर्व विनाशक जुआ प्रारम्भ हो गया । सर्वप्रथम बलराम व रुक्मि में द्युति क्रीड़ा प्रारम्भ हुई । बार-बार रुक्मि के विजयी होने से स्वयं को हीन समझ कर बलराम कुछ क्रोधित हो गये । रुक्मि बलराम की मजाक उड़ाते हुए बोले—आज द्युति में मूर्ख व दुर्बल व्यक्ति ने अजेय बलराम को परास्त कर उनसे असंख्य स्वर्ण मुद्रायें जीत ली हैं । इस पर कर्लिंग नरेश ठठाकर हंसा । रुक्मि के परिहास पर बलराम को बहुत क्रोध आया । परन्तु अपने मन को संयम में रखकर दस हजार करोड़ मुद्राओं को दांव पर लगाया और रुक्मि को पासा फेंकने के लिए ललकारा । रुक्मि की हार हुई परन्तु उसने ४ को ६ बतलाकर अपने को विजयी घोषित

कर लिया । नियमानुसार बलराम चुपचाप ही रहे जीत कर भी कुछ न बोले । तभी आकाशवाणी हुई कि इस बार बलराम की ही जीत हुई है । यद्यपि वे चुप हैं फिर भी जीत उन्हीं की हुई है । इसलिए दाँव की सभी मुद्राओं पर इनका अधिकार है । यह कितना अन्याय है कि वहां बैठे हुए व्यक्ति सत्य को जानते हुए भी नहीं बोलते । यह सुनकर बलराम आग बबूला हो गए और भयंकर क्रोध में स्वर्णमय व भारी अष्टपाद को उठाकर दुष्ट रुक्मि के सिर पर पटककर मार डाला । कलिंगराज यवत्सेन के दांत को तोड़ डाला तथा तलवार लेकर सभी राजाओं को भयभीत कर दिया । फिर अपने शिविर को लौटकर बलराम ने श्रीकृष्ण को सारा वृत्तान्त कह सुनाया । श्रीकृष्ण को रुक्मि की मृत्यु से कष्ट हुआ परन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा । क्योंकि वे सोच रहे थे कि जिसे मैंने रुक्मिणी के परम स्नेह के कारण नहीं मारा । उसे बलराम ने द्युति क्रीड़ा में अष्टपाद प्रहार कर मार डाला । रुक्मि के वध से वृष्णियों व अंधकों को भी दुःख हुआ । रुक्मिणी आर्तनाद करने लगी । श्रीकृष्ण ने सबको शान्त किया । फिर वहां से प्रचुर धन लेकर द्वारका दोनों भाई आ गए ।

पारिजात का फूल

एक बार श्रीकृष्ण विवाहोपरान्त रुक्मिणी के साथ रैवतक पर्वत पर गए। उस समय रुक्मिणी का उपवास व्रत चल रहा था। उसकी समाप्ति पर उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराकर तृप्त किया। नारद जी के परामर्श से श्रीकृष्ण ने अपने भाइयों पुत्रों व सोलह हजार रानियों को पहले भेज दिया था। पारण के दिन रुक्मिणी ने ब्राह्मणों को भोजन व दक्षिणा से सन्तुष्ट कर फिर सजातीय बन्धु-बांधवों को खिलाकर सभी को खुश कर अपना उपवास व्रत समाप्त किया। कुछ समय बाद एक दिन देवर्षि नारद जी आए। भगवान श्रीकृष्ण ने उनका उचित सम्मान किया। नारदजी ने भगवान के हाथ में पारिजात का फूल रख दिया। वह पुष्प श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को दे दिया। उसे रुक्मिणी ने अपने जुड़े में लगा लिया। जिससे रुक्मिणी की शोभा में चार चाँद लग गये। नारद जी रुक्मिणी से बोले—हे सुभगे ! यह फूल आपके ही योग्य है आपके सम्पर्क से इसकी रमणीयता अति सुन्दर हो गई है। अब यह कभी भी नहीं मुरझायेगा तथा इसकी सुगंधि भी एक वर्ष तक यथावत रहेगी। आप जो कामना इससे करेंगी वह प्राप्त होगा। जब शीतलता चाहेंगी तब शीतलता यह सदा ही सौभाग्य को देने वाला तथा दुर्भाग्य को

नाश करने वाला है। इसके धारण करने से भूख, प्यास वृद्धावस्था तथा ग्लानि से उत्पन्न कष्ट दूर होता है। आप इसे धारण कर स्वच्छन्द एवं आनन्द पूर्वक रहेंगी। हे सुभगे ! ऐसा प्रतीत होता है कि आप ही भगवान् श्री कृष्ण की प्राण प्रिया हैं। क्योंकि भगवान् ने तीनों लोकों के रत्न स्वरूप इस पुष्प को आप ही को भेंट किया है। किसी अन्य रानी को नहीं।

जब नारद जी रुक्मिणी की प्रशंसा कर रहे थे, तब नारद श्रीकृष्ण की अन्य पत्नी सत्यभामा व अन्य परिचारिकाएँ भी वहाँ उपस्थित थीं। परिचारिकाओं ने अन्तःपुर में पहुँचकर रुक्मिणी के सौभाग्य की सब बातें कह सुनायीं। सभी रानियाँ प्रसन्न मुख होकर बोलीं—रुक्मिणी को सौभाग्यवती होना ही चाहिए। क्योंकि वह हम सबसे बड़ी है। परन्तु रूप-यौवन से युक्त रानी सत्यभामा को यह बात अच्छी नहीं लगी। क्योंकि वह श्री कृष्ण की सबसे प्रिय रानी थी। अतः वे रुक्मिणी से ईर्ष्या करने लगीं। सत्यभामा अपने रंगीन वस्त्रों व आभूषणों को उतार कर श्वेत वस्त्र धारण कर कोप भवन में जाकर छिप गई। तथा ईर्ष्याग्नि में जलने लगी। गम्भीर क्रोध प्रकट करने के लिए केशों को फैलाकर माथे पर श्वेत वस्त्र बांधकर उस पर लाल चन्दन लेप लिया।

पत्नी सत्यभामा को श्रीकृष्ण द्वारा आश्वासन

श्रीकृष्ण ने सत्यभामा के कोप भवन में जाने का समाचार सुना और उन्होंने शीघ्र ही सत्यभामा के पास पहुंचकर कोप के कारण को जानना चाहा। अश्रुपूर्ण नयनों से युक्त सत्यभामा अवरूद्धित कंठ से बोली—हे नाथ ! आपने ही मुझे सौभाग्यवती कहा था। इसलिए विश्व ने भी मुझे परम सौभाग्यवती माना है। मैं आपकी परम प्रिया हूं। इसलिए मैं अपने सौभाग्य पर गर्वित होती थी। परन्तु आज मैं अपनी सौतों व अन्यो में उपहास की पात्र बन गयी हूं। मुझे ज्ञात हुआ है कि नारद जी ने आपको पारिजात का पुष्प दिया था और वह पुष्प रत्न आपने मुझे न देकर अपनी परम प्रियतमा रुक्मिणी को दे दिया। नारद जी ने रुक्मिणी की प्रशंसा की और आप प्रसन्न मुख से सारी प्रशंसा सुनते रहे। इससे बड़ा मेरा और दुर्भाग्य क्या हो सकता है। यदि आपको पहले काम रस में आनन्द विभोर करना और फिर सताना ही अच्छा लगता है तो अब हमें तपस्या करने की आज्ञा प्रदान करें। आप तो सदा ही कहा करते थे कि हे सत्राजित सुते ! इस विश्व में तुम्हारे सिवा मेरा कोई अन्य प्रिय नहीं है। अब क्या हुआ। अब मैं आपकी प्रिय पात्र क्यों नहीं रही। मेरी सास मेरा कितना सम्मान करती थीं, अब क्या मेरा

वह खाक सम्मान करेंगी। आपको आज तक कपटी व धूर्त कभी नहीं समझती थी। परन्तु आज प्रकट हो गया, कि वास्तविकता क्या है। आपके मुख देखने से तो कोई नहीं कह सकता कि आप चोर और शठ हैं। आदि इस प्रकार से उसने श्रीकृष्ण को बहुत उलाहना दिया।

तब श्रीकृष्ण सत्यभामा को समझाते हुए बोले हे सुमुखी ऐसी बात न कहो, तुम मेरी सर्वस्व हो, और मैं तुम्हारा ही हूँ। मैंने नारद का दिया हुआ पुष्प रुक्मिणी को दिया है। यह मेरा पहला अपराध है। इसे तुम्हें क्षमा कर देना चाहिए। यदि तुम्हें भी पारिजात पुष्प चाहिए तो मैं तुम्हें स्वर्ग से पारिजात पुष्प का वृक्ष ही लाकर दूँगा। तथा तुम्हारे भवन में ही स्थापित कर दूँगा। जब तक उसे रखने की तुम्हारी इच्छा हो उसे रखना। रानी सत्यभामा प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण से बोलीं—हे नाथ ! जब आप पारिजात पुष्प का वृक्ष ही मेरे लिए ला देंगे तो मुझे क्रोध ही क्यों रहेगा। इससे तो संसार की नारियों में मुझे श्रेष्ठ नारी होने का गौरव प्राप्त होगा। मेरी मनो-कामना पूर्ण होगी। कहकर मुस्करा दीं। भगवान् श्रीकृष्ण ने तथास्तु कहा।

श्रीकृष्ण ने नारद का ध्यान किया। नारद जी आ गये। श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से पवित्र जल नारद के पैरों

पर गिराया और सत्यभामा ने धोया । फिर सुन्दर आसन पर बैठाकर श्रीकृष्ण ने नारद जी को खीर का भोजन कराया । नारद जी भोजन कर सन्तुष्ट हो गए ।

महर्षि नारद जी भोजनोपरान्त हाथ मुंह धोकर फिर हाथ में जल ग्रहण कर भगवान् श्रीकृष्ण व सत्यभामा से बोले—हे देवी ! आप इस समय जैसी पति परायण हैं वैसी ही आप भविष्य में भी पति परायण व पति की प्रिय बनकर सौभाग्यवती बनी रहें । आशीर्वाद से सत्यभामा प्रसन्न हो गई । नारद जी से अनुमति प्राप्त कर भगवान् व सत्यभामा भी भोजन करने के पश्चात् शुभ आसन पर बैठ गये ।

महर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्ण से बोले—हे महानुभाव ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं इन्द्र लोक को जाऊँ । आज वहाँ देवता व गन्धर्व तथा अप्सरा गण भगवान् शिव जी को नमस्कार संगीत का आयोजन करेंगे । शिव के पूजन के उपलक्ष्य में प्रतिमास देवराज इन्द्र के भवन में संगीत का आयोजन होता है । भगवान् शिव व पार्वती अपने गणों सहित प्रेम-पूर्वक इस आयोजन को देखते हैं । कल ही इन्द्र ने मुझे पारिजात का पुष्प देकर निमन्त्रित किया था । उस पुष्प को आपके लिए यहां लाया हूँ । इसके नियमित पूजन करने पर सदा ही सौभाग्य की वृद्धि

होती है। क्योंकि महान धार्मिक महात्मा कश्यप जी ने अदिति के पुण्य व्रत के साधन स्वरूप पारिजात की रचना की थी।

—:०:—

श्रीकृष्ण और इन्द्र का युद्ध

प्रातःकाल होते ही श्रीकृष्ण रथ पर सवार होकर सात्यकि व प्रद्युम्न को लेकर रैवतक पर्वत पर गए। वहाँ रथ रोककर सारथी दारुक से श्रीकृष्ण बोले—तुम यहीं घोड़ों को विश्राम कराओ दोपहर तक मेरे आने की प्रतीक्षा करो, आने पर द्वारिका चलेंगे। वहाँ श्रीकृष्ण सात्यकि के साथ गरुड़ पर सवार हुए तथा प्रद्युम्न एक अन्य आकाश गामी रथ पर। इस प्रकार पारिजात हेतु श्रीकृष्ण देवोद्यान में पहुंच गए। उस देवोद्यान की सुरक्षा में देवगण दिव्य शस्त्रों से सुसज्जित होकर तैनात थे।

भगवान् श्रीकृष्ण ने पारिजात को उखाड़कर गरुड़ की पीठ पर रख लिया। तभी पारिजात साक्षात् मूर्त रूप होकर भगवान् के सामने हाथ जोड़कर कांपने लगा। श्री कृष्ण ने पारिजात को समझा कर चिन्ता मुक्त किया। फिर अमरावती पुरी का भ्रमण करने लगे। पारिजात ले

जाने की सूचना इन्द्र को मिली । सुनते ही क्रोध में इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार होकर चल पड़े तथा पीछे से उनका पुत्र जयन्त भी चला ।

श्रीकृष्ण को अमरावती के पूर्व द्वार पर पहुंचने पर इन्द्र ने उनसे कहा—हे महाबाहो ! आपने इस पारिजात को क्यों उखाड़ा । श्रीकृष्ण इन्द्र को प्रणाम कर मुस्कराते हुए बोले—देवेन्द्र ! आपके भाई की पत्नी को पारिजात चाहिये । इसीलिये ले जा रहा हूं । इन्द्र बोले—आप इस पारिजात को बिना मुझसे युद्ध किये नहीं ले जा सकते । अतएव आप पहले मेरी छाती पर गदा मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करें । तब श्रीकृष्ण ने पहले इन्द्र की सवारी ऐरावत हाथी को घायल कर इन्द्र को बाण मारा । इन्द्र ने भी श्रीकृष्ण को बाण मारा । इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे का बाण धनुष काटते हुए सत्य का ही युद्ध करने लगे । तदोपरान्त श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न इन्द्र के पुत्र जयन्त से तथा सात्यकि इन्द्र के परम मित्र व हितैषी प्रवर नामक ब्राह्मण से युद्ध करने लगे । दोनों ही एक दूसरे के शस्त्रों को काटते हुए घायल कर रहे थे । परन्तु पीछे हटने का कोई भी नाम नहीं लेता था ।

सात्यकि प्रवर के साथ युद्ध प्रारम्भ करते हुए बोले, 'हे विप्र ! तुमने तो मेरा धनुष काट डाला । परन्तु मैं

तुमको बाण नहीं मारूँगा । क्योंकि तुम ब्राह्मण हो । सैकड़ों अपराध करने वाले ब्राह्मण को भी यादव लोग नहीं मारते । प्रवर बोला—हे वीर ! युद्ध क्षेत्र में ऐसे दोष नहीं लगता । तम मुझ पर अपनी पूर्ण क्षमता से प्रहार करो । फिर दोनों में भीषण युद्ध होने लगा । प्रवर की भीषण बाण वर्षा से सात्यकि के धनुष के टुकड़े-टुकड़े हो गये तथा उसके अंग-प्रत्यङ्ग आहत हो गए । सात्यकि बुरी तरह घायल हो गया । तब प्रवर गरुड़ के पास गया । गरुड़ ने प्रवर को ऐसा पंख मारा, कि प्रवर दो कोस दूर जाकर गिरा और मूर्छित हो गया । प्रवर को जयन्त अपने रथ पर बैठाकर ले गया तथा प्रद्युम्न ने अपने चाचा सात्यकि को जो कि कभी-कभी छट-पट करता, कभी मूर्छित हो जाता था, संभाला । तत्काल श्रीकृष्ण आये और सात्यकि के शरीर पर हाथ फेरा । उसके शरीर की पीड़ा नष्ट हो गई, और वह स्वस्थ हो गया । तब प्रद्युम्न पारिजात के दायें व सात्यकि उसके बायें खड़े होकर रक्षा में जुट गये ।

जब जयन्त व प्रवर एक रथ पर सवार होकर गरुड़ की तरफ बढ़े । तभी इन्द्र ने गरुड़ को महाबलशाली बताते हुए उन दोनों को युद्ध हेतु वहाँ जाने से मना कर दिया । बोले—तुम दोनों मेरी तरफ खड़े होकर मात्र मेरा व श्रीकृष्ण का संग्राम देखो । श्रीकृष्ण व इन्द्र में

भीष्म युद्ध छिड़ गया । गरुड़ व ऐरावत हाथी में भी युद्ध छिड़ गया । दोनों ही बलि, पराक्रमी, दुर्धर्ष व युद्ध में निपुण भी थे । ऐरावत भीषण गर्जना करते हुए अपने दाँत गरुड़ व मस्तक से प्रहार करता था तो गरुड़ अपने नखों पंखों से प्रहार करता था । कुछ समय बाद गरुड़ ने अपने नख रूपी अंकुश से पैरों की मार से ऐरावत को स्वर्ग से नीचे गिरने को विवश कर दिया । वह जम्बू दीप के परियात्र नामक पर्वत पर गिरा । परन्तु इन्द्र ने ऐरावत के प्रति अत्यधिक मोह व स्नेह के कारण छोड़ा नहीं, परन्तु उसके पीछे-पीछे हो लिए । श्रीकृष्ण भी पारिजात सहित गरुड़ को लेकर इन्द्र के पीछे-पीछे चल दिये । इन्द्र ने ऐरावत को स्वस्थ किया । तत्पश्चात् वहीं श्रीकृष्ण व इन्द्र भीषण संग्राम होने लगा । वह परियात्र पर्वत, इन्द्र, श्रीकृष्ण व गरुड़ की मार से पृथ्वी में धंसने लगा । इस कारण श्रीकृष्ण गरुड़ सहित आकाश में चले गए ।

श्रीकृष्ण ने अपने पुत्र को द्वारका जाकर दारुक सहित रथ लाने को कहा । पिता की आज्ञा मानकर प्रद्युम्न द्वारका गये । वहाँ बलराम व महाराज उग्रसेन को श्रीकृष्ण इन्द्र के युद्ध का सारा वृत्तान्त सुनाया । फिर शीघ्र ही रथ लेकर श्रीकृष्ण के सामने उपस्थित हो गए ।

श्रीकृष्ण द्वारा शिव-स्तुति

श्रीकृष्ण पुनः इन्द्र से युद्ध हेतु परियात्र पर्वत पर पहुंचे तो पर्वत उन्हें देखकर भयभीत हो गया । १/४ मासा का रूप धारण कर पृथ्वी के अन्दर घुस गया । इससे भगवान प्रसन्न होकर उसे अभय-दान देकर इन्द्र की तरफ युद्ध हेतु बढ़े । पीछे गरुड़ भी पीठ पर पारिजात को लिए चला । उसकी पीठ पर सात्यकि व प्रद्युम्न भी बैठे थे । सूर्यास्त होते देखकर श्रीकृष्ण ने इन्द्र से रात्रि होने के कारण युद्ध प्रातःकाल तक के लिए बन्द करने को कहा । इन्द्र ने युद्ध बन्द करना स्वीकार कर लिया । इन्द्र ने पुष्कर तीर्थ के निकट एक पथरीली चट्टान पर रात्रि निवास किया तथा श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न व सात्यकि सहित पारियात्र पर्वत पर ही रात्रि विश्राम किया ।

रात्रि में भगवान श्रीकृष्ण ने भगवान शंकर को प्रणाम कर गंगा जी का ध्यान किया । गंगा जी वहाँ उपस्थित हो गईं । श्रीकृष्ण ने गंगा का पूजन कर स्नान किया फिर गंगा जल व बिल्व पत्र हाथ में लेकर भगवान शंकर का आह्वान किया । भोले शंकर शीघ्र ही प्रकट हो गए । श्रीकृष्ण ने शंकर का पूजन किया व उनकी स्तुति निम्न प्रकार करने लगे । श्रीकृष्ण बोले—

रुद्रो देवस्त्वं रुद्रनाद्रावणाच्च रोरुययाणो द्रावणा-
च्चातिदेवः ।

भक्तं भक्तानां वत्सलानां वत्सलानां कीर्त्यायुडक्ष्वेशाद्य
प्रभवाभ्यन्तरेण । २२ ।

हे देव ! रुदन करते हुए आप दौड़े थे, इसलिए
आपका नाम रुद्र है । आप स्वयं के प्रकाश से प्रकाशित हैं,
भक्तों के भक्त तथा वत्सलों के वत्सल हैं अतः आप आज
मुझे यश का भागी अर्थात् यशस्वी बनाइये ।

ग्राम्याहण्यानां त्वं पतिस्त्वं पशुनां ख्यातो देवः पशु-
पतिः । सर्वकर्मा नान्यस्त्वत्तः परमो देवदेव जगत्पतिः
सुरविरारिहन्ता । २३ ।

आप भोगों में आसक्त संसारी व संसार से विरक्त
हुए संन्यासियों के स्वामी हैं इसी कारण आप पशुपति भी
कहलाते हैं । आप सर्वकर्मा से श्रेष्ठ कोई अन्य देवता नहीं
हैं एवं आप जगत्पति एवं देवताओं के शत्रुओं के नाशकर्ता
हैं ।

तस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राण-
दश्च तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरोशं सन्तोः विद्वांसः सर्वेशस्-
त्रार्थं तज्ज्ञा भूतं यस्माज्जगदत्यन्तं घोरं त्वत्तोऽव्यक्तं यक्ष
राक्षरेश । तस्मात्वासुर्भव इत्नवभूतं सर्वेश्वराणां महताम-
प्यदारम् । २४-२५ ।

आप ईश्वरों के ईश्वर, आप प्रीतिपद तथा प्राणपद हैं इसीलिए सर्व शास्त्रज्ञ विद्वान गण आपको ईश्वर कहते हैं । १२४। हे बुद्धि के दाता, जीवनियामक आप ही अव्यक्त एवं अक्षर हैं । आप से ही यह विश्व उत्पन्न होने के कारण आप भव भी कहे जाने हैं । १२५।

यस्माज्जितैरभिषिक्तोसि सर्वे देवासुरैः सर्वभूतैश्च देवः । महेश्वर विश्वकर्माणमाहुस्त्वां वै सर्वे तेन देवाधिदेवम् । १२६।

हे देव ! सभी देवता असुर तथा प्राणियों ने आपसे पराजित होकर आपको ईश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया है, आपको ही विश्वकर्मा तथा महेश्वर कहते हैं ।

पूज्यो देवः पूज्यसे नित्यदा,
वै कांक्षिविर्भरदामोघवीर्य ।

तस्माद्विख्यातौ भगवान्देवदेवः,
सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी ।

आप ! सबके पूज्यनीय हैं इसलिए सभी देवता आपकी पूजा नियमित रूप से करते हैं, आप असीम शक्ति वाले और सभी प्राणियों की सृष्टि करने में स्वयं समर्थ हैं, इसलिए आपको देव-देव कहा जाता है ।

भूमित्रयाणां देव यस्मात्प्रतिष्ठा,
पुपलोक्तानां भावनामेयकीर्तिः ।

त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम,
तवाप्रमेय त्रिदशेशानाथा । २८।

हे त्रिदशेशानाथ ! स्वर्ग, मर्त्य और पाताल आप से ही उत्पन्न हुआ है, आप ही प्राण आदि वायु, सूर्य, चंद्रमा और अग्नि आदि की रचना, पालन और संहार करते हैं। इन तीनों कार्यों के सम्पन्नकर्त्ता होने के कारण ही त्र्यम्बक नाम से आपकी प्रसिद्धि तीनों लोकों में हुई।

सर्वः शत्रुणां शासनाद प्रेमयस्तथा,
भूयः शासनाच्चैश्वरेण ।
सर्वव्यापित्वाछकस्त्वाच्च सद्रिभः,
शब्दस्पेशाकः श्रीकारकाग्रयुतेजः । २९।

हे श्रीधर ! शत्रु आपको कभी भी परास्त नहीं कर सकते, आप सर्व व्याप्त बाह्यभ्यन्तर तथा सभी अवस्था में प्रभु धर्म पर स्थित रहकर सब प्राणियों पर शासन तथा साधुओं का कल्याण करते हैं इसलिए आपको शर्व कहा गया है। आप शब्द के ईशान तथा सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं।

संसक्तता नित्यदा यत्करोषि शुभं भ्रातृव्यान्यद्व्यनेषीः
समन्ताव तस्माद्रदेवः शंकरोऽपभेयस्य सद्विद्वर्मज्ञे कथ्यते
सर्वनाथः । ३०।

हे सर्वनाथ ! आप अपने भक्तों को सदा शांति तथा असुरों को दण्ड देने वाले हैं, इसलिए धर्मात्मा और साधु जनों ने आपका नाम शंकर रखा है ।

दतः प्रहारः कुलिशेन पूर्व तवेशान सुराज्ञाऽतिथीर्य ।
कण्ठेनैल्यं तेन ते तत्प्रवृत्त तस्मात्खथ तत्स्वं नीलकण्ठे
कल्पः ॥३१॥

हे ईशान ! पूर्वकाल में जब इन्द्र ने आप पर वज्र का प्रहार किया, तब उसके प्रतिकार में समर्थ होने पर भी आपने भ्रतृ प्रेम के कारण वह आघात सह लिया जिससे आपके कण्ठ का वर्ण नीला हो गया । इसलिए आपका नाम नीलकण्ठ हुआ ।

यत्किं गां कै यच्च लोके भगां कैः सर्वं सोय त्वं स्थावरं
जंगम च । प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिन तत्त्वविज्ञास्तथा ध्येया-
मम्बिकां लोधात्रीम् ।

हे सोम ! जगत् में स्त्रीत्व एवं पुरुष युक्त स्थावरं जंगम सभी प्राणियों के सर्वस्व हैं । इसीलिए आपके यथार्थ तत्त्व के ज्ञाता जन आपको और लोकधात्री पार्वती जी को गुणात्मक करते हैं ।

वेदैर्गीता सा हि तत्त्वं प्रसूता यज्ञो दीक्षाणां योगिनां
चातिरूपः । नात्यद्भूतं तत्त्वतः समं देव भूत भव्यं भवदेवाय
नास्ति ॥३३॥

वेदों ने उन भगवती को यज्ञ स्वरूप बताया है, जिनसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। आप यज्ञ में दीक्षित योगियों के यज्ञ स्वरूप हैं यथा भूत, भविष्य, वर्तमान में आपके समान अद्भुत अन्य कुछ नहीं रहता।

अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनतः पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चाति वीराः। त्वत्तः सर्वे देव देव प्रसूता एवं सर्वेशः कारणात्मात्वमीज्यः।

हे देवाधिदेव ! मैं ब्रह्मा, कपिल शेष व अन्य ब्रह्मा के वीर पुत्र आपके द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं। विश्व की सभी दिखाई देने वाली वस्तुएँ आप से ही प्राप्त हुई हैं। इसलिए आप सभी के द्वारा स्तुति के योग्य हैं।

इति संस्तयमानस्तु भावान्गोवृषभध्वजः।

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं नारायणमथाब्रवीत्।३५।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा शंकर की स्तुति करने पर शंकर ने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाकर श्री कृष्ण से कहा—हे देवोत्तम ! आपकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। आप निश्चय ही इस पारिजात वृक्ष को ले जाने में सफल होंगे। आप चिन्ता न करें। आपके मैनाक पर्वत पर तपस्या करने के समय ही मैंने आपको वर दे दिया था कि आप अवध्य, अजेय तथा महाबली व पराक्रमी होंगे। आपके द्वारा किये मेरे इस स्तोत्र से विश्व में

सभी इसके पाठ करने वालों की सभी प्रकार की मनो-कामनायें अवश्य पूर्ण होंगी । आप जहां भी मुझे स्थापित करेंगे मैं वहाँ सभी भक्तिपूर्वक आराधना करने वालों की अभिलाषा पूर्ण करूँगा । इस पर्वत के नीचे षटपुर नामक प्रसिद्ध दानवों की नगरी है । वहाँ कंटक स्वरूप दैत्य एवं दुरात्मा दैत्य कपटो भेष में निवास करते हैं । वे सभी ब्रह्मा के द्वारा वर प्राप्त कर किसी के द्वारा नहीं जा सकते । अतः आपका यह मनुष्य रूप है । इसलिये उन सबका संहार करिये । कहकर भगवान् शंकर श्रीकृष्ण को हृदय से लगा अन्तर्धान हो गए ।

श्रीकृष्ण भगवान् षटपुर के राक्षसों के संहार के विचार से पर्वत पर ही निवास करने लगे । और पर्वत से बोले—हे गिरि श्रेष्ठ ! जो मनुष्य बाहु ऊपर उठा कर तुम पर चढ़ेगा उसे हजारों गौओं के दान के बराबर फल तथा पत्थर से मूर्ति बनाकर पूजा करेगा उसे मेरा लोक प्राप्त होगा । तभी से विष्णु लोक के आकांक्षी मनुष्य उस पर्वत की पत्थर से श्रीकृष्ण की प्रतिमा बनाकर सदा ही पूजा भक्ति में मस्त रहते हैं । तथा वहाँ शंकर भगवान् बिल्वोदकेश्वर नाम से व गंगा जी अविन्ध्या नाम से प्रसिद्ध हुई ।

द्वारिका में पारिजात लाना

भगवान श्रीकृष्ण प्रातः होते ही बिल्वोदकेश्वर (शिव) भगवान को नमस्कार कर रथ पर सवार पुष्कर तीर्थ के निकट जहाँ श्री इन्द्र ठहरे थे उनसे युद्ध करने के लिए पहुंच गये। श्रीकृष्ण ने इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा। इन्द्र भी अपने पुत्र जयन्त के साथ रथ पर चढ़कर युद्ध क्षेत्र में आये। दोनों पक्षों में संग्राम हुआ। इन्द्र की सेना त्रस्त हो गई। युद्ध में विशेषता यह थी कि इन्द्र व श्री कृष्ण दोनों महा पराक्रमी होते हुए भी अपने में एक दूसरे पर प्रहार नहीं करते थे। दोनों पक्षों में दिन भर संग्राम होता रहा। पृथ्वी कंपित होने लगी, पर्वत हिलने लगे, तीव्र भीषण वायु चलने लगी, वृक्ष पर वृक्ष गिरने, संसार के सभी पापी चेष्टाहीन होकर पृथ्वी पर गिरने लगे, सभी ग्रह आपस में टकराने लगे। नक्षत्र टूट-टूटकर गिरने लगे, लाल-र बादलों से आकाश मण्डल छा गया। उल्कापात के साथ-साथ रुधिर की वर्षा होने लगी। उस समय देवता व ब्राह्मणगण संसार की रक्षा व शुभ हेतु मंत्र का जाप करने लगे। ब्रह्मा जी ने कश्यप ऋषि को बुलाकर कहा, हे मुने ! आप अपनी पत्नी अदिति को अपने पुत्रों के पास ले जाकर युद्ध का निवारण कीजिये। कश्यप ऋषि युद्ध

क्षेत्र में गये । दोनों प्रतापी पुत्र इन्द्र व श्रीकृष्ण ने अपने रथ से उतरकर अपने माता पिता के सामने आकर दंडवत प्रणाम किया । देव माता अदिति ने दोनों पुत्रों के सिर पर स्नेह पूर्वक हाथ फेरते हुए कहा—तुम दोनों भाई सौतेले भाई की तरह एक दूसरे का वध करने का क्यों प्रयत्न कर रहे हो । यह ठीक नहीं है । यदि तुम दोनों को अपने माता पिता में अनुराग है तो युद्ध शीघ्र बन्द कर दो ।

इन्द्र व श्रीकृष्ण ने युद्ध बन्द कर दिया । आपस में प्रेम पूर्वक वार्ता करते हुए गंगा स्नान करने को चल दिये । रास्ते में इन्द्र ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! आप तीनों लोकों के मालिक हो, आपने ही मुझे स्वर्ग का राज्य दिया है । अपना बड़ा भाई माना है फिर भी आप मेरे को अपमानित करने के लिए क्यों तैयार हुए । परन्तु श्री कृष्ण ने कुछ भी जवाब नहीं दिया । स्नान करने के बाद दोनों भाई अपने माता पिता के साथ आये । फिर वहां से सभी लोग देवताओं के साथ देवलोक में आये । वहां इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी ने अपने सास-ससुर का उचित सम्मान किया । रात्रि व्यतीत होने पर प्रातः माता अदिति ने श्रीकृष्ण से कहा—हे पुत्र ! अब तुम द्वारिका जाकर इस पुण्य रूप पारिजात को दे दो । वहां कार्य पूर्ण हो जाने पर पुनः इसे यहीं नन्दन कानन में लाकर स्थापित

कर देना । नारद आदि सभी देवताओं ने इसका समर्थन किया । श्रीकृष्ण अपने माता पिता भाई व भाभी को प्रणाम कर पारिजात के साथ द्वारिका आ गये ।

—:०:—

षटपुर के दैत्यों व श्रीकृष्ण के साथ युद्ध का वर्णन

महर्षि वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय से षटपुर के दैत्यों के विषय में वर्णन करते हुए बताया कि एक बार त्रिपुरासुर व भगवान शंकर के मध्य भीषण संग्राम हुआ था । उस युद्ध में साठ लाख से भी अधिक बलि दानव उपस्थित थे । उस युद्ध में भगवान शंकर ने सभी दानवों को छोड़कर केवल त्रिपुरासुर को ही शराग्नि से दग्ध कर दिया । त्रिपुरासुर की मृत्यु से सभी राक्षस गण भय से कम्पित हो गये । उन्होंने जम्बू द्वीप के मार्ग में मात्र वायु का भक्षण करते हुए सूर्य की ओर मुख करके एक हजार वर्षों तक ब्रह्मा जी की स्तुति करते हुए कठिन तपस्या की । कोई गूलर वृक्ष के नीचे, कोई शृगालवाटी वृक्ष की छाया में, तथा कोई वट वृक्ष की जड़ पर बैठकर उपासना में रत थे ।

उन दानवों की कठिन तपस्या से ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर दानवों से वर मांगने को कहा, दानवों ने कहा—हे

कृपा-निधान शिवजी ने त्रिपुरासुर व बान्धवों को मारकर हमारा बड़ा अहित किया है। हम उनसे अपने अहित का बदला लेना चाहते हैं। ब्रह्माजी बोले—भगवान शंकर इस अखिल ब्रह्माण्ड के रचियता व संहारक हैं। अतः उन्हें मार सकने में तुम लोग सफल नहीं हो सकते तथा कोई अन्य भी नहीं मार सकता। इसलिये दूसरा वर मांगों। जो दानव शिवजी की परम शक्ति को जानते थे वे तो ब्रह्मा जी के कथन से सहमत हो गये। परन्तु जो दानव शिवजी से वैर भाव रखना ही चाहते थे उन्होंने ब्रह्माजी से कहा—हे प्रभो ! देवगण हमें न मार सकें, तथा हमारे लिये पृथ्वी के नीचे सुख सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य से परिपूर्ण षट्पुर बनाया जाय। जहां हम निवास कर सकें। तथा शिव के भय से हम भयमुक्त होवें। ब्रह्माजी बोले—हे दानवों ! यदि तुम लोग सत्यानुयायी ब्राह्मणों को कष्ट नहीं दोगे तो तुम लोगों को शिवजी या अन्य कोई देवता नहीं मार सकेंगे। परन्तु किसी ब्राह्मण का तुम लोगों के द्वारा अपमान होने पर तुम लोगों का नाश अवश्य हो जायेगा।

जिन राक्षसों ने ब्रह्माजी की बात मानकर भगवान शंकर को शरणागत हुए वे शिवलोक को प्राप्त हुए।

इसी समय अर्वता नदी के किनारे षट्पुर में वेदज्ञ

याज्ञवल्क्य के शिष्य ब्रह्मदत्त ने एक वर्ष के लिए अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ की दीक्षा वसुदेव व देवकी लेकर षटपुर पहुंचकर यज्ञ की तैयारी में लग गए। यज्ञ-शाला ने अनेक दृढ़व्रती महात्मा गण, वेदव्यास, याज्ञवल्क्य, सुमन्त, जैमिनी, छागलि और देवल आदि ऋषि महर्षि उपस्थित थे। यज्ञ का अनुष्ठान विधिवत् हो रहा था। तभी षटपुर निवासी निकुम्भ आदि दानव वहाँ आकर बोले—हे राजन् ! तुम अपने इस यज्ञ में हमें भी हिस्सा दो। हम भी सोमपान करेंगे। अन्यथा यज्ञ सफल नहीं होने देंगे। तथा जो भी श्रेष्ठ रत्न व कन्यायें हैं, वह सभी हमें सौंप दो। पं० ब्रह्मदत्त बोले—हे दानवों ! तुम लोगों को यज्ञ में भाग देने या सोमरस पान करने का शास्त्रों में कहीं भी वर्णन नहीं है। इसलिए ऐसा करना सम्भव नहीं है। रत्नों को देने की बात है तो वह यदि तुम लोग शांति पूर्वक रहोगे, तभी प्राप्त कर सकते हो। उच्छृंखल बनकर नहीं। कन्याओं की देने की बात रही तो ये मेरे पूर्व निश्चयानुसार अपने योग्य पतियों को प्राप्त होवेंगी।

ब्रह्मदत्त के इस प्रकार की बातें करने से निकुम्भ आदि दानवों ने क्रोधित होकर यज्ञ को भंग कर दिया। तथा ब्रह्मदत्त की कन्याओं को भी बलपूर्वक उठा ले गए। यह देखकर वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण, बलरास और गद का ध्यात

किया । श्रीकृष्ण ने तत्काल ही प्रद्युम्न को वहाँ (यज्ञस्थली) पर जाकर ब्रह्मदत्त की कन्याओं की रक्षा करने को कहा । प्रद्युम्न ने शीघ्र ही सेना के साथ दानवों के पास पहुँचकर उन्हें माया निर्मित कन्यायें देकर ब्रह्मदत्त की कन्याओं को वापस ले लिया । दानव अपने नगर को गए । इधर यज्ञ प्रारम्भ होकर विधिवत् सम्पन्न हो गया । यज्ञ में चारों ओर के राजागण शल्य शकुनि, शिशुपाल, पाण्डवगण, आदि राजाओं ने पधार कर वहाँ अपना डेरा डाल दिया ।

देवर्षि नारद जी ने सभी राजाओं को एकत्र देखकर युद्ध कराने का विचार किया । तभी वे दानवराज निकुम्भ के पास गये । निकुम्भ आदि दानवों ने नारद जी का भरपूर स्वागत किया । नारद जी अपना पवित्र आसन ग्रहण कर बोले—हे दानवों ! तुम लोग यादवों से वैर करके कान में तेल डाले सोये हो । ध्यान से सुनो । ब्रह्मदत्त व श्रीकृष्ण की घनिष्ठ मैत्री है । कृष्ण के कारण ही ब्रह्मदत्त ने पाँच सौ स्त्रियाँ प्राप्त कीं । जिनमें दो सौ ब्राह्मण कन्यायें और एक सौ क्षत्रिय कन्यायें, एक सौ वैश्य कन्यायें और एक सौ शूद्र कन्यायें हैं । दुर्वाषा ऋषि के आशीर्वाद से उन सभी स्त्रियों को एक-एक पुत्र व एक-२ कन्यायें हुईं । जिनमें से चार सौ कन्यायें तो ब्रह्मदत्त ने यादवों को दे दीं । शेष सौ कन्यायें ही तुम लोग उठा के

लाये हो । बाकी चार सौ कन्याओं को प्राप्त करने के लिये तुम लोग यहां आये हुए राजाओं से सन्धि करके यादवों से युद्ध कर उन्हें ले लो । तुम्हारी सहायता के लिए राजा लोग रत्नों के लोभ में तैयार हो जायेंगे ।

नारद जी के इस परामर्श से दानवगण प्रसन्न हुए । उन्होंने राजाओं को प्रचुर रत्न व पाँच सौ कन्याएँ देकर सन्धि कर ली एवं यादवों के विरुद्ध युद्ध में भी सहायता करने के लिए वचन ले लिया । सभी राजाओं ने रत्नों व कन्याओं को आपस में बांटा । परन्तु पाण्डवों ने इस बंटवारे में भाग नहीं लिया । यादवों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने के लिए भी दानवों की तरफ से स्वीकार नहीं किया । दानवों का पक्ष लेकर सभी राजाओं ने यज्ञशाला में ही युद्ध प्रारम्भ कर दिया । तब तक श्रीकृष्ण भी अपनी विशाल सेना के साथ षटपुर पहुँच गये । वसुदेव जी के परामर्श से श्रीकृष्ण ने यज्ञशाला के निकट अपना पड़ाव डालकर वहां चारों तरफ सुरक्षा चौकियाँ स्थापित कर वहां का रक्षा भार प्रद्युम्न को सौंप दिया । प्रातःकाल होते ही श्रीकृष्ण बलराम एवं सात्यकि आदि योद्धाओं ने आर्वती नदी में स्नान करके विल्वोदकेश्वर भगवान के दर्शन कर युद्ध की तैयारी में लग गये । यज्ञशाला की रक्षा पाण्डवों को सौंपी, सेना के अग्रभाग पर प्रद्युम्न को,

गुफा द्वार पर बची हुई सेना को एवं इन्द्र के पुत्र जयन्त तथा प्रवर नामक ब्राह्मण को आकाश मार्ग की रक्षा हेतु निश्चय किया। फिर युद्ध का बाजा बजने लगा। साम्ब, गद ने मकर व्यूह बनाकर सारण, उद्धव, भोज, वैतरण अनाधृष्टि, पृथु, विपृथु, कृतवर्मा, सुदंष्ट्र एवं विचक्षु को नियुक्त किया। सनत्कुमार एवं चारुदेष्ण अनिरुद्ध व्यूह के पिछले भाग की रक्षा के लिए तथा पैदल रथ, हाथी, घोड़ों की सेना व्यूह के मध्य में नियुक्त की।

युद्ध के बाजे को सुनकर दानव भी षटपुर से बाहर आये। जो हाथियों, मकरों, घोड़ों, गदहों भैंसों आदि पर सवार होकर कुछ पैदल विभिन्न प्रकार के भयंकर अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर युद्ध के मैदान में आये। निकुम्भ दानव सेना के आगे-आगे चल रहा था। दानव सेना भीषण गर्जना करते हुए पृथ्वी एवं आकाश में मण्डराने लगी। दानवों की तरफ से दुर्योधन के सौ भाई भी विशाल सेना के साथ आगे-आगे चले। साथ ही राजा द्रुपद, रुक्मी, शल्य, शकुनि, भगदत्त, जरासन्ध, विराट आदि दानवों की तरफ से यादवों के विरुद्ध लड़ने के लिए अपनी-२ सेना के साथ युद्ध क्षेत्र में पहुंचे। युद्ध प्रारम्भ हो गया। निकुम्भ यादवों की विशाल सेना को नष्ट करने लगा। अनाधृष्टि ने निकुम्भ को शिथिल कर दिया। तब निकुम्भ

माया से अनाधृष्टि को मूर्छित कर गुफा में लेकर चला गया। इसी प्रकार स्वयं को अप्रकट रखते हुए निकुम्भ ने कृतवर्मा, चारुदेष्णः वैतरण, सन्तकुमार आदि अनेकों योद्धाओं को माया से मूर्छित कर गुफा में उठा ले गया।

निकुम्भ के इस कर्म से श्रीकृष्ण बलराम व सात्यकि आदि भीषण क्रोध कर दानवों का नाश करने लगे। दानवों के मध्य में पहुंचकर श्री कृष्ण दानवों का भीषण संहार करने लगे। श्रीकृष्ण के समीप दानवगण ठहर नहीं पाये। वे प्राण भय से व्याकुल होकर आकाश मार्ग में उड़ने लगे। वहाँ जयन्त व प्रवर ने अग्नि शिखा के समान अपने बाणों से दानवों को नष्ट कर दिया। भगवान शंकर ने प्रधान पार्षद नन्दी हजारों पाशास्त्रों को लेकर प्रद्युम्न के पास आये। बोले—कि यदुनन्दन ! विल्वोदकेश्वर का आदेश है कि आप इन पाशास्त्रों से सभी राजाओं को बांधकर माया निर्मित गुफा में डाल दें। श्रीकृष्ण को भी कहा है कि वे शीघ्र ही दानवों का संहार कर दें। प्रद्युम्न ने उस पाशास्त्रों को लेकर सभी राजाओं को बांधकर माया निर्मित गुफा में डाल दिया तथा उन राजाओं के सेनापतियों, सैनिकों, कोषाध्यक्षों, हाथियों, घोड़ों आदि पर अपना अधिकार कर लिया। तथा ब्रह्मदत्त को भय मुक्त करते हुए कहा कि जब आपके सामने धनञ्जय

अर्जुन आदि पाण्डवगण आपके समझ हैं तब आपको भय मुक्त हो जाना चाहिए। इनके रहते देवता, दैत्य, नाग आदि किसी का भय नहीं है दैत्यगण आपकी कन्याओं को स्पर्श भी नहीं कर सकते। कहकर प्रद्युम्न शेष राक्षसों के संहार में लग गए।

—:०:—

षट्पुर राजा निकुम्भ का वध

सभी राजा गण अपने सैनिकों व अनुयायियों के साथ बन्दी हो गए। शेष राक्षस श्रीकृष्ण—बलराम के भय से चारों दिशाओं को पलायन करने लगे। तब निकुम्भ ने सभी दानवों को व्यंगपूर्ण तीखे वचन बोलकर युद्ध के लिए उत्साहित किया। दानव पुनः पूरे जोर शोर से उत्साह के साथ प्राणों का मोह त्याग कर युद्ध में रत हो गये। जो दानव यज्ञशाला में गये, उन्हें दानवों ने मार डाला। जो आकाश मार्ग में गये, उन्हें जयन्त व प्रवर ने मार डाला। पृथ्वी पर नदियों की बाढ़ के समान रक्त बहने लगा। उस रक्त की बाढ़ में कटे, मरे, अधमरे, दानव व उनके हाथी, घोड़े तथा रथ व शास्त्रादि बहे जा रहे थे। उस समय एक भयानक दृश्य उत्पन्न हो गया था।

निकुम्भ पुनः यज्ञशाला के पास जाकर पाण्डवों बलराम, सात्यकि आदि पर परिधों से प्रहार करता रहा।

वह माया बल से अदृश्य होकर बड़े-बड़े योद्धाओं के छक्के छड़ाता रहा। किसी को वह दिखाई ही नहीं दे रहा था, कि योद्धागण उस पर प्रहार कर सकें। श्रीकृष्ण ने उसी क्षण भगवान् विल्वोदकेश्वर का स्मरण किया। जिनकी कृपा से सभी को दिव्य दृष्टि मिल गई, और अति विशाल-काय राक्षस दिखाई देने लगा। अर्जुन ने अनेकों बाण गाण्डीव धनुष से निकुम्भ पर छोड़े। परन्तु एक भी बाण निकुम्भ को नहीं लगा। सभी उसकी परिधि से टक्कर खाकर टूट गये। यह देखकर अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। श्री कृष्ण ने मुस्कराते हुए अर्जुन को उस दिव्य अलौकिक शक्ति को प्राप्त करने के विषय में बताया। जिस कारण देवताओं अथवा दैत्यों द्वारा न मारे जाने का वर प्राप्त कर चुका था। उस समय भगवान् शंकर ने वर देते हुए कहा था कि तुम यदि मेरा ब्राह्मण या विष्णु का अपमान करोगे, तभी विष्णु द्वारा मृत्यु को प्राप्त होवोगे। इसके अतिरिक्त तुम्हें मारने में कोई अन्य सफल नहीं हो सकता। यह इसका भयंकर रूप षटसुर है। फिर श्री कृष्ण अर्जुन से बातें बन्द कर निकुम्भ को मारने के लिए झपटे। निकुम्भ एक भयंकर गुफा में घुस गया। श्रीकृष्ण भी उसके पीछे-पीछे घुस गये। बलराम, यादव व पाण्डव आदि भी घुस गये।

श्रीकृष्ण के आदेश से प्रद्युम्न ने सभी बन्दी यादवों को मुक्त करा दिया । फिर सभी अपने विरोधी बन्दी राजाओं को भी । सभी राजा शर्म से मुंह लटकाये खड़े हो गये ।

निकुम्भ व श्रीकृष्ण में भीषण युद्ध हो रहा था । दोनों ही एक दूसरे पर भयंकर आघात कर रहे थे । भगवान् शंकर ने श्रीकृष्ण के कान में दैत्य को वज्र से मार देने की आकाशवाणी की । तत्क्षण ही श्रीकृष्ण ने वज्र का स्मरण कर हाथ में लिया । शिवजी को नमस्कार किया । फिर वज्र से निकुम्भ के मस्तक को काटकर पृथ्वी पर गिरा । भगवान् शंकर प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण को धन्य-धन्य कहने लगे । पृथ्वी पर शान्ति हो गई । आकाश में पुष्प वृष्टि होने लगी । तथा विजय घोष होने लगा । यज्ञ समाप्त होने पर यादवों, पाण्डवों तथा अन्य राजाओं को सम्मानित कर श्रीकृष्ण ने विदा किया । ब्राह्मण ब्रह्मदत्त का भी विधिवत् सत्कार करके माता पिता के साथ द्वारिका आ गये ।

वैशम्पायन जी ने जनमेजय से कहा—हे राजन् ! जो मनुष्य षट्पुर वध का वृतांत पढ़ता है अथवा सुनता है वह युद्ध में विजय अवश्य प्राप्त करता है । पुत्रहीन व्यक्ति को पुत्र, धनहीन व्यक्ति को धन रोगी व्यक्ति को निरोगी काया तथा बन्दी को मुक्ति प्राप्त होती है । पुनसवन, गर्भाधान तथा श्राद्ध में यह अक्षत महामंत्र हो जाता है ।

जो मनुष्य देवाधिदेव महात्मा श्रीकृष्ण के इस वृत्तान्त का पाठ करता है । वह सांसारिक व्याधियों से छूटकर उत्तम गति को प्राप्त करता है । हाथ पांव में मणिजड़ित स्वर्ण आभूषणों को धारण करने वाले, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी सर्वेश्वर, चतुःसमुद्रशायी, चतुर्विद्यात्मा, शत्रु विनाशक एवं सहस्रों नाम वाले जगत्पति श्रीकृष्ण की जय हो, जय हो ।

यथा—

इमं यः षट्पुरवधं विजयं चक्रपाणिनः ।
 शृणयाद्वा पठेद्वापि युद्धे जयवाप्नुयात् । ६४।
 अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ।
 व्याधितो मुच्यते रोगी वद्धश्चाप्यथ बन्धनात् । ६५।
 अदध्योऽस्मीति लोकान्स सर्वान्वाधति भारत ।
 इदं पुंसवनं प्रोक्तं गर्भाधानं च भारत ।
 श्राद्धेषु पठितं सम्यगक्षय्यकरणं स्मृतम् । ६६।
 इदममरवस्य भारते प्रथितं बलस्य जय महात्मनः ।
 सततमिदं यः पठेन्नरः सुगतिमितो व्रजते गतज्वरः । ६७।
 मणिकनकं विचित्रपाणिपादो,
 निरतिशयार्कं गुणोऽरिहादिनाथः ।
 चतुरुदधियश्चतुर्विधात्मा,
 जयति जगत्पुरुषः सहस्रनामा । ६८।

अन्धकासुर वध

महर्षि कश्यप अपनी पत्नी अदिति की सेवा से प्रसन्न होकर बोले—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । आज जो कुछ भी तुम चाहो वर मांग लो । अदिति बोली—हे नाथ ! देवताओं ने मेरे सौ पुत्रों को मार डाला है । अब आप ऐसे पुत्र का वर दें जिसे कि देवता आदि कोई न मार सके । कश्यप जी ने कहा—ऐसा ही होगा परन्तु तुम्हारे उस पुत्र को भगवान् शंकर ही केवल मार सकते हैं कोई अन्य नहीं ।

कुछ समय बाद अदिति के गर्भ से पुत्र पैदा हुआ । जिसके एक हजार हाथ, एक हजार सिर, दो हजार पांव, एवं दो हजार आंख थीं । दो हजार आंख होने के बावजूद भी वह घमण्ड में चूर होकर अन्धे के समान चलता था । इसलिए उसका नाम अंधक पड़ गया । वह महाघमण्डी दुराचारी, हत्यारा, दूसरे की स्त्रियों व कन्याओं को तथा सम्पत्ति को लूटने वाला सदा ही दुष्कर्मों में व्यस्त रहता था । तीनों लोकों में अंधक का भय व्याप्त था । कोई भी देवता, दैत्य नाग आदि उसके विरुद्ध साँस तक नहीं ले सकते थे । सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, नदी, समुद्र, ग्रह उपग्रह आदि सभी उसी के इच्छानुरूप अपना कार्य करते थे । अंधक ने इन्द्र के नन्दन कानन के वृक्षों को तहस-

नहस कर दिया तथा उनके उच्चैःश्रवा घोड़ों के बच्चों को दिग्गजों को, व देवताओं का अपहरण कर लिया। यज्ञ आदि कर्म बन्द हो गये। चारों तरफ हा-हाकार मच गया।

अंधक के विनाश हेतु सब ऋषिगणों ने विचार किया कि इसे तो केवल शंकर ही मारने में समर्थ हैं। कोई अन्य नहीं। इसलिये इस अत्याचारी का अत्याचार भगवान शंकर को सुनाया जाए तो वे अवश्य ही इसे मारने का उपाय करेंगे। इसलिए सभी एकत्र होकर शंकर जी के परम भक्त नारद जी के यहां गये। और सब हाल कहा। उसके बाद नारद जी मंदार पुष्प की माला पहन कर दुष्टात्मा अन्धक के पास गये। उस मन्दार पुष्प की सुगन्ध से पुष्प की तरफ आकर्षित होकर नारद जी से बोला—हे मुनिश्रेष्ठ ! यह पुष्प किसका है। इसे आपने कहां से प्राप्त किया है तथा यह किससे व कैसे प्राप्त हो सकता है। इसकी सुगन्ध तो पारिजात पुष्प से भी बढ़िया है। कृपया हमें बतायें। इसे मैं भी चाहता हूं।

नारद जी मुस्कराते हुए बोले—हे दानवराज ! यह श्रेष्ठ पुष्प पर्वत पर स्थित काम्यक नामक उपवन का है। यह उपवन भगवान शंकर द्वारा निर्मित है। उनकी आज्ञा के बिना कोई भी उपवन के अन्दर नहीं जा सकता।

उपवन की रक्षा में अनेकों वेष में अनेकों गण शस्त्रों से सुसज्जित होकर नियुक्त हैं । अतः भगवान् शंकर को तप से प्रसन्न किये बिना पुष्प प्राप्त करना सम्भव नहीं है । यह मन्दार वृक्ष ऐसी महिमा वाला है कि इससे रत्न स्त्री आदि जो भी अमूल्य वस्तुएँ मांगी जाए प्राप्त हो जाती हैं । उस उपवन में सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँचता । फिर भी स्वयं प्रकाशित है । इस वृक्ष के साथ रखने से भूख, प्यास, चिन्ता ग्लानि अथवा कोई अन्य कष्ट नहीं सताता । उस उपवन के समक्ष तो नन्दन कानन भी कुछ नहीं है । यदि कोई उस उपवन में एक रात भी निवास कर ले तो इन्द्र सहित सभी लोकों को जीत लेना साधारण सी बात है । ऐसा सुख कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं है । यह तो स्वर्ग का भी स्वर्ग है ।

अंधकासुर काम्यक की बड़ाई नारद जी द्वारा सुनकर बहुत से दैत्यों को साथ लेकर शिवजी के निवास स्थान की ओर चल दिया । वह मन्दार पर्वत ऋषि मुनियों व सिद्धों तथा चन्दन अगर, साल एवं नाना प्रकार के सुगन्धित तथा औषध वृक्षों से युक्त था साथ ही नाना प्रकार के जानवरों से भी भरा पड़ा था । वहाँ पहुँचकर अन्धकासुर ने मंदार पर्वत से कहा—अरे पर्वत ! तू भली-भाँति जान ले । मैं अपने पिता द्वारा किसी के द्वारा भी न मारे जाने का वर

प्राप्त कर चुका हूं। इसलिए मुझे मृत्यु का भय लेशमात्र भी नहीं है। तीनों लोकों के सभी प्राणी मेरे वश में हैं। किसी को मुझसे युद्ध करने का साहस नहीं है। तुम्हारे शिखर पर पारिजात वन है उसके पुष्प रत्न को मैं ले जाना चाहता हूं जो कि सभी कामनाओं को देने वाले हैं। यदि तुम उसे प्रेम से दे दो तो ठीक है अन्यथा युद्ध करके ले जाऊंगा। क्योंकि इस कार्य में देर नहीं चाहता।

अंधकासुर की बात सुनकर मन्दार पर्वत लुप्त हो गया। जिससे दैत्य क्रोधित होकर बोला—अच्छा ! तूने मेरा अपमान किया है। मैं अभी तुझे चूर्ण बना देता हूं। कहकर अंधक ने पर्वत शिखर को उखाड़ कर जमीन पर फेंक कर चूर-चूर कर दिया। परन्तु भगवान् शंकर ने उस पर्वत शिखर को पूर्ववत् ही कर दिया। इसके बाद अंधक के अनुयायी दानव जिस किसी पर्वत शिखर को फेंकते। वे शिखर उन्हीं दानवों के ऊपर गिर कर उन्हें नष्ट कर देते थे। जो इधर-उधर छिपते वे दूसरे पर्वत शिखर के गिरने से नष्ट हो जाते। दैत्यों को नष्ट होते देखकर अंधकासुर ने भीषण गर्जना करते हुए पर्वत से कहा—हे पर्वत ! तू छल क्यों कर रहा है। मैं तेरे स्वामी को युद्ध के लिए आह्वान करता हूं। वह शीघ्र मेरे सामने आकर मुझसे युद्ध करे। अंधक के यह कहते ही भगवान् शंकर

नन्दी पर चढ़कर हाथ में त्रिशूल लिए अपने गणों के साथ उपस्थित हो गए। भगवान शंकर के क्रोध से सभी लोक के चर अचर प्राणी, नदी, तालाब, सूर्य, आदि ग्रह स्तब्ध हो गये। संसार की सारी क्रिया ही विपरीत होने लगी। तब भगवान शंकर ने संसार की इस विपरीत क्रिया को देखकर क्रोध से अपना त्रिशूल अंधकासुर की छाती पर फेंका। त्रिशूल के लगते ही अंधकासुर भीषण गर्जना करता हुआ कटे वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिरकर उसने प्राण त्याग दिये।

विश्व की सभी विपरीत क्रियायें ठीक हो गई। आकाश से देवतागण पुष्पों की वर्षा करते हुए दुन्दुभि आदि बाजा बजाने लगे। तीनों लोकों के भय का नाश होकर आनन्द छा गया। देवता व गन्धर्व विजय गीत गाने लगे। मन्दराचल की शोभा पुनः पूर्ववत् हो गई।

—:—

निकुम्भ वध

प्रद्युम्न ने निकुम्भ दैत्य के भाई वज्रनाभ को मार कर उसकी पुत्री प्रभावती का हरण कर लिया था। उसी का बदला लेने के लिए निकुम्भ ने अपनी माया के बल से

भानु की पुत्री भानुमति का अपहरण कर लिया। जिससे भानु के अन्तःपुर में स्त्रियों का रोना व चीख पुकार गूँजने लगी। जिससे वासुदेव जी एवं उग्रसेन सुनकर कवच व शस्त्रास्त्र धारण कर अन्तःपुर को आये। परन्तु उन्हें वहाँ कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर भी श्रीकृष्ण के पास पहुँचे। श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ गरुड़ पर सवार होकर तथा रथ में अपने पुत्र प्रद्युम्न को पीछे-२ आने को कहकर शीघ्रता से भानु के अन्तःपुर की ओर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि दुर्जय दैत्य निकुम्भ वज्रपुर में प्रवेश कर रहा है तभी श्रीकृष्ण व अर्जुन ने उस पर आक्रमण कर दिया। मायावी निकुम्भ अपने तीव्र रूप धारण करके तीनों रूप से ही युद्ध करने लगा। वह अपनी बायीं कांख में भानुमति को दबाये हुआ था। तथा बायें हाथ में कंटीली गदा लेकर श्रीकृष्ण, अर्जुन व प्रद्युम्न तीनों पर वार करने लगा।

चूँकि तीनों ही निकुम्भ के मारने में समर्थ होने पर भी भानुमति को चोट न पहुँचे। इसलिए दैत्य पर प्रहार नहीं कर रहे थे। अर्जुन ने अत्यन्त सावधानी से निकुम्भ पर बाण मारा। फिर श्रीकृष्ण व प्रद्युम्न ने भी मारा। निकुम्भ भानुमति के साथ अदृश्य हो गया। बहुत खोज करने पर वह हारित पक्षी का रूप धारण किये हुआ बैठा

दिखाई दिया । अर्जुन ने तत्क्षण ही मर्मभेदी वैतस्तिक बाणों से भानुमति को बचाते हुए चलाया । निकुम्भ चारों तरफ भागने लगा । अर्जुन, श्रीकृष्ण व प्रद्युम्न ने उसका पीछा किया । भागते-भागते दैत्य गोकर्ण पर्वत को पार ही कर रहा था कि वह भानुमति के साथ वेल गंगा के किनारे गिर पड़ा । क्योंकि गोकर्ण पर्वत पर भगवान् शंकर का निवास होने के कारण कोई भी देवता या दैत्य पर्वत को लांघने में समर्थ नहीं था । दैत्य के गिरते ही प्रद्युम्न ने उसके पास पहुँचकर भानुमति को छुड़ा लिया । श्रीकृष्ण व अर्जुन के भीषण बाणों की मार से निकुम्भ गोकर्ण पर्वत से दक्षिण की ओर भागा, श्रीकृष्ण व अर्जुन ने भी उसका पीछा किया । दैत्य षटपुर की गुफा में चला गया । रात्रि होने के कारण कृष्ण व अर्जुन गुफा के अन्दर नहीं गये । प्रद्युम्न श्रीकृष्ण की आज्ञा से भानुमति को लेकर द्वारिका आ गये । यहां भानुमति को कड़ी सुरक्षा में रख कर पुनः श्रीकृष्ण के पास प्रद्युम्न पहुँच गए ।

कुछ समय बाद युद्ध की इच्छा से निकुम्भ गुफा से बाहर निकला । अर्जुन ने उस पर बाणों की भीषण वर्षा की । निकुम्भ ने अर्जुन के सिर पर गदा मारकर मूर्छित कर दिया । उसके बाद निकुम्भ व श्रीकृष्ण में भीषण गदा युद्ध होने लगा । दोनों ही पैतरा बदल-बदल कर एक दूसरे

पर गम्भीर प्रहार करने की ताक में थे । निकुम्भ ने श्री कृष्ण के मस्तक पर गदा दे मारी । परन्तु कुछ देर तक श्रीकृष्ण निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । चारों तरफ हाहाकार मच गया । तत्क्षण ही इन्द्र ने उनके मुख पर आकाश गंगा का जल छिड़का । वह सचेष्ट हो गये ।

श्रीकृष्ण ने हाथ में चक्र धारण कर दैत्य को सावधान होने को कहा—दैत्य तो मूर्छित था परन्तु अपने इस शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण कर लिया । प्रद्युम्न व अर्जुन भी स्वच्छ होकर श्रीकृष्ण के पास आ गये । प्रद्युम्न ने ज्योंही कहा कि यह दैत्य बड़ा ही मायावी है कि तत्काल ही उसकी जमीन पर गिरी हुई देह लुप्त हो गई और दस हजार निकुम्भ का शरीर पृथ्वी व आकाश में चक्कर काटने लगे । श्रीकृष्ण अर्जुन व प्रद्युम्न के भी हजारों रूप चारों तरफ चक्कर काटने लगे ।

राक्षस निकुम्भ के शरीर में से किसी ने अर्जुन के धनुष, किसी ने बाण, किसी ने दो हाथ, किसी के दोनों पांव लेकर आकाश में उड़ गये । तभी साथ-साथ ही करोड़ों अर्जुन पैदा हो गये । श्रीकृष्ण व प्रद्युम्न ने निकुम्भ को खूब ढूँढ़ा । परन्तु कहीं पता नही चला । फिर इन लोगों ने निकुम्भ के शरीर के दो-दो टुकड़े कर दिये । ये टुकड़े भी निकुम्भ बनकर तैयार हो गये ।

तब श्रीकृष्ण ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि निकुम्भ अर्जुन का अपहरण किये जा रहा है। उसी वक्त श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा निकुम्भ के मस्तक के दो टुकड़े कर दिये। तब उस दैत्य ने अर्जुन को छोड़ दिया और कटे हुए वृक्ष की तरह आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा, प्रद्युम्न ने अर्जुन को बीच में ही आकाश मार्ग में पकड़ लिया जिससे अर्जुन को कोई चोट न आई। निकुम्भ को मारकर श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ द्वारिका आ गए।

रास्ते में नारद जी श्रीकृष्ण से मिले। वह बोले—यह कन्या पवित्र है। इसके साथ यह दुर्घटना महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण हुई थी। अब यह शाप से मुक्त हो गई है। इसका विवाह सहदेव से कर दो। वे धार्मिक सुशील व पाण्डु पुत्र भी हैं। यह उनके साथ महान् वैभव, सुख, पुत्र और सौभाग्य श्री को प्राप्त करेगी। अतएव नारद जी के परामर्श से श्रीकृष्ण ने भानुमति का विवाह पाण्डु पुत्र सहदेव से करा दिया।

—:०:—

वज्रनाभ को वरदान

वैशम्पायन जी ने वज्रनाभ के सम्बन्ध में जनमेजय को बताते हुए कहा—हे राजन ! एक बार वज्रनाभ

नामक राक्षस ने सुमेरु पर्वत की गुफा में तप करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया । फिर ब्रह्माजी से वह देवताओं द्वारा अवध्य होने, अत्यन्त सुन्दर वज्रपुर नामक नगर का निर्माण होने, सभी प्रकार के सुख-साधनों से युक्त नगर के चारों ओर उपनगरों एवं सैकड़ों सुन्दरतम उपवन सहित जिसमें कि बिना आज्ञा के वायु भी प्रवेश न कर सके का वर मांगा । ब्रह्माजी ने ऐसा ही हो कह दिया । उसकी सभी मनोकामनायें पूर्ण हो गईं । फिर वह आनन्द पूर्वक रहने लगा । उसके वज्रपुर में करोड़ों दैत्य भी आकर सुख पूर्वक रहने लगे ।

कुछ काल पश्चात् वज्रनाभ घमण्डी हो गया । जिससे वह विश्व में अत्याचार कर सभी को कष्ट पहुंचाने लगा । एक बार वह इन्द्र के पास गया । बोला—अब मैं तीनों लोकों पर राज्य करना चाहता हूं । अतः हे इन्द्र ! तुम इस सिंहासन का त्याग करो । वज्रनाभ के इस विचार को सुनकर इन्द्र चिन्ता में पड़ गये । फिर इन्द्र गुरु बृहस्पति से परामर्श कर वज्रनाभ से बोले हे भाई ! पिताजी (कश्यप ऋषि) इस समय यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं । उनके यज्ञ के पूर्ण हो जाने पर उनके आदेशानुसार सब निर्णय कर लिया जायेगा ।

चूंकि वज्रनाभ भी इन्द्र का ही भाई था । यानि

कश्यप ऋषि का पुत्र था । उसने स्वयं ऋषि के पास जाकर अपनी इच्छा उनसे प्रकट की । कश्यप जी बोले— बेटा ! अभी मैं यज्ञ के अनुष्ठान में बैठा हूँ । तब तक तुम वज्रपुर में आनन्द पूर्वक रहो । यज्ञ सम्पूर्ण होने के बाद विचार करके बताऊँगा । पिता की बात मान कर वज्रनाभ अपनी नगरी को चला गया ।

इन्द्र ने श्रीकृष्ण के पास आकर वज्रनाभ का हाल कह सुनाया । श्रीकृष्ण बोले—चिंता की कोई बात नहीं । वसुदेव जी अश्वमेध यज्ञ करने वाले हैं । उस यज्ञ के अवसर पर ही मैं उसे मार डालूँगा । ब्रह्माजी के वर की रक्षा करते हुए (कि बिना आज्ञा वायु भी उस नगरी में न घुसे) उसके पुर में प्रवेश करने का उपाय ढूँढ़ने लगे ।

वसुदेव जी का यज्ञ प्रारम्भ हो गया अब उनका यज्ञ निर्विघ्न समाप्ति पर ही था कि भद्र नामक एक नट ने वहाँ आकर अपना नृत्य दिखाया । जिससे ऋषि-मुनियों ने प्रसन्न होकर उसे वर मांगने को कहा । नट बोला—मेरी आकाश भ्रमण में अप्रतिम गति हो, स्थावर जंगम किसी भी प्राणी द्वारा न मर सकूँ, अपनी इच्छानुसार मरे हुए, जीवित अथवा भविष्य में आने वाले शरीर धारियों का रूप धारण करके जहाँ भी जाना चाहूँ चला जाऊँ । मैं वृद्धावस्था को प्राप्त न होऊँ और सभी ऋषि मुनिगण

सदा ही मुक्त पर प्रसन्न रहें । यह अभिलाषा है । ऋषियों ने एवमस्तु कहकर वरदान दे दिया ।

वह नट दैत्यों को पुरियों सहित सप्तद्वीप पृथ्वी पर चारों तरफ भ्रमण करने लगा । तथा यादवों की द्वारिका-पुरी में सभी पर्वों एवं उत्सवों में जाने लगा । इसी समय इन्द्र ने स्वर्ग लोक के सभी हंसों को बुलाकर कहा कि— तुम लोग सभी जगह जाने में समर्थ हो । इसलिए शत्रु को मारने हेतु एवं देवताओं के कार्य सम्पन्न करने हेतु मैं जो कहता हूँ वह करो । अन्यथा दण्ड के भागी बनोगे । वज्र-नाभ की एक सुन्दर व गुणवती प्रभावती नाम की कन्या है । उसका स्वयम्बर होने वाला है । जो पुरुष उसके मन में बैठ जायेगा । उसी के गले में वह माला डालेगी । अतः तुम लोग उसके सामने प्रद्युम्न के रूप सुन्दरता व गुणों का खूब बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करना । जिससे वह प्रद्युम्न के गले में वरमाला डाल दे । जब वह प्रद्युम्न के प्रति आकर्षित हो जाए तो फिर मुझे सूचना देना ।

—:०:—

प्रद्युम्न का वज्रपुर प्रस्थान एवं प्रभावती से विवाह

इन्द्र ने निर्देशानुसार सभी हंस वज्रपुर में पहुँच गये । उस स्थान से हंस पूर्व परिचित थे । वहाँ जाकर वे सुन्दर

तालाबों में निवास करने लगे । हंसों के मधुर कलरव से सभी वज्रपुर वासी प्रसन्न थे । वज्रनाभ ने हंसों से प्रेम प्रकट करते हुए कहा—हे श्रेष्ठ हंसों ! तुम लोग अपनी स्वतन्त्र इच्छा से स्वर्ग में रहते हो । परन्तु मेरे किसी पर्व या उत्सव में निश्चित ही उपस्थित होओ । इसे अपना घर समझकर कभी भी आने जाने के लिए स्वतन्त्र हो । हंसों ने 'आपकी जैसी आज्ञा' कहकर स्वीकृति दे दी । फिर अन्तःपुर में भी जाकर कलरव करने लगे । हंसों के कलरव से अन्तःपुर की स्त्रियाँ भी मोहित हो गई ।

वज्रनाभ की पुत्री हंसों पर मोहित ही नहीं हुई । बल्कि एक शुचिमुखी हंसनी को अपनी सहेली भी बना लिया । दोनों में स्नेहपूर्वक बातें होने लगीं । एक दिन हंसनी ने प्रभावती से कहा—हे सखी ! तुम्हारा रूप लावण्यता गुण व स्वभाव आदि तीनों लोकों की नारियों में अनुपम है । परन्तु तुम्हारी यौवनावस्था बीतती जा रही है । वही अवस्था तो है पुरुष के साथ सहवास करके आनन्द प्राप्ति की । देखो, जिस प्रकार आगे को गया पानी का प्रवाह वापस नहीं आता उसी प्रकार ढली हुई जवानी वापिस नहीं आती । तुम्हारे पिता ने तो तुम्हें स्वेच्छा पूर्वक पति चुनने का अधिकार दिया है । परन्तु तुमने दैत्यों या देवताओं में से किसी को भी पति रूप में पसन्द

नहीं किया । सभी को तुमसे तिरस्कृत होकर वापस लौटना पड़ा । यदि मेरी बात मानो तो मैं एक राजकुमार के विषय में बताती हूँ । जो रंग, रूप, यौवन, गुण, वंश और वीरता में उस पुरुष के समान संसार में कोई नहीं है । उसे जो भी स्त्री एक बार देख लेती है उससे एक बार संभोग की इच्छा से तरसने लगती है, वह रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न है तथा विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण उसके पिता हैं । वह अग्नि के समान तेजयुक्त, पृथ्वी के समान क्षमाशील, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र के समान गम्भीर तथा सभी गुणों की खान है । प्रद्युम्न निष्कपट स्वभाव से युक्त सभी मायाओं के विजय तथा महान पराक्रम वाले हैं । जिन्होंने अपनी बाल्यावस्था में ही अम्बासुर को मारा था । यदि तुम प्रद्युम्न को भी औरों की भाँति तिरस्कृत न कर दो । इस भय से उसे कैसे यहां लाया जाये ।

प्रभावती हंसनी से बोली—हे सखी ! मैं पिताजी व नारद जी की वार्ता सुन चुकी हूँ कि विष्णु पृथ्वी पर अवतार ले चके हैं । वह दैत्यों के प्रबल शत्रु हैं तो भला तुम्हीं बताओ विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न से मेरा विवाह कैसे सम्भव हो सकता है मैं तो दिलीजान से प्रद्युम्न को चाहती हूँ । आज से ही नहीं, इसके पहले से ही जब मैंने वृद्धों द्वारा उनके हाथ से अम्बासुर के वध

का वृत्तान्त सुना तभी से मैं आसक्त हूँ । हे सखी ! उनसे मिलने का तो हमें कोई उपाय नहीं सूझता । यदि तुम किसी तरह मेरे विषय में उन्हें संदेश दे दो तो तुम्हारी बड़ी कृपा होगी । हंसनी ने प्रभावती को धैर्य बंधाया । तथा प्रद्युम्न को संदेश देने का भी आश्वासन दिया । पुनः बोली—हे प्रभावती ! पहले तुम मेरे वाक्चातुर्य के विषय में बताओ । तुम्हारी मनोकामना अवश्य ही पूरी होगी ।

प्रभावती ने शीघ्र ही जाकर अपने पिता से हंसनी के वाक्चातुर्य को बतलाया । वज्रनाभ अपनी पुत्री द्वारा हंसनी की बड़ाई सुनकर हंसनी के पास आया और बोला, 'हे शुचिमुखी हंसनी' तुमने इस विश्व में यदि कोई शुभ अशुभ घटना देखी हो जो कि अभूतपूर्व व आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हो तो मुझसे कहो ।

हंसनी ने दैत्य से विनयपूर्वक शाण्डिली नाम की मनस्विनी के आश्चर्य जनक कार्यों को तथा ऋषियों द्वारा वर प्राप्त नट जो कि मनचाहा रूप धारण करने में समर्थ, सभी स्थानों पर जाने में समर्थ तथा नृत्य व अभिनय में पारंगत था के कार्यों के बारे में बताया वज्रनाभ ने कहा, 'उस नट के सम्बन्ध में मैं सुन चुका हूँ । अब उसे देखना चाहता हूँ । तुम कोई ऐसा उपाय करो कि नट से यहां आने के लिए कोई अनुनय विनय न करना पड़े । वह स्वयं

ही मेरे गुणों को सुनकर यहां आ जाए। हंसनी बोली, वह आपके गुणों को सुनकर निश्चय ही आयेगा। यह कहकर उसको लेने आने को कहा—दैत्य ने जाने के लिए हंसों को आदेश दे दिया।

हंस ने वज्रपुर से आकर सारा हाल स्वर्ग में इन्द्र व द्वारिका में श्रीकृष्ण को बताया। श्रीकृष्ण ने प्रभावती से विवाह करने और वज्रनाभ को मारने का सारा कार्य प्रद्युम्न पर सौंप दिया, तथा दिव्यसाया के द्वारा यादवों को नट वेष तथा स्त्रियों को नटी वेष में बनकर वज्रनाभपुर में जाने का आदेश दिया। नट मण्डली के नायक प्रद्युम्न हुए तथा साम्ब ने विदूषक का रूप बनाया। वे सभी नट वेश में सुसज्जित होकर यादव गण प्रद्युम्न के आदेश से रथ पर चढ़कर वज्रनाभपुर के उपनगर स्वपुर में पहुंच गये।

वज्रपुर के निवासी नटों के आगमन से अति प्रसन्न थे। वज्रनाभ के आदेश से नटों को ठहरने की व भोजन की उत्तम से उत्तम व्यवस्था की गई। नटों का नृत्य व अभिनय प्रारम्भ हुआ। अभिनय रामायण महाकाव्य पर आधारित रावण को मारने के लिए राम जन्म का दृश्य दिखाया जा रहा था। अभिनय की कुशलता व प्रस्तावना

आदि कार्य को देखकर दैत्य अति प्रसन्न हुआ । कोलाहल के साथ-२ तालियों की गड़गड़ाहट की गूंज चारों दिशाओं को कम्पित कर रही थी । अभिनेताओं को श्रेष्ठ रत्न, कंठ हार वैदूर्य आदि मणियों की माला आदि भेंट की । इसी मध्य शुचिमुखी हंसनी ने प्रभावती के पास जाकर सायंकाल में प्रद्युम्न के आने की सूचना दी । बोली—हे सुभगे ! आज तुम्हारा अपने प्रिय से मिलन अवश्य होगा । प्रभावती ने हंसनी से प्रद्युम्न से मिलने के समय भी उपस्थित रहने के लिए निवेदन किया ।

सायंकाल में प्रद्युम्न फूल की माला में भौंरे रूप में ही आ गये । तथा प्रभावती के समक्ष प्रकट रूप में हो गये । प्रद्युम्न के रूप की आभा से सम्पूर्ण महल ही प्रकाणित हो गया । प्रद्युम्न के प्रति प्रभावती के हृदय में अगाध प्रेम उमड़ पड़ा । प्रद्युम्न ने प्रभावती के मुख को ऊपर उठाते हुए कहा—हे सुमुखी ! जब मैं यहाँ उपस्थित हूँ तो तुम किसी भी प्रकार का भय न करो । क्योंकि मैं तुम्हें थोड़ा भी भयभीत देखना नहीं चाहता । अब तुम भय को त्यागकर मुझसे गन्धर्व विवाह कर लो । फिर मन्त्रोच्चारण करते हुए मणि में स्थित अग्नि का स्पर्श कर आहुति देकर पाणि ग्रहण अग्नि की परिक्रमा करने लगे । ब्राह्मणों के लिए दक्षिणा का संकल्प करके हंसनी को

दरवाजे पर पहरेदारी पर नियुक्त कर दिया और अन्दर प्रभावती के साथ सुहागरात मनाने लगे ।

दैत्यराज वज्रनाभ के भाई सुनाम की दो पुत्रियाँ चन्द्रावती व गुणवती नाम की थीं । ये दोनों बहनें जब प्रभावती के भवन में आईं, तो प्रभावती को एक पुरुष के साथ संभोग करते हुए देखा । तथा परिहास करने लगीं । प्रभावती बोली—मुझे एक विद्या आती है । इस विद्या के प्रभाव से देवता, दैत्य या किसी अन्य मनचाहे युवक को पति रूप में मान कर बुलाने पर वह आ जाता है । प्रमाण स्वरूप इनको (प्रद्युम्न को) देख लो । यदि तुम लोग भी चाहो तो इस विद्या को सीखकर मना चाहा पति प्राप्त कर लो । दोनों बहनों ने भी प्रभावती से उस विद्या को सीख लिया । प्रद्युम्न से परामर्श कर प्रभावती ने दोनों बहनों से गद व साम्ब का ध्यान करने को कहा । दोनों बहनों ने ऐसा ही किया । गद व साम्ब भी शीघ्र ही वहां उपस्थित हो गये । मन्त्रोच्चार पूर्वक गद ने चन्द्रावती से साम्ब ने गुणवती से शादी भी कर ली । अब चन्द्रावती व गुणवती भी पति सुख का आनन्द लेने लगीं । प्रद्युम्न आदि इन्द्र व श्रीकृष्ण के अगले आदेश की प्रतीक्षा तक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे ।

—:०:—

श्रीकृष्ण का वज्रनाभपुर को प्रस्थान

प्रातःकाल होते ही भगवान श्रीकृष्ण गरुड़ पर सवार होकर वज्रनाभपुर को चल दिए । आकाशमार्ग में इन्द्र से भेंट की । वहां उन्होंने पाञ्चजन्य नामक शंख को बजाया । शंख को बजते ही प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के सामने उपस्थित हो गए । श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से शीघ्र ही वज्रनाभ को मारने का आदेश दिया । पिता का आदेश मिलते ही प्रद्युम्न श्रीकृष्ण व इन्द्र को नमस्कार कर गरुड़ पर सवार होकर दैत्य वज्रनाभ के सामने पहुंच गए और उसके हृदय पर गदा से भीषण आघात किया । जिससे दैत्य रुधिर का वमन करते हुए मूर्छित हो गया । जब उसे होश आया । तब उसने भी भीषण क्रोध कर अपनी कांटे युक्त गदा से प्रद्युम्न को बुरी तरह घायल कर दिया । प्रद्युम्न भी रुधिर का वमन करते हुए मूर्छित हो गए ।

प्रद्युम्न की इस दशा को देखकर श्रीकृष्ण ने पुनः अपने पाञ्चजन्य शंख को बजाया । जिससे प्रद्युम्न की चेतना वापस आ गई । दानव वंश का संहारक सुदर्शन चक्र प्रद्युम्न के हाथ में आ गया । तत्क्षण ही प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण व इन्द्र को प्रणाम कर वज्रनाभ पर चक्र से प्रहार कर दिया । देखते ही देखते दैत्य वज्रनाभ का सिर टुकड़े-

टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। भवनों के छत से प्रहार करते हुए वज्रनाभ के भाई रणदत्त व सुनाम दैत्य को गद ने तीखे बाणों से धराशायी कर दिया। तथा साम्ब ने रणक्षेत्र में उपस्थित शेष दानवों को मार डाला।

वज्रनाभ की मृत्यु का संवाद सुनते ही निकुम्भ नामक दैत्य षटपुर को भाग गया। फिर वहां श्रीकृष्ण व इन्द्र ने प्रकट होकर दानव बालकों व वृद्धों को भय मुक्त किया। फिर वज्रपुर को चार भागों में बांट कर एक खण्ड इन्द्र के पुत्र जयन्त को, दूसरा खण्ड प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को, तीसरा खण्ड साम्ब के पुत्र को और खण्ड गद के पुत्र चन्द्रप्रभा को दे दिया। तथा सभी रत्न-उपरत्नों आदि के खजाने नाना प्रकार के वस्त्रों आदि को भी चार भागों में बांटकर चारों को दे दिया।

—:०:—

शंकरासुर द्वारा प्रद्युम्न का अपहरण एवं प्रद्युम्न द्वारा शंकरासुर का वध

प्रद्युम्न श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वे कामदेव के अवतार थे तथा पूर्वकाल में सनत्कुमार नाम से प्रसिद्ध थे। प्रद्युम्न के जन्म के सातवें दिन ही आधी रात को सूतिका गृह से शंकरासुर नामक

राक्षस अपहरण कर ले गया। शम्बरासुर की पत्नी मायावती थी। उसकी कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये वह सदा दुखी रहती थी। शम्बरासुर ने मायावती की गोद में प्रद्युम्न को डाल दिया मायावती बच्चे से प्रसन्न होकर पूर्व जन्म का स्मरण करने लगी। उसे याद आया कि यह बच्चा उसका पूर्व जन्म का पति ही है, जिसकी प्राप्ति से वे देहरहित हो गये थे।

मायावती सोचने लगी कि मैं इस बच्चे को कैसे स्तन पान कराऊँ तथा कैसे पुत्र कहूँ क्योंकि वह मेरा पूर्व जन्म का पति है। अतएव उसने बच्चे की देख-भाल के लिए एक धाय की व्यवस्था कर दी। प्रद्युम्न दिन दूना रात चौगुना वृद्धि को पाने लगे। धाय के कहने पर प्रद्युम्न मायावती को अपनी माता समझते थे। परन्तु मायावती प्रद्युम्न के बड़े होने पर उन पर कामासक्त होकर उनके सामने काम-मुद्रायें दिखाने लगी। प्रद्युम्न को मायावती के दिल के भाव को समझते देर न लगी। वे बोले—हे देवी ! तुम माता होते हुए इस प्रकार के नीच भाव क्यों दिखा रही हो। जान पड़ता है तुम दुष्ट एवं चंचल मन वाली हो। मां होते हुए तुम ऐसा क्यों करती हो।

मायावती प्रद्युम्न को एकान्त में ले जाकर बोली—न मैं तुम्हारी माता हूँ न शम्बरासुर ही तुम्हारा पिता है।

तुम तो यदुवंश में श्रीकृष्ण के द्वारा रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए हो । यह असुर ही तुम्हें अपहरण करके लाया था । इस बात का श्रीकृष्ण को अभी तक पता नहीं है । दैत्यों में तुम्हारे जैसा सुन्दर पुत्र उत्पन्न नहीं होता । मैं तुम्हारी मां न होने के कारण ही तुम्हारे ऊपर कामासक्त हूँ । अब मैंने सारा भेद बता दिया । अब तुम मेरी कामना पूर्ण करो ।

यह सारा भेद जानते ही प्रद्युम्न क्रोध से लाल-लाल आँखें करके शंबरासुर के पास गये और उस पर आक्रमण कर दिया । दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया । काफी देर तक युद्ध होने के बाद प्रद्युम्न ने शंबरासुर के दस पुत्रों को मार, भाले से चित्रसेन का भी सिर काट दिया । फिर अन्य दानवों ने भी प्रद्युम्न पर विभिन्न अस्त्रों से प्रहार किया । तब भीषण क्रोध किये प्रद्युम्न ने शंबरासुर के सौ और पुत्रों को मार दिया । जिससे शंबरासुर अत्यन्त क्रोधित हो गया । और अपने रथ पर सवार होकर प्रद्युम्न का वध करने की इच्छा से उनके सामने रणक्षेत्र में उपस्थित होकर प्रहार करने लगा । प्रद्युम्न ने अपने बाणों से दैत्य व उसके रथ को ढक दिया । चारों दिशाओं में अन्धकार हो गया । तब शंबरासुर ने वैद्युतरास्त्र से अन्धकार को नष्ट कर दिया । तथा अन्य बाणों की वर्षा

से प्रद्युम्न को ढक दिया। परन्तु प्रद्युम्न ने दैत्य के सभी बाणों को आनर्तपर्व नामक बाणों से काट दिया। फिर दैत्य ने माया से वृक्षों की वर्षा की, परन्तु प्रद्युम्न ने आग्नेयास्त्र से वृक्षों को जलाकर भस्म कर दिया। पुनः दैत्य के पत्थरों की वर्षा को प्रद्युम्न ने वायव्यास्त्र से नष्ट कर दिया। दैत्य ने पुनः माया से प्रद्युम्न के रथ पर बाघ, सिंह, रीछ, बन्दर, हाथी आदि अनेकों जानवरों की वर्षा करने लगा। उसे भी प्रद्युम्न ने गन्धर्वास्त्र से नष्ट कर दिया। इस प्रकार दैत्य ने अनेकों प्रकार की माया कर प्रद्युम्न को मारना चाहा, परन्तु प्रद्युम्न ने सभी दानवी माया को नष्ट कर दिया। अब शंबरसुर को अति ही पछतावा हो रहा था, कि मैंने इसे बचपन में ही क्यों नहीं मार दिया।

शंबरसुर प्रद्युम्न के वध का कोई मार्ग शेष न देख कर शंकर द्वारा प्राप्त पन्नगी माया रचकर सर्पों से प्रद्युम्न के रथ व घोड़ों को बांध दिया। तब इन्होंने सौपर्णी माया से असंख्य गरुड़ों को उत्पन्न कर सर्पों को नष्ट कर दिया। दैत्य ने पार्वती द्वारा प्राप्त स्वर्ण मुद्गर से प्रद्युम्न पर प्रहार करने का विचार किया।

नारदजी को अभेद्य कवच व वैष्णवास्त्र देकर इन्द्र ने प्रद्युम्न को देने हेतु भेजा। नारदजी ने प्रद्युम्न के घर

पहुँचकर आकाश से ही प्रद्युम्न के पूर्व जन्म के सारे वृत्तान्त को सुनाया । बोले—मायावती तुम्हारी पूर्व जन्म की पत्नी है । जो अब भी तुम्हें चाहती है । अतः अब तुम निःसंकोच शंबरसुर को मार कर मायावती के साथ द्वारका को चले जाओ । देवराज इन्द्र ने तुम्हारे लिए यह महा तेजस्वी कवच व वैष्णवास्त्र को भेजा है इसे ग्रहण करो । दैत्य के पास पार्वती जी द्वारा प्रदत्त जो मुग्धर है उसे असफल करने में देवता, दैत्य या मनुष्य कोई भी समर्थ नहीं है । इसलिए सफलता पाने के लिए पहले तुम पार्वती जी की स्तुति कर प्रसन्न करो, फिर युद्ध में मन से लग जाओ । कहकर नारद जी चले गये ।

इधर शंबरसुर गदा के साथ रणक्षेत्र में आया । जिससे पृथ्वी व पर्वत कांपने लगे, उल्कापात होने लगा । रक्त की वर्षा होने लगी, समुद्र व नदियों का प्रवाह पलट गया । इस प्रकार नाना प्रकार के उपद्रव होने लगे, उधर प्रद्युम्न रथ से उतर कर मां भगवती पार्वती की स्तुति निम्न प्रकार करने लगे ।

एवं दृष्ट्वा महोत्पातान्प्रद्युम्नः स त्वरान्वितः ।

अवतीर्य रथाद्वीरः कृताञ्जलिपुटः स्थितः । १।

देवी सस्भार मनसा पार्वती शंकर प्रियास् ।

प्रणम्य शिरसा देवी स्तोत्रं समुपचक्रमे । २।

“ॐ नमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नमः ।
 नमः त्रैलोक्यमायायै कात्यायन्यै नमो नमः । ३।
 नमः शत्रु विनाशित्यै नमो गौर्यैशिवप्रिये ।
 गमस्ये शुभमथनीं निशुभमथनीमपि । ४।
 कालरात्रि नमस्तुभ्यं कौमार्यं च नमो नमः ।
 कान्तारवासिनीं देवीं नमस्यामि कृताञ्जलिः । ५।
 विन्ध्यवासिनी दुर्गघ्ना रणदुर्गा रणप्रियाम् ।
 नमस्यामि महादेवी जयां च विजयां तथा । ६।
 अपराजितां नमस्येऽहमजितां शत्रुनाशिनीम् ।
 घण्टाहस्तां नमस्यामि घण्टमावाकुलां तथा । ७।
 त्रिशुलिनीं नमस्यामि महिषासुर धातिनीम् ।
 सिंहावना नमस्यामि सिंहप्रवरकेतनाम् । ८।
 एकानंशां नमस्यामि गायत्री यज्ञसत्कृताम् ।
 सावित्रीं चापि विप्राहणां नमस्येऽहंकृताञ्जलिः । ९।
 रक्षा मां देवी सततं संग्रामे विजयं कुरु ।
 इति कामवचस्तुष्टा दुर्गा संप्रीत मानसा । १०।

अर्थात् रणक्षेत्र में प्रद्युम्न अशुभ लक्षणों को देखकर
 प्रद्युम्न शीघ्र ही रथ से उतर कर भगवती पार्वती जी
 का स्मरण करने लगे । हे भगवती—हे कात्यायनी ! हे

कार्तिकेयजननी! आप तीनों लोकों की माया को नमस्कार है। हे मातेश्वरी! आप शत्रुओं का नाश करने वाली गौरी शिववल्लभा और शुम्भ-निशुम्भ को मर्दन करने वाली हैं। आपको नमस्कार है। आप कालरात्रि को नमस्कार है। आप ही कौमारी एवं कांतारवासिनी हैं, मैं आपको करबद्ध प्रणाम करता हूँ। हे माता! आप विन्ध्य पर्वत पर निवास करती हैं, आप दैत्यों के दुर्गों को तोड़ने वाली रणदुर्गा एवं रणपिता हैं आप ही जया और विजया हैं, हे महादेवी! ऐसी आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। आप कभी पराजित न होने वाली अजिता तथा शत्रुओं का नाश करने वाली हैं, आप घण्टा हस्ता और घण्टामाला को नमस्कार है। आप ही महिषासुर को मारने वाली त्रिशूलिनी हैं, आप ही सिंहवाहिनी तथा सिंह ध्वज वाली हैं, मेरा आपको नमस्कार है, आप एकानंशा को नमस्कार है, आप यज्ञों द्वारा सत्कृत गायत्री रूपिणी ब्राह्मणों की सावित्री को मेरा हाथ जोड़कर प्रणाम है। हे देवी! युद्ध भूमि में मेरी रक्षा करती हुई मुझे विजय प्रदान करें।

प्रद्युम्न की स्तुति से पार्वती जी ने प्रसन्न होकर प्रकट होकर वर माँगने के लिए कहा। प्रद्युम्न बोला—हे नां यदि आप प्रसन्न हों तो मैं इस युद्ध में विजय प्राप्त करना चाहता हूँ। अतएव आपके द्वारा शंकरासुर को जो

गदा प्राप्त हुआ है। वह मेरे शरीर से स्पर्श होते ही पद्ममाला बन जाए और मैं शत्रु का नाश कर दूँ। आप मेरी मनोकामना को पूर्ण करें। पार्वती एवमस्तु कहकर अन्तर्धान हो गई।

शंकरासुर ने प्रद्युम्न पर गदा का प्रहार किया। गदा प्रद्युम्न के वक्ष से स्पर्श करते ही पद्म की माला बन गयी। दैत्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर बिना देर किए ही प्रद्युम्न ने नारद जी द्वारा प्रदत्त वैष्णवास्त्र को धनुष पर चढ़ाकर दैत्य शंकरासुर का वध कर डाला। दैत्य की देह में साँस, हड्डी, चर्म रुधिर आदि सब जलकर भस्म हो गया। इससे देवता गन्धर्व व किन्नर गण प्रसन्न होकर आकाश मार्ग से फूलों की वर्षा करते हुए सधुर बाजों के साथ विजयगान करने लगे। तथा सभी भयमुक्त हो गए।

—:०:—

प्रद्युम्न द्वारा मायावती को द्वारिका लाना

मायावी दैत्य शंकरासुर को मारने के बाद प्रद्युम्न मायावती के साथ आकाश मार्ग से द्वारिका श्रीकृष्ण के अन्तःपुर में आये। वहाँ श्रीकृष्ण की पत्नियाँ यहाँ तक कि प्रद्युम्न की माँ रुक्मिणी भी नहीं पहचान रही थीं। सभी

प्रसन्नता भय एवं आश्चर्य से मिश्रित होकर मायावी स्वरूपा रति के सहित कामदेव तुल्य प्रद्युम्न का रूप, रस, पान करती हुई देख रही थी। प्रद्युम्न अत्यन्त ही शर्मिले नम्र एवं संकोच युक्त श्रीकृष्ण के ही समान लग रहे थे। अन्तर था तो सिर्फ मात्र यह कि प्रद्युम्न के शरीर पर चक्र के निशान नहीं थे।

रुक्मिणी अपनी सहेलियों से कहने लगी। आज रात को मैंने स्वप्न देखा कि भगवान ने चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल मोतियों की माला मेरे गले में डाल दी। फिर श्यामवर्ण की सुन्दर लावण्यमयी व केश वाली एक स्त्री हाथ में पद्ममाला लिये भवन में आई। उसके बाद मुझे पवित्र शीतल व स्वच्छ जल से स्नान करा कर मेरे माथे को सुंघ कर पद्ममाला पहना दी। तथा प्रद्युम्न से रुक्मिणी बोली—हे पुत्र ! तुम किस भाग्यशाली मां के पुत्र हो तथा यहां अपनी पत्नी को क्यों लाये हो। यदि मेरा भी बेटा आज जिन्दा रहता तो वह भी आज तुम्हारे जैसा ही होता। फिर भी श्रीकृष्ण, के रंग रूप से मेल होने के कारण तुम यदुवंशी ही जान पड़ते हो।

भगवान श्रीकृष्ण ने नारद जी से प्रद्युम्न द्वारा शंकरा-के मारे जाने का समाचार सुना। जिससे श्रीकृष्ण शीघ्र ही अन्तःपुर में आ गए। वहां कामदेव व रति के

तुल्य सुन्दर नौजवान प्रद्युम्न व मायावती को खड़े देखकर रुक्मिणी से बोले—हे देवी ! यह धनुषधारी पुत्र तुम्हारा ही पुत्र है जो कि जन्म के सात दिन बाद ही खो गया था । यह स्त्री इसकी पत्नी है । इसने घोर मायावी शंबरासुर को मारकर देवताओं के कष्ट को दूर किया है । ये वास्तव में कामदेव व रति हैं जो कि भगवान् शंकर के शाप से भस्म होकर अलग-अलग हो गए थे । यह स्त्री तुम्हारी पुत्र वधू है । अब इस पुत्र व पुत्रवधू को घर ले चलो । तब रुक्मिणी जन्म से खोए अपने पुत्र व साथ में अपनी पुत्रवधू को प्राप्त कर बड़ी प्रसन्न हुई और उन्हें अपने कमरे के अन्दर ले गई ।

—:०:—

बाणासुर

एक बार शिवजी के पुत्र कार्तिकेय जी को खेलते हुए बाणासुर ने देखा । वह इनकी सुन्दर शारीरिक गठन पर मोहित हो गया । अतः वह स्वयं भी शिवजी का पुत्र होने का विचार कर कठिन तपस्या करने लगा । बाणासुर के कठिन तप से शिव-पार्वती ने प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा । बाणासुर बोला—हे भगवन ! मैं आपका व भगवती

पार्वती का पुत्र होने की कामना करता हूं। शिव-पार्वती ने एवमस्तु कहते हुए बाणासुर को अपना छोटा पुत्र मान लिया।

बाणासुर ने कहा—मैं कार्तिकेय जी का जन्म स्थान शोणितपुर को किसी प्रकार के आक्रमण से बचाने के लिये रक्षक का कार्य करूंगा। बाणासुर शोणितपुर में राज्य करने लगा। जिससे देवता लोग घबड़ा गए। बाणासुर अब देवताओं से युद्ध करने का बहाना खोजने लगा। कार्तिकेय ने उसे अग्नि के समान तेजयुक्त ध्वज एवं तेजस्वी मोर दिया। बाणासुर को बहुत घमण्ड हो गया। क्योंकि वह शिवजी से रक्षित होने के कारण सभी देवताओं, गन्धर्व यक्ष आदि सभी को परास्त करने में समर्थ था। इसलिए उसकी बड़ी से बड़ी शरारत को भी देवता लोग चुपचाप सहनकर लेते थे एक दिन बाणासुर ने शिवजी से पूछा—हे देव ! मेरी बाहें युद्ध हेतु फड़क रही हैं। परन्तु कोई मुझसे युद्ध के लिए तैयार नहीं होता। अब कब युद्ध होगा। भगवान् शंकर ने कहा—जब यह ध्वजा टूट कर गिर जायेगी। तभी अनायास ही तुम्हारे स्थान पर ही युद्ध का बहाना मिल जायेगा। बाणासुर शिवजी के चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को चला गया।

बाणासुर की पुत्री उषा की कथा

एक बार शिवजी अपनी प्रियतमा पार्वती के साथ नदी के किनारे घूम रहे थे कि वहाँ सैकड़ों गन्धर्व एवं अप्सरायें स्वर्गलोक से आकर वेणु, बीणा मृदंग एवं प्रणव आदि वाद्यमन्त्रों की ताल पर नृत्य व संगीत करके शिव-पार्वती को प्रसन्न करने लगीं । शिव पार्वती संगीत व नृत्य के रस पान में विभोर हो रहे थे । सभी सूत, मागध एवं बन्दीजन स्तुतियाँ करने लगे । तभी चित्रलेखा नामक अप्सरा पार्वती जी का रूप धारण कर शिवजी को प्रसन्न करने लगी । तभी पार्वती जी हंस पड़ीं । फिर सभी गणों ने भी शिवजी का रूप धारण कर लिया । इससे पार्वती व अप्सरायें खिलखिला पड़ीं तथा शिवजी भी हंस पड़े ।

जब शिव-पार्वती अप्सराओं के नृत्य संगीत में तल्लीन थे । तभी बाणासुर की पुत्री उषा आई और पार्वतीजी के पास आकर मन ही मन सोचने लगी कि वह स्त्री धन्य है जो अपने पति के साथ क्रीड़ा करती है । उमा भगवती उषा के मन के भाव को जान गई और बोली—हे उषे ! जैसे मैं भगवान् शंकर के साथ क्रीड़ा करती हूँ । वैसे ही तुम भी शीघ्र ही अपने योग्य पति को प्राप्त कर आनन्द का उपभोग करोगी । उषा पार्वती जी को देखती हुई पुनः

मन में विचार करने लगी कि मेरी मनोकामना कब तक पूर्ण होगी । पार्वती जी पुनः उषा के मनोभाव को जानकर बोलीं । तुम्हारी मनोकामना बैशाख मास की द्वादशी तिथि की रात्रि को पूर्ण होगी । तुम जिस पुरुष की कल्पना करोगी वही तुम्हारा पति होगा । फिर उषा प्रसन्न होकर क्रीड़ा करने लगी ।

उषा जब बैशाख मास की द्वादशी को रात्रि में सो रही थी । तभी उसने स्वप्न में ही एक पुरुष के साथ अपने को सम्भोग करते देखा । इस प्रकार स्वप्न में पुरुष का संयोग होने से वह चीत्कार कर उठ पड़ी । एवं भयभीत होकर रोने लगी । तभी उषा की सहेलियां भी जाग कर वहां एकत्र हो गईं और उससे रोने तथा भय का कारण पूछा । उषा अपने स्वप्न में पुरुष संभोग का सारा वृत्तान्त सुनाकर फूट-र कर रोने लगी कि मेरे पिता के पवित्र कुल पर कलंक लग गया । अब मेरा जीवित रहना व्यर्थ है ।

उषा की सखियां समझाने लगीं कि यदि स्वप्न में इस प्रकार का संयोग हो ही गया तो उससे धर्म नष्ट नहीं होता । जो स्त्री मन कर्म वचन से पाप करती है वह पापिनी कुलटा स्त्री होती है । परन्तु तुम्हारा मन कर्म वचन तो पवित्र है । तुम सती साध्वी की तरह जीवन व्यतीत करती हो । तुम्हारे पिता बाणासुर तो तीनों लोकों

में पराक्रमी हैं । उनके सामने कोई भी नहीं टिक सकता । यहां तक कि इन्द्र को भी उनसे अनेक बार परास्त होना पड़ा । अतः इस नगरी में तुम्हारे पास देवता, दैत्य, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व व मनुष्यों में से किसी को आने का साहस नहीं है । इसलिए तुम्हें भय का परित्याग करना चाहिये । तुमने किसी भी प्रकार से अपने पिता के कुल को लांछित नहीं किया है । इसलिए रुदन त्याग करना चाहिये ।

सखियों के बार-बार समझाने पर भी जब उषा का क्लेश नहीं मिटा । तब सखियां पुनः समझाती हुई बोलों, 'हे सखी ! याद करो । तुम्हें मां भगवती पार्वती जी ने बैशाख के द्वादसी के दिन ही इच्छित पति के संयोग होने का वर दिया था । अब तुम्हें उनके वर को याद कर शोक का त्याग करना चाहिये । तुम सौभाग्यवती हो तुम्हारा जो पति होगा वह तुम्हारे पिता से भी कई गुना अधिक शक्तिशाली होगा । तभी वह स्वप्न में तुम्हारे पास आ सकता है । अब तुम उस पति का पता लगाओ । उषा सखियों से बोली—इस बारे में मैं कुछ भी उपाय नहीं कर सकती । इसलिये तुम्हीं लोग कोई उपाय करो । सखियां बोलों—हम लोगों ने तुम्हारे द्वारा स्वप्न में देखे गए पुरुष के रंग रूप व गुण आदि के सम्बन्ध में जाना नहीं है । इस

लिये हम लोगों को पता लगाना कठिन है । हां चित्रलेखा नाम की एक अप्सरा है । उसे बुलाओ वह पता कर सकती है ।

सखियों के परामर्श पर चित्रलेखा का ध्यान किया । चित्रलेखा स्वर्गलोक से आ गई । उषा ने अपना स्वप्न का हाल सुनाते हुए अपने इच्छित पति का पता लगाने के लिए चित्रलेखा से निवेदन किया । चित्रलेखा बोली—मैं तुम्हारे इच्छित पति के रंग रूप व गुण कर्मों के विषय में कुछ भी नहीं जानती इसलिये पता लगाना कठिन है । फिर भी एक उपाय है । मैं दैत्यों, देवों, यक्षों, किन्नरों गन्धर्वों एवं मनुष्यों में जो श्रेष्ठ व पराक्रमी है । उन सब का चित्र एक सप्ताह में बनाकर लाती हूं । उसमें से जो तुम्हारा स्वप्न में देखा गया पुरुष होगा । उसके वंश आदि का पता लग जायेगा । एक सप्ताह में सभी का चित्र बनाकर चित्रलेखा ले आई । सभी सखियों के सामने वह चित्र उषा को दिखाये । उसमें एक चित्र को उषा ने स्वप्न में देखे गये पुरुष को बताया । सभी ने उषा को धन्य-धन्य व सौभाग्यवती कहा । चित्रलेखा बोली—हे उषा ! यह चित्र भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का है । इनके पिता का नाम प्रद्युम्न है । तीनों लोकों में इनके समान कोई अन्य

वीर योद्धा नहीं है । तुम अवश्य ही कृतकृत्य हो गई । तुम्हें भगवती मां ने श्रेष्ठ पति प्राप्त कराया है ।

उषा बोली—हे चित्रलेखा ! तुम्हारा उपकार मैं कभी भुला नहीं सकती । तुम इच्छित रूप धारण करने वाली, योग विद्या में निपुण आकाशचारी एवं उपाय करने में चालाक हो । अतएव तुम्हीं मुझे अपने प्रियतम से मिलवाने का उपाय करो । चित्रलेखा उषा की प्रार्थना पर उसके पति से मिलवाने हेतु शोणितपुर से द्वारिका को प्रस्थान कर गई ।

—:०:—

अनिरुद्ध बाणासुर-वध

चित्रलेखा अनिरुद्ध को उषा के पास लिवा लेने के लिए द्वारिका पहुँच तो गई । परन्तु वह दुविधा में पड़ गई कि भगवान् श्रीकृष्ण की सहमति के बिना अनिरुद्ध को कैसे ले आऊँ । यदि बिना उनकी जानकारी के ले गई तो कहीं ऐसा न हो कि श्रीकृष्ण पौत्र शोक में मुझे शाप देकर भस्म कर डालें । इसलिये इस कार्य को कैसे किया जाये । यह विचार करने लगी कि एक तालाब के किनारे नारद जी को बैठा देखा । वहाँ चित्रलेखा ने अपने आने का

कारण बताया और बोली कि वहां बाणासुर से अनिरुद्ध का युद्ध होना अवश्यम्भावी है। जिसमें बाणासुर को अनिरुद्ध से परास्त होना संभव नहीं है। अतः अन्त में श्री कृष्ण को उसे हराना पड़ेगा।

इसलिये हे देवर्षि ! आप कोई ऐसा उपाय बतायें कि भगवान् श्रीकृष्ण की जानकारी में मैं अनिरुद्ध को लिवा जाऊँ। तथा मेरे दिल में किसी प्रकार का भय भी नहीं रहे।

नारद जी बोले—हे अप्सरे ! तुम अनिरुद्ध को भय मुक्त होकर बाणासुर की पुत्री के पास ले जाओ। जब युद्ध होने लगे तो मुझे स्मरण करना। मुझे युद्ध देखकर बड़ा ही आनन्द होता है। मुझसे यह तामसी विद्या ग्रहण करो, इससे तुम अपने कार्य में सफल होवोगी। चित्रलेखा नारद जी से तामसी विद्या ग्रहण कर आकाशमार्ग में उड़ गई और द्वारिकापुरी में अनिरुद्ध के महल में प्रवेश कर गई। वहां अनिरुद्ध अनेकों सुन्दरियों के मध्य बैठे रूप रस का पान कर रहे थे। चित्रलेखा अप्रकट रूप में भवन के छत पर बैठ गई तथा नारद जो द्वारा प्रदत्त तामसी विद्या से सभी सुन्दरियों को मोहित कर दिया। केवल अनिरुद्ध ही चैतन्य रहे। वह अनिरुद्ध से बोली हे यदुनन्दन वीर ! सुनो, आप कुशल तो हैं। आप तो दिन-रात सुख पूर्वक

रहते हैं। इस समय मैं जो कुछ भी कह रही हूँ। उसे ध्यान पूर्वक सुनो। शोणितपुर के राजा बाणासुर की पुत्री उषा है। उसने आपको स्वप्न में पति के रूप में देखा था। तभी से वह आप पर आसक्त है। उसे आपको प्राप्त किये बिना जीवित रह पाना कठिन है। वैसे तो आपकी सेवा में हजारों स्त्रियाँ रत हैं परन्तु उषा आपको तन मन व कर्म से अपना मान चुकी है। अतएव आपको उससे पाणिग्रहण अवश्य कर लेना चाहिये। माँ उमा के द्वारा वरदान प्राप्त करके ही वह आपके प्रति दिलोजान से आशान्वित है। आप मेरी सखी पर दया कर उसकी मनोकामना को पूर्ण कीजिये।

अनिरुद्ध ने भी उषा को स्वप्न में देखा ही नहीं अपितु सहवास भी किया था। तभी से वे उसकी रूप लावण्यता पर मुग्ध होकर उससे मिलने के लिये बेचैन थे। जिसका वर्णन चित्रलेखा को सुनाया एवं शीघ्र ही उसके पास लिवा चलने के लिये निवेदन किया।

अनिरुद्ध के हृदय में उषा से मिलने की उत्कट इच्छा व निवेदन को सुनकर चित्रलेखा प्रसन्न हुई और शीघ्र ही वहाँ उपस्थित सुन्दरियों के मध्य से अनिरुद्ध का अपहरण कर लिया। तथा आकाशमार्ग से अनिरुद्ध को साथ में लेकर शोणितपुर को चल दी। एवं अपनी माया के

प्रभाव से अनिरुद्ध को अदृश्य रखती हुई उषा के पास पहुँच गई। उषा ने अनिरुद्ध को दिव्य शस्त्रास्त्रों से युक्त देखकर आश्चर्यमय भाव से युक्त प्रसन्नता प्रकट की। चित्रलेखा को हृदय से लगा लिया। उषा अपने प्रियतम को एकान्त व सुरक्षित स्थान में ले तो गई, किन्तु फिर भी भयभीत थी। उषा व अनिरुद्ध दोनों ने ही माँ भगवती पार्वती को शुक्रिया अदा करते हुए एक दूसरे की कुशलक्षेम पूछी। फिर गन्धर्व विवाह कर लिया। दोनों ने ही पति-पत्नी के सहवास का आनन्द लेते हुए कुछ दिन व्यतीत किये कि अनिरुद्ध का उषा के पास होने का भेद अन्तःपुर के किसी राक्षस को ज्ञात हो गया। उसने शीघ्र ही इसकी सूचना दैत्यराज बाणासुर को दी। दैत्यराज ने अपने सैनिकों को शीघ्र उसे (अनिरुद्ध) पकड़कर वध कर देने का आदेश दिया।

उषा सैनिकों को शस्त्रों से सुसज्जित अपने भवन की ओर आते देखकर घबड़ा गई। तथा व्याकुल होकर रोने लगी। अनिरुद्ध ने उषा को समझाया। हे सुभगे ! रोओ और घबड़ाओ नहीं। यह रोने का समय नहीं है। यह खुशी मनाने का है। यदि तुम्हारा पिता बाणासुर अपनी पूरी सेना भी भेज दे तो भी हमें कोई परवाह नहीं। अब तुम मेरे बल पराक्रम को देखो। कहकर अनिरुद्ध सेना

के सामने युद्ध के लिए तैयार होकर खड़े हो गये । तभी चित्रलेखा ने नारद जी का ध्यान किया । वहाँ नारद जी शीघ्र ही उपस्थित हो गए । तथा आकाश से ही अनिरुद्ध से बोले—बेटा ! चिन्ता मत करना निर्भीक होकर युद्ध करो । मैं यहां उपस्थित हूँ ।

नारद जी के इस आशीर्वाद पूर्ण संवाद को सुनकर अनिरुद्ध युद्ध के लिए तैयार हो गए । दैत्य सेना बाणों, मूसल, गदा, खड्ग, शक्ति और शूल आदि से अनिरुद्ध पर आक्रमण करने लगी । शस्त्र आदि की वर्षा से अनिरुद्ध पूर्णतया ढक गए परन्तु घबड़ाये तिल भर भी नहीं । वे दैत्यों के शस्त्रों को छीनकर दैत्यों का ही संहार करते थे । उसके बाद भ्रान्त, उद्भ्रान्त, अविद्धा, आप्लुत, बिप्लत, एवं लुप्त आदि बत्तीस प्रकार के पैतरे बदल-बदल कर युद्ध करने लगे । वे एक अनिरुद्ध के बदले हजार अनिरुद्ध देखने लगे । अकेले अनिरुद्ध के महान पराक्रम से दैत्य सेना भाग खड़ी हुई । दैत्यों को प्राण बचाना कठिन था । भागते हुए वे भय से इतने हताश थे कि एक दूसरे के ऊपर गिरते जा रहे थे । मुख से रक्त का वमन कर रहे थे ।

राक्षसी सेना को भागते हुए देखकर बाणासुर भीषण क्रोध कर रथ पर चढ़ गया और अद्भुत-अद्भुत शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर स्वयं अनिरुद्ध से युद्ध करने चल दिया

बाणासुर अपने हजारों हाथों में शस्त्र धारण किए था । दैत्यराज को आते देखकर अनिरुद्ध भी युद्ध क्षेत्र में सिंह की भाँति खड़े थे । बाणासुर ने अनिरुद्ध पर भीषण प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया । अनिरुद्ध भी बाणासुर को पूर्ण तथा समाप्त कर देने के उद्देश्य से दैत्य पर तीव्र वेग से झपटे । दैत्य के भीषण प्रहार से बिना विचलित हुए अनिरुद्ध ने दैत्य के रथ के रस्सों को काट कर घोड़ों को मार दिया । दैत्यराज ने विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों से अनिरुद्ध को ठक दिया और उन्हें मरा हुआ जानकर सिंह गर्जना की । तत्क्षण ही अनिरुद्ध रथ पर सवार होकर बाणासुर के समक्ष पहुँच गये । बाणासुर ने भी बिना देर किए हुए घन्टाओं से युक्त एक भीषण तेजोमय युक्त शक्ति ग्रहण कर अनिरुद्ध पर छोड़ दिया । अनिरुद्ध ने भी तीव्र गति से रास्ते में ही उस शक्ति को पकड़ कर उलटे बाणासुर पर दे मारा । जिससे बाणासुर गम्भीर चोट लगने से चेतनाहीन होकर बैठ गया । स्वामी की दुर्दशा व अनिरुद्ध के पराक्रम को देखकर दैत्य का सारथी कुम्भाण्ड बोला— हे दानवराज ! आप इस वीर को शस्त्र युद्ध में हरा नहीं पायेंगे । अब इससे माया युद्ध से लड़िये । नहीं तो यह हम सबका नाश कर देगा ।

दैत्यराज बाणासुर ने अत्यन्त क्रोधकर निष्ठुरता पूर्वक

कुम्भाण्ड से कहा—मैं अभी इसे सदा-सदा के लिए शान्त किए देता हूँ । दैत्य अपने रथ छोड़े एवं सारथी सहित लुप्त हो गया । तथा अनिरुद्ध पर सर्प बाणों की वर्षा की । जिससे अनिरुद्ध को चारों तरफ से विषधर सर्प जकड़ने लगे । अनिरुद्ध हतप्रभ होकर खड़े रहे । परन्तु विचलित नहीं हुए । बाणासुर ने कुम्भाण्ड को आदेश दिया कि इसे शीघ्र मार दो । परन्तु कुम्भाण्ड ने दानवराज से विनय पूर्वक निवेदन किया कि—हे महाराज ! इस युवक को मारने से पहले हमें यह जानना चाहिए कि यह कौन है । कहां से आया है । क्यों आया है । कौन लिवाकर लाया है । क्योंकि यह अत्यन्त शक्तिशाली, पराक्रमी, साहसी एवं युद्ध कला में निपुण है । अतः इसे मारना उचित नहीं होगा । क्योंकि जहां तक मेरा अनुमान है कि इसने कन्या के साथ विवाह अवश्य कर लिया होगा । इस समय कन्या उषा को त्यागने अथवा घर में रखने का प्रश्न विचारणीय है । इसलिए इसको मारने से पूर्व युवक की पूर्ण जानकारी करिए । यदि वह मारने योग्य हो तो मारिए अन्यथा पूजने योग्य हो तो उसकी पूजा कीजिए । यदि कन्या इसके साथ सुगति प्राप्त करती हो तो इसको पूजने में कोई हानि नहीं है । बाणासुर कुम्भाण्ड के विचार से सहमत होकर अनिरुद्ध की रक्षकों की देखभाल में छोड़

कर अपने भवन में गया । तथा इधर नारद जी ने श्रीकृष्ण को अनिरुद्ध के माया पाश में बंधे होने की सूचना दी ।

—:०:—

श्रीकृष्ण का शोणितपुर को प्रस्थान करना

द्वारका में अनिरुद्ध के भवन की सारी स्त्रियां अनिरुद्ध के अपहरण हो जाने से करुण क्रन्दन करती हुई नाना प्रकार के अमंगल सूचक आशंकाओं से व्याप्त थीं । सोच रही थीं कि कौन ऐसा महावली है जिसने कि श्री कृष्ण से शत्रुता मोल ली है । श्रीकृष्ण भी पौत्र के अपहरण से दुःखी थे । स्त्रियों के रुदन को सुनकर सभी यादव वीर अपने २ घरों से निकल कर श्रीकृष्ण के महल में आये । अनिरुद्ध का अपहरण हो जाने का समाचार पाकर सभी हतप्रभ व उदास हो गए । कोई यह सोच नहीं पा रहा था । कि जो श्रीकृष्ण तीनों लोकों के स्वामी हैं । उनके पोते का भी अपहरण हो सकता है । सभी ने श्रीकृष्ण से पूछा—अब क्या करना चाहिए । श्रीकृष्ण भी चिन्तित थे कि कहीं अनिरुद्ध का पता हो तो उसे लाने का उपक्रम किया जाय । परन्तु कुछ अता-पता तो है नहीं ।

सात्यकि के परामर्श से श्रीकृष्ण ने चारों तरफ जंगलों, पर्वतों आदि निर्जन से निर्जन स्थानों पर जाकर अनिरुद्ध का पता लगाने के लिए दूतों को भेजा । कुछ दिनों बाद सभी दूत आकर अनिरुद्ध का कहीं भी पता न होने की सूचना देकर आंखों में आंसू लिए खड़े रहे, और अग्रिम आदेश की प्रतीक्षा करने लगे । श्रीकृष्ण के सेनापति अना-धृष्ठि ने अपनी पुरानी शत्रुता का बदला लेने के लिए कहीं इन्द्र ने अनिरुद्ध का अपहरण न किया हो । इस प्रकार की शंका व्यक्त की । परन्तु श्रीकृष्ण ने उनकी शंका को निर्मूल करते हुए कहा—देवता लोग इस प्रकार का दुष्कर्म नहीं कर सकते । यह कार्य किसी सायावी स्त्री ने किया है । राक्षसी स्त्रियां बहुत प्रकार की साया जानती हैं । ऐसा कार्य वही कर सकती हैं ।

प्रातःकाल हुआ । श्रीकृष्ण के साथ सभी सभासद तथा वीर यादव उपस्थित हुए और वे इस विचार में मग्न थे कि अनिरुद्ध की खोज के लिए अब क्या करना चाहिए तभी नारद जी उपस्थित हो गए । श्रीकृष्ण ने नारद जी का उचित स्वागत कर सुन्दर आसन दिया । नारद जी ने श्रीकृष्ण से चिन्ता का कारण पूछा । श्रीकृष्ण ने अपने पौत्र अनिरुद्ध के अपहरण किए जाने का समाचार सुनाया और निवेदन किया—हे भगवन ! यदि आपको

आपको अनिरुद्ध के विषय में कुछ पता हो, देखा हो या सुना हो तो बताने का कष्ट करें ।

नारद जी बोले—हे यदुनन्दन! शोणितपुर में अनिरुद्ध बाणासुर के साथ देवासुर-संग्राम की तरह युद्ध में रत हैं । उनके युद्ध कौशल को मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है । इस समय वे दानवराज के माया युद्ध में नागपाश में बंधे पड़े हैं । दैत्य ने तो उन्हें वध करने की आज्ञा दी थी, परंतु अपने मंत्री कुम्भाण्ड के परामर्श से उसके मारे जाने का कार्य स्थगित कर दिया है । बालक नागपाश में बंधा पड़ा है कृपया युद्ध विजय एवं यश की प्राप्ति के लिए आप वहां शीघ्र जायें । संभव है अनिरुद्ध ने बाणासुर की शीलवती, गुणवती कन्या उषा से गन्धर्व विवाह कर लिया है । नारदजी द्वारा सूचना मिलते ही शस्त्रों से सुसज्जित होकर बलराम एवं प्रद्युम्न सहित गरुड़ पर सवार होकर शोणितपुर को चल दिए ।

—:०:—

अग्निगण व श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध

गरुड़ पर सवार होकर श्रीकृष्ण, बलराम व प्रद्युम्न शोणितपुर को जा रहे थे । श्रीकृष्ण का शरीर विशाल-

काय हो गया था । बाणासुर को मारने हेतु आठ भुजायें प्रकट हो गयीं । जिनमें तलवार, चक्र, गदा, बाण, डाल, शंख, धनुष आदि धारण किए थे । एवं उनका मस्तक भी हजार मस्तक हो गया था । बलराम जी सहस्र देह धारण कर तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से युक्त हो गए । प्रद्युम्न भी सनत्कुमार की तरह शोभा पा रहे थे गरुड़ भी विशालकाय शरीर धारण कर चारण एवं सिद्धों के मार्गों को पार करते हुए आकाशमार्ग से चलते जा रहे थे । तभी बलराम जी ने देखा कि हम लोगों के शरीर की आभा मन्द होकर स्वर्णिम हो गई है । इसका कारण उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा श्रीकृष्ण बोले—मुझे ऐसा लगता है कि हम लोग बाणासुर की नगरी शोणितपुर के पास आ चुके हैं और उसने अपने नगर की सुरक्षा के लिए अग्नि गणों को नियुक्त कर रखा है । उन्हीं अग्नि गणों के प्रभाव से हम लोगों का शरीर स्वर्णिम हो गया है । हे गरुड़ ! अब तुम्हीं पहले अपना परामर्श दो कि हमें क्या करना चाहिए । बाद में हम अपना निर्णय लेंगे ।

गरुड़ ने सहस्र मुख धारण कर आकाश गंगा के जल को पान कर शोणितपुर पर बरसाया । इससे अग्नि शांत हो गई । अग्नि के शांत होने पर श्रीकृष्ण बलराम एवं प्रद्युम्न गरुड़ पर सवार होकर पुनः आगे बढ़े । भगवान

शंकर के गण अग्नि गणों ने कृष्ण बलराम और प्रद्युम्न को गरुड़ पर आते देखकर युध छोड़ दिया युद्ध क्षेत्र में भयंकर कोलाहल को सुनकर बाणासुर ने वहाँ का संदेश लाने के लिए अपना एक दूत भेजा । दूत ने युद्ध क्षेत्र में जाकर देखा कि किन्हीं तीन व्यक्तियों के साथ अग्नि गणों का भीषण युद्ध हो रहा है । युद्ध में स्वाहा युक्त कल्पाष देहन, शोषण तपन एवं स्वधा हरण करने वाले पिठर, पतंग स्वर्ण, श्वागाध एवं भ्राज ये पाँच इस प्रकार दस अग्निगण अपनी सेनाओं के साथ भीषण युद्ध में रत हैं । तथा वषट्कार के आश्रय में रहने वाला अग्नि व ज्योतिष्टोम को विभाग करने वाला अग्नि भी युद्ध में व्यस्त है । इन दोनों अग्नियों के मध्य अग्निमय रथ पर सवार होकर महर्षि अंगिरा भी त्रिशूल धारण किए युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हैं ।

श्रीकृष्ण तीक्ष्ण बाणों को छोड़ते हुए बोले—हे अग्नि गणों ! अब मैं तुम लोगों के नाश का उपाय कर रहा हूँ । श्रीकृष्ण की इस चेतावनी को सुनकर महर्षि अंगिरा त्रिशूल तानकर श्रीकृष्ण पर भपटे । श्रीकृष्ण ने अपने बाण से महर्षि के त्रिशूल को काटकर उनकी छाती में बाण मारा । महर्षि सराबोर होकर छटपटाने लगे । अग्निगण श्रीकृष्ण के बाणों से व्याकुल होकर युद्ध छोड़कर शोणितपुर को भागे ।

शोणितपुर में कृष्ण का युद्ध वर्णन

ज्वर के साथ युद्ध

शोणितपुर के पास श्रीकृष्ण के पहुंचते ही नारद जी ने कहा—हे मधुसूदन ! यही बाणासुर की नगरी है । यहीं भगवान शंकर पार्वती एवं स्वामी कार्तिकेय बाणासुर की रक्षा में निवास करते हैं । तब श्रीकृष्ण बोले—हे देवर्षि ! यदि बाणासुर का पक्ष लेकर साक्षात् महादेव भी युद्ध करने आयेंगे तो मैं उनके साथ युद्ध करने को तैयार हूं । कहकर श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शंख की ध्वनि की और फिर शोणितपुर नगरी में प्रवेश कर गए । शंख की ध्वनि को सुनकर बाणासुर ने भी रणभेरी बजवाते हुए युद्ध के लिए सैनिकों को शस्त्रों से सुसज्जित होने का आदेश दिया ।

श्रीकृष्ण व दैत्य सेना में भयंकर युद्ध छिड़ गया । सभी दानव दैत्य एवं राक्षसी सेना कुलिश, पट्टिश, शूल, गदा आदि शस्त्रों से श्रीकृष्ण पर प्रहार करने लगे । गरुड़ पर सामने की तरफ श्रीकृष्ण, दाहिनी तरफ बलराम जी तथा बायीं तरफ प्रद्युम्न बैठकर एक दूसरे का बचाव करते हुए शत्रु सेना का भीषण संहार करने लगे । गरुड़ भी अपने पंखों, नखों एवं चोंच से असंख्य दैत्य सैनिकों को

नष्ट कर रहा था तभी एक काल तुल्य तीन पैर तीन सिर छः हाथ और नौ आंखों वाला ज्वर आकर मेघ के समान भयंकर गर्जना करते आया । ज्वर नामक दैत्य ने बलराम जी के हृदय पर भस्मास्त्र से प्रहार किया । जो उनके हृदय को पार करते हुए मेरु पर्वत के शिखर से जा टकराया । जिससे शिखर चकनाचूर हो गया । भस्म के सूक्ष्मांश बलराम के शरीर में लगे रहने से उनके शरीर में तीव्र दाह होने लगा आलस्य होकर निद्रा आने लगी एवं दीर्घ श्वांस लेने लगे । जब उन्होंने भस्म के प्रभाव को श्री कृष्ण को बताया तो श्रीकृष्ण उनके शरीर से लिपट गए । भस्म का सारा उपद्रव शान्त हो गया । फिर ज्वर ने श्री कृष्ण पर भस्मास्त्र पर प्रहार किया तथा श्रीकृष्ण के कंधे पर जोर का मुक्का मारा । श्रीकृष्ण के शरीर में भस्मास्त्र का उपद्रव प्रारम्भ हुआ । परन्तु कुछ काल बाद ही वह शान्त हो गया । फिर श्रीकृष्ण ने आकाशचारी ज्वर को मार गिराया ।

श्रीकृष्ण ने ज्वर को मरा हुआ जानकर ज्योंही पृथ्वी पर फेंका । त्योंही वह अदृश्य हो गया । तथा श्रीकृष्ण के शरीर में घुसकर जम्हाई, रोमांच, आलस्य तीव्र श्वांस, निद्रा एवं मदता आदि उपद्रव उत्पन्न करने लगा । श्री कृष्ण ने ज्वर को अपने अन्दर घुसा जानकर वैष्णव-ज्वर

उत्पन्न किया । जिसने ज्वर को पकड़कर श्रीकृष्ण के सामने उपस्थित किया । श्रीकृष्ण ने उसे तलवार से टुकड़े टुकड़े करना चाहा । तभी वह अपने रक्षा की गुहार करने लगा । ज्वर को छोड़ देने की आकाशवाणी हुई । श्रीकृष्ण ने ज्वर को जोड़ दिया ।

श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र, बलराज के लांगलास्त्र एवं प्रद्युम्न के भीषण बाणों की मार से असंख्य सेना विनष्ट हो रही थी । दैत्य सेना को नष्ट होते देखकर शंकर क्रोधित हो गए । तथा दैत्यों की तरफ से युद्ध के मैदान में आकर युद्ध करने लगे । वाणासुर की रक्षा में भगवान् शंकर के साथ रथ पर कार्तिकेय व नन्दी भी सवार थे । भगवान् शंकर के चारों तरफ उनके गण भीषण रूप धारण किए रुधिर मय मुख से उनके गण भक्षण करने वाले पैंने दाँतों से युक्त युद्ध की इच्छा से श्रीकृष्ण की तरफ बढ़ते चले आ रहे थे । श्रीकृष्ण व शंकर एक दूसरे पर शस्त्रास्त्रों की भीषण वर्षा करने लगे । जब श्रीकृष्ण ने शंकर पर प्रहार करने के लिए पार्जन्य नामक शस्त्र उठाया तो पृथ्वी काँपने लगी ।

पृथ्वी का ब्रह्माजी से निवेदन

शिव व श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध होने से पृथ्वी भयभीत हो गई थी । जब श्रीकृष्ण ने पार्जन्य शस्त्र उठाया तो शिव जी के मुंह से आग की लपटें लपलपाने लगीं । इन दोनों के मध्य भीषण युद्ध देखकर पृथ्वी ब्रह्मा जी के पास गई और करुण विलाप करती हुई हाथ जोड़कर बोली—हे नाथ ! मैं तो शिव एवं श्रीकृष्ण के विकराल युद्ध से अत्यन्त ही भयभीत हूं । इन लोगों का महातेज अब असह्य है । जान पड़ता है अब मुझे पुनः समुद्र में शरण लेनी पड़ेगी । इनके भार को धारण करने में भी अब असमर्थ हूं । अतः आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे मैं इस भार व भय से मुक्त होऊं ।

ब्रह्माजी ने पृथ्वी को धैर्य बंधाया । फिर भगवान् शंकर के पास गए और बोले—हे दीनानाथ ! जब आप ने स्वयं ही बाणासुर को मारने का उपाय किया है तो फिर इसकी रक्षा करने का क्यों प्रयत्न कर रहे हैं । श्री कृष्ण आपकी आत्मा ही है । इसलिए उनसे युद्ध करना आपको शोभा नहीं देता । तभी शंकर जी ने श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश कर तीनों लोकों का दर्शन किया । तथा अपने जुम्भास्त्र को प्रभाव हीन देखा एवं बाणासुर की मृत्यु हेतु दिए गए अपने वर को याद कर लिया । तब

ब्रह्मा जी को बिना कोई उत्तर दिये ही युद्ध का परित्याग कर दिया। फिर उन्होंने घोषणा की कि अब मैं श्रीकृष्ण के साथ युद्ध नहीं करूंगा। श्रीकृष्ण व शंकर दोनों ने ही आलिङ्गन बद्ध होकर युद्ध का त्याग किया।

—:०:—

बाणासुर के साथ श्रीकृष्ण का युद्ध

बाणासुर अपने महाबली दैत्यों गणों के साथ आकर भीषण शस्त्रास्त्रों से युक्त होकर श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने लगा। तुरही भेरी बज रहे थे। वीर योद्धागण भीषण गर्जना कर रहे थे। बाणासुर तीव्रवेग से श्रीकृष्ण पर प्रहार करने के लिए आगे बढ़ा। श्रीकृष्ण भी अपने गरुड़ पर सवार होकर बाणासुर की तरफ बढ़े। दोनों योद्धाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण ने अपने शार्ङ्गधनुष के द्वारा चलाये गए तीखे बाणों से बाणासुर के रथ, ध्वज एवं पताका तथा अश्व जर्जर कर दिए। बाणासुर भी छाती में बाण लगने से अल्प मूर्छित हो गया। श्रीकृष्ण के वाहन गरुड़ एवं बाणासुर का वाहन मयूर भी आपस में पंख, पैर, तुण्ड, नख, चोंच आदि से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। तभी अचानक गरुड़ ने

मयूर को अपना चोंच में दबाकर दाहिने पंख से उसके मस्तक एवं पैरों से पार्श्व में प्रहार करने लगे । मयूर मार खाते-खाते मूर्छित हो गया । गरुड़ ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया । जिससे उसकी पीठ कर से बाणासुर भी पृथ्वीपर गिर पड़ा ।

असहाय बाणासुर मन ही मन सोच रहा था कि मैंने अपनी शक्ति के घण्ट में चूर होकर बन्धु-बान्धवों का कहना नहीं माना । उसी के कारण यह मेरी दुर्दशा हो रही है । तभी भगवान् शंकर ने नन्दी को अपना सिंह योजित रथ बाणासुर को देने एवं उसे युद्ध में नन्दीश्वर को ही संचालन करने का आदेश दिया । नन्दी रथ को लेकर बाणासुर के पास पहुंचे और बोले—इस रथ पर शीघ्र बैठो और युद्ध करो । बाणासुर उस शिव निर्मित रथ पर बैठकर श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए पुनः ललकारने लगा । दैत्य राजा ने सभी शस्त्रों को नष्ट करने वाला ब्रह्मशिर नामक शस्त्र को प्रकट किया । इस बाण के उत्पन्न होते ही तीनों लोक कांप गए । बाणासुर के सामने जाकर श्रीकृष्ण ने उसके तेज को अपनी तरफ खींच लिया और उसके वध करने के लिए चक्र को धारण कर लिया । जिससे शंकर भगवान् घबरा गये और पार्वती से बोले—हे प्रिये ! इस सुदर्शन चक्र को तो कोई भी जीत नहीं

सकता । इसलिए इस चक्र को छोड़े जाने से पूर्व ही बाणासुर की रक्षा का उपाय करो । पार्वती जी ने लम्बा देवी को बाणासुर की रक्षा का भार सौंपा । पार्वती ने श्रीकृष्ण को अलक्षित भाव से दर्शन दिया एवं लम्बा देवी बाणासुर की रक्षा हेतु श्रीकृष्ण के सामने नंगी खड़ी हो गई ।

श्रीकृष्ण बोले—हे लम्बा देवी ! तुमने बाणासुर की रक्षा के लिए ऐसा नग्न रूप क्यों धारण किया । लम्बादेवी बोली—हे पुरुषोत्तम आप यदि अनन्त, अखंड, अछेद अभेद हैं । आपको कोई पार नहीं पा सकता न परास्त ही कर सकता है । मैं बाणासुर की वरदानी मां हूं । इसलिए इसका वध न करके मुझे जीवित पुत्र वाली बनाइए । आप मेरे बच्चों को निष्फल न करें । श्रीकृष्ण बोले—हे सुभगे ! तुम्हारा यह पुत्र हजार भुजा होने के कारण सदा ही घमण्ड में चूर होकर गरजता रहता है । इसलिए मैं इसकी दो भुजाओं को शेष छोड़कर बाकी भुजाओं को नष्ट कर दूंगा । उसका वध नहीं करूंगा । कहकर श्रीकृष्ण ने चक्र से बाणासुर की दो भुजाओं को छोड़कर सभी भुजाओं को काट डाला । रक्त से सना हुआ बाणासुर पुनः भीषण गर्जना करने लगा । जिससे श्रीकृष्ण ने पुनः सुदर्शन चक्र को उस पर चलाना चाहा कि कार्तिकेय के साथ शंकर भगवान् उपस्थित होकर बोले—हे महाबाहो ! आप

सनातन पुरुष, संसारी जीवों की एकमात्र गति है। आपको देवता, दैत्य मनुष्य अथवा अन्य कोई भी प्राणी परास्त नहीं कर सकता। अतः अब आप इस चक्र को रोकिये और बाणासुर को अभयदान कर मेरे वचन की रक्षा करिये। श्रीकृष्ण बोले—हे रुद्रदेव आप सभी देवताओं एवं दानवों के पूज्यनीय हैं। आपके कहने से अपने चक्र को निवारण करता हूँ। जिससे बाणासुर की रक्षा हो जायेगी। हाँलाकि मेरा निश्चय पूरा नहीं हुआ। अब मैं जा रहा हूँ। आपको नमस्कार है।

---:०:---

उषा का अनिरुद्ध के साथ विवाह एवं द्वारिका आगमन

बाणासुर को पराजित करने के बाद श्रीकृष्ण ने नारद जी से निवेदन किया। हे देवर्षि ! अनिरुद्ध कहां नागपाश में बंधे पड़े हैं। आप उन्हें हमें दिखाइए मैं उसे शीघ्र ही नागपाश से मुक्त कर आनन्दित देखना चाहता हूँ। नारद जी ने ज्योंही कहा कि अनिरुद्ध इस समय बाणासुर के अन्तःपुर में उसकी लड़की उषा के महल में नागपाश में बंध कर बन्दी रूप में पड़े हैं। तभी चित्रलेखा आ गई

और श्रीकृष्ण बलराम तथा प्रद्युम्न को अनिरुद्ध के पास ले गई। गरुड़ को देखते ही सभी नाग अनिरुद्ध बन्धन से मुक्त करके भाग गये अनिरुद्ध ने सबसे पहले बलराम जी व श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। उषा भी अपनी सहेलियों के साथ आयी और सभी के चरणों में प्रणाम किया।

नारद जी श्रीकृष्ण से बोले—हे महाबाहो ! आप अनिरुद्ध व उषा का विवाह वहीं सम्पन्न करें क्योंकि मुझे इसको देखने की इच्छा है। श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे भगवन् ! बिना देर किए आप ही इस कार्य को सम्पन्न करावें। यह बात हो रही थी कि कुम्भाण्ड विवाह की सभी सामग्रियों से थाल सजाकर लाये और श्रीकृष्ण को अर्पित कर बोले—हे प्रभो ! मैं आपकी शरण में उपस्थित हूँ। आप मुझे अभयदान करें। श्रीकृष्ण कुम्भाण्ड पर प्रसन्न थे। विवाह सम्पन्न होने के बाद श्री कृष्ण ने कुम्भाण्ड को शोणितपुर का राज्य सौंप दिया। तथा द्वारिका वापिस आने का निर्णय किया। तभी कुम्भाण्ड बोला—हे महाबाहो ! बाणासुर की गौओं को वरुण ने अपने अधिकार में ले लिया है। उन गौओं के दूध के सेवन से युष्मद् महाबली व अजेय हो जाता है। कृपया उन्हें मुक्त कराये।

श्रीकृष्ण ने वरुण लोक में जाने का निश्चय किया । उषा को उसकी सखियों के साथ मयूर पर चढ़ाकर द्वारिका के लिए विदा किया । स्वयं बलराम प्रद्युम्न व अनिरुद्ध के साथ गरुड़ पर सवार होकर आकाश मार्ग से उत्तर दिशा की ओर चल दिए । मार्ग में उन्होंने समुद्र तट पर हजारों गौओं को चरते देखा । श्रीकृष्ण ने गौओं के पास चलने के लिए गरुड़ से कहा—वहाँ पहुँचते ही वरुण के गणों ने शस्त्रों से सुसज्जित होकर श्रीकृष्ण के सामने आकर युद्ध छेड़ दिया श्रीकृष्ण ने वरुण के हजारों सैनिकों को मार भगाया । फिर वरुण के साठ हजार सैनिक रथ पर सवार शास्त्रास्त्रों को चमकाते हुए आये । बलराम कृष्ण, प्रद्युम्न व अनिरुद्ध ने अपने तीक्ष्ण बाणों से असंख्य रथी सैनिकों को मार गिराया एवं शेष को प्राण बचाने के लिए भागने पर मजबूर कर दिया ।

अपने सैनिकों की दुर्दशा देखकर क्रोध से लाल आँखें किए वरुण दिव्य शस्त्रों से युक्त होकर श्रीकृष्ण के सामने आकर उन पर बाणों का भीषण प्रहार करने लगे । दोनों में भीषण संग्राम छिड़ गया । फिर श्रीकृष्ण ने वैष्णवास्त्र को अभिमन्त्रित कर वरुण को नष्ट करने की चेतावनी दी । वरुण ने भी वैष्णवास्त्र का संधान किया । वैष्णावस्त्र से तीव्र जलधारा प्रवाहित होकर वैष्णवास्त्र पर ज्यों-ज्यों

जलधारा पड़ती थी त्यों-त्यों ही वह प्रज्वलित होता था । अन्त में वरुणास्त्र की जलधारा शान्त हो गई । वैष्णवास्त्र भयंकर रूप से प्रज्वलित हो उठा । जिससे सभी दिशायें भय से कम्पित होने लगीं । प्रलयकाल का दृश्य नजर आने लगा । तभी वरुण देव ने श्रीकृष्ण के सामने हथियार डाल दिए । तथा श्रीकृष्ण के शरणागत होकर युद्ध एवं क्रोध को त्याग करने का निवेदन उनसे कहने लगे ।

श्रीकृष्ण ने कहा— ठीक है मैं युद्ध एवं क्रोध को त्याग कर देता हूँ । परन्तु इस वर्तमान क्लेश की शान्ति के लिए बाणासुर की गौओं को हमें लाकर दे दो । तब वरुण श्री कृष्ण से बोले—हे मधुसूदन ! बाणासुर से हुई सन्धि के अनुसार मैं जीते जी इन गौओं को देने में असमर्थ हूँ । क्योंकि नियम भंग करने वाले व्यक्ति की कभी गति नहीं होती । उसे सब प्रकार से निन्दा का पात्र ही बनना पड़ता है । इसलिये आप ऐसा करें कि बाणासुर को दिया गया मेरा वचन भंग न हो । यदि आप चाहें तो मेरा वध करके गौओं को ले जाये । परन्तु जीवित रहते मैं गौओं को नहीं दे सकता । वरुण की इस प्रकार की बातों को सुनकर श्रीकृष्ण ने उनके बाणासुर द्वारा की गई सन्धिको न तोड़ना ही उचित समझा और न उनका वध करके ले जाना ही । अतः गौओं को छोड़ दिया । इस प्रकार वरुण

को अभयदान देकर इन्द्र आदि के साथ द्वारिका पहुंच गये ।
देवता सहस्रगण, गन्धर्व आदि सभी द्वारिका पहुंच गये ।

द्वारिकापुरी में प्रवेश करने से पहले ही श्रीकृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाकर आने की सूचना नगर-वासियों को दी । जिससे सम्पूर्ण द्वारिकापुरी के प्राणियों में हर्षोल्लास का वातावरण छा गया । सभी लोग रत्न माला आदि लेकर स्वागत के लिए तैयार हो गये । ब्राह्मण वेद-मन्त्रों का पाठ करने लगे । चारण व बन्दीजन स्तुति पाठ करने लगे । सभी के मुख से यही निकल रहा था, कि भगवान श्रीकृष्ण बाणासुर को पराजित करके आए हैं ।

जब श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न व अनिरुद्ध आदि के साथ द्वारिकापुरी में प्रवेश कर अपने महल में गये । उस समय का आनन्ददायी वातावरण देखने योग्य था । श्री कृष्ण के आदेश से यादव कुमारों ने सभी आगन्तुकों का उचित स्वागत किया । इन्द्र का भी विधिवत् सत्कार किया गया । इन्द्र ने यादवों व श्रीकृष्ण से शंकर व कार्तिकेय के साथ युद्ध तथा बाणासुर का युद्ध में श्री कृष्ण द्वारा हुई दुर्गति व उसकी पराजय का सारा वृत्तान्त सुनाया । फिर बोले श्रीकृष्ण ने जिस कार्य के लिए मनुष्य शरीर को धारण किया है । वह कार्य लगभग पूर्ण हो गया । इनके बाहुबल के आश्रय में रहकर आप लोग सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे ।

भविष्य पर्व

जनमेजय की संतति

शौनक ऋषि ने लोमहर्षण से जनमेजय की संतति एवं पाण्डुवंश के प्रतिष्ठित होने के सम्बन्ध में जानने की इच्छा व्यक्त की। सौति ने शौनक मुनि से कहा—हे मुने ! महाराज जनमेजय की काश्या नाम की पत्नी से दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें एक का नाम चन्द्रपीड़ तथा दूसरे का नाम सूर्यपीड़ था। चन्द्रपीड़ राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ। चन्द्रपीड़ के महापराक्रमी व धनुर्धारी एक सौ पुत्र हुए। इन्हीं से जनमेजय का वंश प्रारम्भ हुआ। इनमें सबसे बड़ा लड़का सत्यकर्ण जो कि महान् उदार हृदय वाला तथा प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञों को करने वाला था। हस्तिनापुर का राजा हुआ। दूसरा भाई श्वेतकर्ण भी अत्यन्त पराक्रमी, शक्तिशाली, धर्मज्ञ होते हुए भी पुत्रहीन था। अतः वह अपनी स्त्री मालिनी के साथ वनवासी जीवन व्यतीत करने लगा।

वन में मालिनी को गर्भ स्थिर रह गया। गर्भ के

स्पष्ट लक्षण दिखाई देते ही श्वेतकर्ण ने महाप्रस्थान कर दिया । उनकी पत्नी मालिनी भी पति का अनुसरण कर पीछे-पीछे चल दी । रास्ते में कुछ दूर जाने पर मालिनी ने एक सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया । परन्तु वह पुत्र को वहीं छोड़कर अपने पति श्वेतकर्ण के पीछे-२ चल दी । पर्वत व वन के सुनसान स्थान में बच्चा रुदन कर रहा था । ऊपर से बादलों ने घेरकर छाया कर रखी थी । तभी वहां पिप्पलाद व कौशिक ऋषि आ गए । दया व श्रद्धा बच्चे को उन लोगों ने प्रक्षालन कर साफ किया । उसके दोनों कन्धे पर रक्त का दाग लगा रह गया था । जिसे उन लोगों ने घिसकर साफ किया । घिसने से बच्चे के दोनों पाश्र्व बकरे के समान काले रंग के हो गए । जिस कारण उसका नाम (अजपाश्र्व) पड़ा दोनों महर्षि बालक को उठाकर बेमक ऋषि के आश्रम में लाये । वहीं उसका पोषण भली प्रकार होने लगा । बेमक ऋषि की पत्नी भी बच्चे को पुत्रवत् पालने लगी । इस बच्चे के बड़े होने पर विवाह हुआ । इसके बच्चों में से ही पाण्डवों का पौरव (पुरु) वंश प्रतिष्ठित हुआ ।

—:०:—

जनमेजय-व्यास वार्ता

शौनकजी ने सौति से कहा—कि जनमेजय ने महर्षि व्यासजी के शिष्य वैशम्पायनजी से हरिवंश की कथा सुन कर क्या किया मैं जानने की उत्कट इच्छा रखता हूँ कृपया आप बतायें ।

सौति ने शौनक जी से कहा—हे महामुने ! राजा जनमेजय ने सर्प यज्ञ करने के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए यज्ञ सामग्री एकत्र करने के लिए अपने कर्मचारियों को आदेश दिया । तथा ऋत्विक् पुरोहित एवं आचार्य को बुलाकर अश्वमेध यज्ञ कराने की इच्छा व्यक्त कर घोड़ा छोड़ने की बात कही । इस सम्बन्ध में चर्चा चल ही रही थी, कि श्रीकृष्ण द्वैपायनजी (व्यासजी) जनमेजय द्वारा अश्वमेध यज्ञ कराने का विचार जानकर आ गए । जनमेजय ने व्यास जी को अर्घ्यपाद्य समर्पित कर सुन्दर आसन पर बैठा विधिवत् स्वागत किया । फिर सभा में उपस्थित विद्वानों के साथ वार्ता होने लगी ।

जनमेजय ने व्यासजी से कहा—हे भगवन् ! मैंने आप के द्वारा रचा हुआ महाभारत का एक वर्ष तक श्रवण किया है । फिर भी जिस प्रकार स्वर्गीय सुख के उपभोग व अमृतपान से किसी की इच्छापूर्ण नहीं होती उसीप्रकार अमृत रूपी महाभारत की भी कथा बार-बार सुनने पर भी

तृप्ति नहीं हुई है। आप सर्वज्ञ हैं, अतः मैं आपसे कौरव वंश के नाश का कारण जानना चाहता हूँ। अकेले राजसूय यज्ञ करने से बहुसंख्य क्षत्रिय नष्ट हो गए। इसका कारण मैं राजसूय यज्ञ को ही समझता हूँ। क्योंकि अति प्राचीन समय में राजा चन्द्रदेव द्वारा यज्ञ के कराये जाने पर अन्त में तारकामय संग्राम हुआ था। राजर्षि हरिश्चन्द्र द्वारा राजसूय यज्ञ करने पर वशिष्ठ ने आडी एवं विश्वामित्र ने बगुले का रूप धारण किया था। उस समय भी क्षत्रियों के संहार का कारण राजसूय यज्ञ ही था इसलिए मैं समझता हूँ कि महाराजा युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ करने के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ था। राजसूय यज्ञ भली प्रकार करना अत्यन्त ही कठिन है। तथा विघ्न पड़ने पर प्रजा का नष्ट होना सम्भावित है। अतः इसका पूर्ण ज्ञान होने पर भी आपने राजसूय यज्ञ को क्यों होने दिया जबकि यह भीषण युद्ध कराने का कारण है।

वेद व्यासजी ने कहा—हे वत्स ! काल की गति अटल है। इसे रोका नहीं जा सकता। तुम्हारे पूर्वजों ने उत्तम मार्ग को त्याग दिया क्योंकि वे काल के वशीभूत थे उन्होंने अपने भविष्य के विषय में मुझसे कभी कुछ नहीं पूछा मैंने अपनी तरफ से कुछ भी नहीं बताया। यदि तुम अपना भविष्य जानना चाहो, तो मैं बता सकता हूँ परन्तु तुम

जानकर भी मेरे कथनानुसार कुछ कर नहीं पाओगे । क्यों कि विधि का लेख किसी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता । किसी ने ठीक ही कहा है ।

१. होड़हें सोई जो राम रचि राखा ।

को करि तर्क बढ़ावहिं शाखा ॥”

(रामचरित मानस)

अश्वमेध यज्ञ क्षत्रियों के लिए सर्वश्रेष्ठ यज्ञ माना गया है । परन्तु तुम्हारे अश्वमेध यज्ञ को देवेन्द्र इन्द्रसफल नहीं होने देंगे । इसलिए तुम किसी भी दशा में इस यज्ञ को मत करो ! कालवश विधाता के द्वारा पहले से ही तुम्हारे यज्ञ का नष्ट होना निश्चित है । भविष्य में ब्राह्मण यज्ञ के फल को बेचेंगे । व्यास जी के वचन को सुनकर जनमेजय बोले—हे भगवान् ! मेरे अश्वमेध यज्ञ में उपस्थित होने वाले विघ्न का कारण बताने की कृपा करें । जिसका निवारण करने का मैं प्रयत्न कर सकूँ । व्यासजी बोले—हे राजन् ! आपके यज्ञ के नष्ट होने का मात्र कारण ब्राह्मणों का क्रोध है । इसलिए ब्राह्मणों के क्रोध का निवारण ही आपके लिए कल्याण कारक होगा । परन्तु तुम जिस अश्वमेध को करने की तैयारी कर रहे हो, उस यज्ञ को जब तक यह पृथ्वी रहेगी तब तक कोई भी क्षत्रिय इसे करने में सफल नहीं होगा ।

जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ की इच्छा को त्यागते हुए महर्षि वेद व्यासजी से कहा—हे पितामह ! आपने जिस प्रकार से उपस्थित होने वाले विघ्नों को बताया है, उसी प्रकार इस यज्ञ की पुनरावृत्ति कब होगी । कृपया बताने की कृपा करें ।

व्यास जी ने कहा—हे वत्स !

‘उपान्तथञ्चो देवेषु ब्रह्मणेषुपपत्स्यते ।

तेजसा व्याहृतं तेजस्तेजस्येवावतिष्ठते’ । ३६।

जैसे तेज से विनाष्ट हुआ तेज, तेज में ही लीन हो जाता है, वैसे ही नष्ट हुआ यज्ञ देवताओं एवं ब्राह्मणों में ज्ञान रूप से स्थित रहता है । भविष्य में कलियुग के आने पर पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न कश्यप गोत्रीय सेनाती ब्राह्मण ही विश्व में अश्वमेध यज्ञ की पुनरावृत्ति करेगा । तथा उसी ब्राह्मण के वंश में जन्म धारण करने वाला कोई महात्मा अश्वमेध यज्ञ को पुनः करेगा । उस समय धर्म के अल्प समय की तपस्या से ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्ति करेंगे । कलियुग के अन्तकाल में धर्म का आचरण करने वाले मनुष्य ही सम्मानित होकर धन्य समझे जायेंगे ।

कलियुग वर्णन

शौनक ऋषि ने सौति से लोगों को भयभीत करने वाले एवं धर्म की शक्ति को क्षीण करने वाले कलियुग के सम्बन्ध में जानने की इच्छा व्यक्त की। सौति ने शौनक ऋषि को कलियुग के उस वृत्तांत को सुनाया जिसे वेद व्यासजी ने राजा जनमेजय को सुनाया था। व्यासजी ने कलियुग का वर्णन करते हुए कहा था कि कलियुग के राजा परम स्वार्थी बनकर प्रजा के हित साधन, तप, यज्ञ आदि सत्कर्मों को त्याग देंगे। क्षत्रियों के अतिरिक्त अन्य वर्णों के राजा शासक होंगे। ब्राह्मण शूद्रों का काम करेंगे तथा यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों को त्याग कर शस्त्र ग्रहण करेंगे जाति पाति का भेदभाव मिटाकर सभी वर्ण एक साथ भोजन करेंगे। शिल्पी असत्य का व्यवहार करने लगेंगे। मद्य मांस का सेवन बढ़ जाएगा तथा अपने मित्र की पत्नी का भी उपभोग लोग निःसंकोच करेंगे। राजा चोर तथा चोर राजा बनेंगे। नौकर अपने मालिक के धन को हड़प कर स्वयं मालिक बन जायेगा। चारों तरफ धन की ही प्रतिष्ठा होगी। सज्जनों का अपमान तथा पापियों का सम्मान होगा। सभी धर्म शून्य हो जायेंगे। विधवाओं एवं संन्यासिनी औरतों के बच्चे होंगे स्त्रियां अपने रूप

यौवन को आकर्षक बचाकर देह का व्यापार करेंगी। सभी वर्ग के लोग वैदिक यज्ञ आदि का परित्याग कर अपने को ब्रह्मवादी बनाने का दावा करेंगे। समाज में शूद्र ही सम्मानित व्यक्ति माने जायेंगे।

ब्राह्मण अपनी तपस्या एवं यज्ञ के द्वारा प्राप्त फल को व्यवसाय में बदल देंगे ऋतु विपरीत हो जायेंगी, शूद्र लोग पवित्र आचरण वाले होकर श्वेतदन्त, सूक्ष्मदर्शी, मुण्डित एवं काषायवस्त्र धारण करके बौद्ध धर्म के अनुयायी बनेंगे। हिंसक जीवों की वृद्धि होगी, गायों का ह्रास होगा खाद्य सामग्रियों का स्वाद पहले की अपेक्षा हीन हो जाएगा मलेच्छ देश के निवासी मध्यप्रदेश में तथा मध्य-प्रदेश के निवासी मलेच्छ देश में निवास करेंगे। बैल शक्ति हीन होकर हल खींचने में असमर्थ हो जायेंगे। सभी व्यक्ति एक दूसरे का धन अपहरण कर धनवान बनने का प्रयत्न करेंगे। कोई धर्म में विश्वास न करेगा। दुराचारी हो जायेंगे। भूमि ऊसर हो जायेगी। चारों तरफ डाकुओं का आतंक छाया रहेगा। पिता-पुत्र में जमीन जायदाद का बंटवारा होने लगेगा। लोग धन के लालच में झूठी गवाही देंगे।

स्त्रियों की वास्तविक सुन्दरता नष्ट होकर मात्र शृंगार ही रह जाएगा। गृहस्थ जीवन कष्टमय हो

जाएगा । पृथ्वी भूठे गर्व करने वाली एवं चरित्रहीन दुरा-
चारिणी स्त्रियों से भर जाएगा । पुरुषों की संख्या में
स्त्रियों की संख्या अधिक होगी, भिखमंगे बहुत होंगे ।
ब्राह्मण लोग बिना विचार किए ही सभी जाति का दान
निःसंकोच लेंगे । पुरुष युवावस्था में ही वृद्ध जैसे लगने
लगेंगे, चिन्ताग्रस्त हो जायेंगे । वर्षा ऋतु में तेज हवा एवं
धूल उड़ा करेगी । लोगों का परलोक में विश्वास नहीं
रहेगा । अन्य जातियां अपने दोषों को न देखकर ब्राह्मणों
को ही दोषी बनायेंगे । ब्राह्मण क्रोध करने के सिवा और
कुछ नहीं कर पायेंगे ।

क्षत्रिय लोग अपने क्षात्र धर्म को त्याग कर वैश्य का
धन्धा करने लगेंगे । सभी लोग अपने को द्विज ही मानेंगे ।
इस युग में सज्जन एवं सद्भावी पुरुष का कोई काम नहीं
बनेगा दुर्व्यवहारी व्यक्ति को ही चारों तरफ सफलता
मिलेगी । दूध के लिए बकरी पाली जायेंगी । सभी व्यक्ति
अपने को विद्वान समझेंगे । ब्राह्मण क्षत्रिय कर्म करेंगे तथा
क्षत्रिय चोरी ढाका डाला करेंगे । ठग, शराबी व कन्या
की बिक्री करने वाले ही तथा एक से एक महान पाप
कर्मी को करने वाले ही यज्ञों का आयोजन करेंगे । ब्राह्मण
लोग धन के लालच में उनके यज्ञ का अनुष्ठान करायेंगे ।
पुत्र पिता से तथा बहुते सास से सेवायें लेंगे । शिष्य गुरु

का अपमान करेंगे विभिन्न जातियों के स्त्री पुरुषों का आपस में सम्बन्ध होने लगेगा । वे सम्मानित होंगे । स्त्रियां पर पुरुषों से तथा पुरुष पर-स्त्रियों से दुष्कर्म करेंगे । कोई स्वस्थ नहीं होगा । और न मानसिक कष्ट से मुक्त होगा । सभी आपस में लड़ते रहेंगे । भलाई का बदला बुराई से मिलेगा ।

—:०:—

राजा जनमेजय का यज्ञ

जब महर्षि व्यासजी ने जनमेजय को भूत व भविष्य की बात बताई तो वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने महर्षि के वचनामृत की भूरि-भूरि प्रशंसा की । धर्म, अर्थ काम से युक्त वीरों के उत्साह को बढ़ाने वाले तथा करुण एवं रोचक वृत्तान्त को सुनकर सभी आनन्दित हुए । महामुनि व्यासजी फिर कभी आने की बात कहकर वहाँ से विदा हो गए ।

कुछ समय उपरान्त राजा जनमेजय ने विधिवत अश्व-मेध यज्ञ की दीक्षा ली । जब अश्वमेध यज्ञ में घोड़े को बलि दी गई तब काशी नरेश की पुत्री वपुष्टसा जो कि सर्वाङ्ग सुन्दरी थी वह वहीं पर जाकर बैठ गई । इन्द्र

देव देखकर मोहित हो गए । तब सूक्ष्म रूप में घोड़ों के शरीर में प्रवेश कर रानी के संग को प्राप्त कर लिया । इससे क्रोधित होकर राजा ने रानी से कहा— यह घोड़ा ही तेरे काल का कारण बनेगा । ज्ञान सम्पन्न अध्वर्यु ने इन्द्र के कुमनोभाव को राजा जनमेजय से कहा । तब राजा ने इन्द्र को शाप दिया कि यदि मेरे यज्ञ-फल, तप फल अथवा प्रजा पालन का कुछ भी धर्म फल बचा हो तो मेरे उसी धर्म फल से कोई भी अश्वमेध यज्ञ को कराने वाला क्षत्रिय इन्द्र को नहीं पूजेगा तथा क्रोध के आवेश में राजा ने वहां आये ऋत्विक् ब्राह्मणों को तत्क्षण ही सपरिवार राज्य से बाहर चले जाने को कहा । ऋत्विज गण भी क्रोधित हो गए और वहां से चल दिए । फिर जनमेजय ने अन्तःपुर में जाकर अपनी रानियों से वपुष्टमा रानी को बाहर निकाल देने का आदेश दिया । बोले—इसके कुकर्मों से मेरा सम्मान, गौरव एवं यश सब कुछ नष्ट हो गया । इस दुष्टा का अब मुख देखना महापाप है ।

इस प्रकार राजा वपुष्टमा के लिए कटु वचन बोल ही रहे थे कि वहां गन्धर्व राज विश्वासु आकर राजा से बोले—हे राजन ! इन्द्र ने आपके अश्वमेध यज्ञ का पूरा होना पसन्द नहीं किया । इसलिए उन्होंने रमा नाम की अप्सरा को वपुष्टमा बनाकर आपकी पत्नी बना दी ।

इसीलिए रम्मा ने काशीनरेश की पुत्री के रूप में जन्म लिया । यह रानी वपुष्टमा दुष्टा नहीं है नारियों में रत्न रूपा है । आपके यज्ञ को नष्ट करने की चाल तो इन्द्र ने की थी । उनको भय था कि आप सौ अश्वमेध यज्ञ पूरा करके उसके प्राप्त फल से कहीं इन्द्र का सिंहासन न छीन लें । इसलिए उन्होंने आपके यज्ञ को पूरा नहीं होने दिया । आपने इस रहस्य को न समझकर सभी ब्राह्मणों का अपमान किया है जिससे ब्राह्मणों सहित आप इन्द्रत्व के फल से वंचित हो गए । उन्होंने एक ही छल में ब्राह्मणों को व आपको दोनों को जीत लिया । इसके लिए आप न इन्द्र को दोषी ठहरावें न वपुष्टमा को ही । यह सब काम काल के वशीभूत होकर हुआ है । काल के प्रभाव को रोक पाने में कोई भी समर्थ नहीं है ।

इन्द्र के विरोधी होकर आप सुखी जीवन नहीं बिता सकते । इसलिए आप वपुष्टमा को निष्कलंक समझें तथा इसको त्यागने का विचार त्याग दें । इसी में आपकी भलाई है । जनमेजय ने विश्वासु के वचन पर विश्वास कर अपने क्रोध को शान्त किया एवं वपुष्टमा को पवित्र मानकर उसे त्यागने का विचार त्याग दिया । ब्राह्मणों के प्रति अपने द्वेष को त्याग दिया । फिर दान व यज्ञ पूर्ववत् करने लगे । एवं व्यास जी के वचनों को सत्य मानकर कि काल

को गति का उल्लंघन नहीं हो सकता । फिर कभी उदास नहीं हुए ।

—:०:—

सनातन ब्रह्म

वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय से आगे कहा कि परम ब्रह्म का स्वरूप जो कि पंचेन्द्रियों द्वारा अज्ञात है । उसका स्वरूप सांख्य सिद्धान्त के अनुसार निम्न प्रकार है । सूक्ष्म एवं स्थूल जगत के कारण परम पुरुष अविनाशी है, वह सदा ही पूर्ण है । तथा अहंकार तत्त्व एवं ब्रह्मा की उत्पत्ति भी इन्हीं से है । परम ब्रह्म किसी से उत्पन्न न होते हुए भी वह सर्वत्र विद्यमान रहता है । इसी कारण इन्हें विभु व नारायण भी कहा जाता है । इनके हाथ, पैर, सिर एवं नेत्र सभी दिशाओं में विद्यमान हैं अर्थात् संपूर्ण विश्व पर छाया रहता है । जिस प्रकार लकड़ी में स्थित अग्नि दिखाई नहीं देती । ठीक उसी प्रकार विश्व में सत् और असत् जिसका कारण ब्रह्म ही है प्रत्यक्ष दिखाई नहीं पड़ता ।

काल की भी दृष्टि से ब्रह्म ही भूत भविष्य एवं वर्तमान काल के रूप में परिवर्तित होता रहता है । वही सभी

लोकों एवं जीवों के स्वामी तथा परम आश्रय एवं रक्षयिता है। इस ब्रह्म से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना होती है। यह ब्रह्म अव्यक्त होते हुए भी पाँच सूक्ष्म भूतों की उपाधियां ग्रहण करके सृष्टि रचना का कारण बन जाता है। सृष्टि के प्रारम्भ में मात्र हवा ही रहती है फिर ब्रह्मा जल की रचना करते हैं। तत्पश्चात् प्राणियों से युक्त विश्व की रचना करने के लिए जल और भूमि को अलग-अलग कर देते हैं। ज्योति स्वरूप नारायण ही उस समय आकाश स्वरूप थे उन्हीं से विश्व-सृष्टि ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई। जल से निकली पृथ्वी से ही टूटकर सूर्य प्रकट हुआ जो तेजपूर्ण था। सूर्य मंडल से टूटकर एक दूसरा मंडल उत्पन्न हुआ। जो अपनी सौम्यता के कारण सौम्य मण्डल कहलाया।

सोम मण्डल से पवन रूप तत्व निकला जो सब प्रकाशक एवं ज्योतिमय था यही संसार में 'वेद' नाम से जाना गया। नारायण ने अपनी इच्छा से वेदोक्त सनातन पुरुष को प्रकट किया। उस सनातन पुरुष का द्रव भाग जल, ठोस भाग पृथ्वी, पीला भाग आकाश, ज्योति भाग नेत्र और शरीर को सम्पन्न करने वाला वायु ही था। इस प्रकार अव्यक्त ब्रह्म से पंचभौतिक विश्व की उत्पत्ति हुई।

इन्द्रियों के व्यसनो में आसक्त प्राणी ब्रह्म ज्ञान की ओर आकर्षित नहीं होते, बल्कि इस संसार की माया में ही लिप्त रहते हैं। परन्तु जो प्राणी इन्द्रियों को वशीभूत करके ब्रह्मयोग की साधना करते हैं। वे ही प्रलय के बाद परमानन्द की स्थिति में स्थित हो जाते हैं इसीलिए ब्रह्म ज्ञानी पुरुष इन्द्रियों के सुखों में लिप्त नहीं होते। उन्हें दुःख का कारण जानकर त्याग देते हैं।

पृथ्वी के मध्य भाग को विदीर्ण करके सूर्य निकलता है तो वहां छिद्र हो जाता है। उस छिद्र के स्थान पर ही सुमेरु व मैनाक पर्वत उपस्थित हो जाते हैं। वेदांत के अनुसार ज्योतिमय परम पुरुष के विग्रह को ब्रह्ममय तेज कहते हैं। सुमेरु पर्वत के शिखर की ऊंचाई सो हजार योजन एवं विस्तार इससे चौगुना बताया गया है। अर्थात् इस पर्वत के विस्तार को नाप जोखकर पाना कठिन है। तान्पर्य अनन्त है।

जिस ब्रह्म को तीनों में व्याप्त, अव्यक्त एवं यज्ञ में प्रतिष्ठित कहते हैं उसे योगी पुरुष प्रत्यक्षतः अपनी अन्तरात्मा में ही स्थित देखते हैं। वही ब्रह्म-स्थूलरूप, मन रूप, एवं बुद्धि रूप विश्व को रचकर सबसे पहले स्त्री पुरुष की रचना करते हैं। वही विश्वरूप भगवान् आदि देवर्षियों के रूप में विपुल भोग करता हुआ सर्वत्र विद्यमान है।

जब साधक सांसारिक विकारों से पूर्णरूपेण रहित हो जाता है तब यह ब्रह्म दर्शन शीघ्र ही कर लेता है । एवं सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है । सनातन ब्रह्म की प्राप्ति कर्मयोग एवं ज्ञान योग के द्वारा ही सम्भव है । जो साधक अनासक्त भाव से कर्म करता है व निश्चित ही मोक्ष को प्राप्त करता है । फल की इच्छा से कर्म करने वाले प्राणी निश्चय ही सांसारिक मोह में बंध जाते हैं । और फल प्राप्ति की कामना को त्याग कर कर्म करने से इन्द्रियों के बन्धन से मुक्त होकर पर पद को प्राप्त करते हैं उसका पुनर्जन्म नहीं होता ।

—:०:—

सनातन धर्म का प्रमाण

वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय को ब्रह्मयोग की साधना में आने वाले विघ्न बाधाओं के विषय में कहा कि पाँचों इन्द्रियों को वशीभूत करके जो साधक सनातन ब्रह्म का ध्यान करता है वह निश्चय ही दूरदर्शन, दूर श्रवण आदि योग के ऐश्वर्य को प्राप्त करता है । यही योग मार्ग में सर्वोच्च बाधा है । शरीर में स्थित नौ द्वारों को काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि ढके रहते हैं । साधक को साधना

के समय ललाट के अन्दर एक गहरा धुआं सा उठता है जो कि समय-समय पर नीला, लाल, पीला, श्वेत, वैदूर्य पद्म व स्फटिक मणियों के रंग के कबूतर के रंग के, इन्द्र गो, चन्द्र किरण, इन्द्र धनुष आदि विभिन्न रंगों का आकाश में मेघ सदृश छाया हुआ प्रतीत होता है । फिर यह धुआं वशीभूत होकर जल बरसाता है । पृथ्वी गीली हो जाती है । उसके बाद ऐसा प्रतीत होता है कि मस्तक में भयंकर आग लगी हो तथा योगी के शरीर से बहुसंख्य चिनगारियां निकलती हुई प्रतीत होती है । उस समय जितना ही वर्षा जल गिरता है उतना ही शरीर में दाह तीव्र होता है । उसके बाद भयंकर वायु चलती हुई प्रतीत होती है । परन्तु कुछ समय बाद दोनों ही शांत हो जाते हैं । तीव्र वायु के वेग बहुत ही भोषण होते हैं । इस प्रकार अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश आदि तत्त्व एक दूसरे में मिलकर नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं । ये सब अनुभव ब्रह्मा के कारण ही होता है ।

साधक की भृकुटि के मध्य में ब्रह्म का जो दर्शन होता है । उसे ही सूक्ष्म एवं विराट कहते हैं । इस अवस्था में साधक भगवान के एक अंग के रूप में ही प्रतिष्ठापित हो जाता है । साधक को उस समय सांसारिक दुःख सुख का ज्ञान नहीं रहता । वह सर्वभूतमय हो जाता है । जो

साधक कर्म बन्धन से मुक्त होकर इन्द्रियों के बन्धन को तोड़ देते हैं वही परम मोक्ष को प्राप्त करते हैं। परन्तु मात्र यज्ञ हवन होम आदि में ही व्यस्त साधक मोक्ष रूपी परम पद को प्राप्त नहीं होता। बल्कि उसे इसके फल को भोगने के लिए पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

इस प्रकार सृष्टि की रचना में धुये से मेघ, मेघ से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से फल, और फल से रस की उत्पत्ति होती है और रस से प्राणियों में प्राण की प्रतिष्ठा होती है यद्यपि ब्रह्म अव्यक्त है। परन्तु वास्तव में वह माया एवं विद्या से युक्त होकर सभी जीवों में विद्यमान रहता है और जीव सांसारिक बन्धनों में पड़कर माया के वशीभूत होकर उस ब्रह्म को पहचानने में असमर्थ होता है। परन्तु ब्रह्मध्यानी योगी पुरुष की अन्तरात्मा पवित्र एवं निर्मल हो जाने पर वह अपने ज्ञान चक्षु से ब्रह्म का दर्शन पाने में समर्थ होता है।

फिर वैशम्पायन जी कहते हैं। हे राजन ब्रह्माजी इस सृष्टि को हजारों बार रचते हैं और नाश करते हैं। ब्रह्मा जी का युग बारह हजार वर्षों का होता है। इसी को ब्रह्मयुग या महायुग कहते हैं। इस युग का अन्त में कलिकाल उपस्थित होकर सभी का संहार कर देता है। सभी पदार्थ सूक्ष्मति सूक्ष्म होकर ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं।

कर्म फल

वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय से अन्य युगों में ब्रह्म प्राप्ति का वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि परम ब्रह्म ऋद्धियों सहित योग में आसक्त भाव से ब्रह्म रूप ने अवतीर्ण होकर स्थाणु की तरह दृढ़ रूप से ब्रह्मासन पर सुशोभित होते हैं । ब्रह्मा के रजोगुणी होने पर सृष्टि की अधिकता होती है एवं मोक्ष पद की तरह ज्ञान पद के विषय में भी ब्रह्म अनुरक्त होते हैं साधक को वेदात्मक ब्रह्म यज्ञ का अनुष्ठान करने से विपुल ज्ञान एवं ऐश्वर्य को सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के रूप में प्रयुक्त करना चाहिये न कि निजी स्वार्थ में ।

साधक के विकार रहित साधन करने से सर्वप्रथम आकाश रूप ऐश्वर्य का उदय होता है जो विशुद्ध रूप से ब्रह्म का ही स्वरूप होता है । ब्रह्म यज्ञ की साधन से परंब्रह्म में आकाश रूपी ऐश्वर्य का ज्ञान होने पर उसे योगी लोग वायु कहते हैं । इसी तरह अग्नि आदि तत्वों का भी ज्ञान होता है । विकारों के निरोध होने पर योगी शरीर से अलग होकर अदृश्य रूप में अपने शरीर को सूक्ष्माति सूक्ष्म बनाकर आकाश में विचरण करने लगता है जिसे कोई भी नहीं देख सकता । यदि उसके दर्शन करने में कोई समर्थ होगा तो मात्र श्रेष्ठ साधक ही ।

विद्वान् साधक 'ॐकार' को चैतन्य तत्त्व के साथ ही सभी प्राणियों में विद्यमान मानते हैं । ॐकार को परब्रह्म के बराबर ही स्वीकार किया है । ब्रह्म रूपरहित रहकर भी पंच महाभूतों के साथ मिलकर रूपमय हो जाता है और सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त रहता है । पवित्र आत्मा वाले साधक ब्रह्म का ध्यान कर उत्कृष्ट वैष्णव-पद को प्राप्त करता है । श्रेष्ठ साधक वेद वाणी पर अपनी सच्ची श्रद्धा भाव रखकर ब्रह्मयोग एवं विष्णु भगवान की आराधना दोनों एक साथ करते हैं । वैदिक तत्त्वज्ञान के अनुसार ब्रह्म व विष्णु में कोई अन्तर नहीं है । ब्रह्मज्ञान की साधना करने में साधक को भयंकर विघ्नबाधाओं का सामना करना पड़ता है । उदाहरणार्थ कभी ऐसा प्रतीत होना जैसे गहरे जल में डूब गए । ऊपर कभी अत्यन्त गर्म तथा कभी कड़ाके की सर्दी अनुभव होने लगती है । कभी ऐसा प्रतीत होता है कि महार्णव में निमग्न होते हुए सभी कुछ भस्म हुए जा रहा है । कभी किसी बड़ी नदी में डूबता हुआ, कभी जल में पड़ा हुआ, कभी अत्यधिक शीत को सहन करता हुआ एवं कभी भोजन का भी महान् अभाव प्रतीत होता है । कभी सिर पर उज्ज्वल धारा गिरती हुई, कभी सफेद व पीले रंग की बिजली के सबूश चमक आदि नाना प्रकार के विकार अनुभव होते

हैं । परन्तु जो साधक इन विकारों से प्रभावित नहीं होता वह अपने साधना मार्ग में अग्रासर होते हुए ब्रह्मज्ञानी होकर सिद्धि को प्राप्त करता है । तथा योग साधना के बल पर नाना प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है । इस तरह ब्रह्म योगाभ्यास के साधक का चित्त स्वयं ही शांत व स्थिर हो जाता है । परन्तु अक्समात् ही भयंकर विकार सामने आने लगते हैं । उदाहरणार्थ—क्रोधी, विभत्स आकृति वाला पीले रंग के नेत्र वाला पुरुष अभी-अभी लट्ठ मारना चाहता हो प्रतीत होता है, ऐसा लगता है मानो वह आँखें निकाल लेना चाहता हो, जीभ काट लेने की इच्छा रखता हो एवं भयंकर विशाल मुंह फैलाये भीषण गर्जना करते हुए भय उत्पन्न करता जान पड़ता है । उसी समय कुछ क्षण बाद ही वह पुरुष अपना रूप व भावों को बदल कर नाच गान करते हुए साधक को हर प्रकार से प्रसन्न करना चाहता है, सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर मोहित करने की चेष्टा करता है । यदि साधक इन किसी भी प्रकार के विकारों से न भयभीत होता और न विचलित ही, अन्त में वह निश्चय ही सिद्धि को प्राप्त करता है ।

ये योगी लघिमा सिद्धि को प्राप्त कर जहां कहीं भी चाहें इच्छानुसार आकाश में विचरण करते हैं । ये ज्योति स्वरूप धारण कर सूर्य और चन्द्रमा से संलग्न होकर ध्रुव नक्षत्र को केन्द्र मानते हुए घूमते हुए क्षण, लव, मुहूर्त,

कला, काष्ठा, दिवा, रात्रि, निमेष, उन्मेष, अर्द्धमास, मास, ऋतु, सम्बत्सर, नक्षत्र एवं विशेष कर ग्रहों की मति प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु जो योगी साधक सांसारिक विकारों में फंस जाते हैं। वे अपनी साधना मार्ग से पतनोन्मुख हो जाते हैं, संसार में अपमानित होते हैं। परन्तु जो साधक समस्त विघ्नों को टाल देते हैं वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं। तथा जब तक वे शरीरस्थ रहते हैं तब तक जीवन मुक्त होकर दिव्य पदार्थों का सुखोपभोग करते हैं और शरीर त्यागने के पश्चात् श्रेष्ठ अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं।

—०—

भगवान विष्णु एवं मधु के मध्य युद्ध

अत्यन्त ही शक्तिशाली व पराक्रमी मधु नामक दैत्य ने प्रह्लाद के वचनों के अनुसार इन्द्र के राज्य पद को प्राप्त करने के लिए इन्द्र को पाशास्त्र में बांधकर पर्वत शिला के मध्य बंदी बना लिया। तथा भगवान विष्णु को युद्ध के लिए ललकारा। कश्यप ऋषि के पुत्र दो दलों में विभक्त हो गये। एक दल दैत्य पक्ष तो दूसरे दल, देव पक्ष की ओर से संग्राम में सम्मिलित हो गये। जब दैत्य

सेना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर रणक्षेत्र में उपस्थित हो देवताओं को युद्ध के लिए ललकारने लगी । तब देव पक्ष की तरफ से गन्धर्व और किन्नर प्रसन्नता पूर्वक गायन, वादन व नृत्य करने लगे । वीणा के मधुर भंकार पर दैत्यों के सहित दैत्यराज मधु भी मोहित हो गया । उसी समय भगवान् विष्णु ने भी मन्दर पर्वत में प्रवेश किया । ब्रह्माजी आदि ऋषिगण सभी अदृश्य हो गये । तभी मधु ने क्रोध से अचानक भगवान् विष्णु की कनपटी पर जोर का घूँसा मारा जिसे उन्होंने सरलता पूर्वक सहन कर लिया । परन्तु तत्क्षण ही विष्णु भगवान् ने भी दैत्य की छाती पर जोर का मुष्टिका प्रहार किया । मधु मुख से रक्त का वमन करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

दैत्यराज मधु जब होश में आया । तब पृथ्वी से उठ कर भगवान् विष्णु को गाली गलौंच करने लगा । विष्णु भी उसे कटु वचन बोले । फिर दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा । बाहुबल, रण-चातुर्य व सत्य पराक्रम में दोनों ही एक दूसरे से बीस पड़ते थे । उन्नीस नहीं । दोनों ही मद्-मस्त हाथी की तरह लड़ रहे थे । दोनों ने ही एक दूसरे को घायल करके शरीर को रक्त से लथपथ कर दिया था । दोनों ही महा भयंकर युद्ध कर रहे थे । तभी आकाशस्थ ऋषि व सिद्धगण भगवान् विष्णु की स्तुति

निम्न प्रकार करने लगे । यथा --

शुश्रुवुश्चांतरिक्षेऽय सर्वभूतानि पुञ्करे ।
 सिद्धानां वदन्तोन्मुक्ताः परया वर्ण सम्पया । २३ ।
 स्तुतयौ विष्णुसंयुक्ताः सत्या सत्यपराक्रमे ।
 शरीरं धातुसंयुक्तं संयुक्तं चेतनेन च । २४ ।
 तद्ब्रह्मा वन्द्रिययुक्त तेजोभूतं सनातनम् ।
 ध्रुवं तिष्ठन्ति भूतास्ते सूक्ष्मे प्रलयतां गते । २५ ।
 पुनश्चोद्भवते सूक्ष्मं बहुरूपे मनेकधा ।
 प्रबोध्य भावं भूतानां त्रिषु लोकेषु कामदः । २६ ।
 सुरूपो बहुरूपास्तां लोमान्संचरते वशी ।
 मानसी तनुतास्थाय वह्मिः कारणांतरः । २७ ।
 योगात्मा धारयन्नुर्वी नागात्मानं दिवंधरः ।
 ब्रह्मभूतं परं चैव सूक्ष्मेणात्मानमीश्वरः । २८ ।

हे प्रभो ! इस पञ्चभौतिक शरीर में आत्म रूप से जो विद्यमान है, वही आप चिन्मय ब्रह्म और देह तथा इन्द्रियों वाले प्राणी के रूप में स्थित हैं । यही पंचभौतिक उपादान प्रलय के उपस्थित होने पर सूक्ष्म रूप ग्रहण कर आप भगवान में ही विलीन होते हैं तथा वह सूक्ष्म उपादान विभिन्न जीवों को उत्पन्न करके स्वयं निर्लिप्त भाव से सर्वत्र रमण करते हैं । वही आप योगात्मा दुष्टों के दुश्मन अर्थात् दुष्टों के विनाश हेतु एवं सज्जन पुरुषों के पालन

करने हेतु आप पृथ्वी पर अवतार लेते हैं । यह आप भी भूत के धारण करने वाली पृथ्वी, शेष संज्ञक अनन्त, स्वर्ग के पालक इन्द्र तथा पंचमहाभूत हैं ।

इस प्रकार सिद्ध गणों द्वारा स्तुति किए जाने के पश्चात् भगवान् विष्णु ने हयग्रीव का रूप स्मरण किया । फिर देवताओं के कल्याणार्थ भगवान् विष्णु ने भयंकर विशाल रूप धारण कर दैत्यराज सधु दानव को सदा-सदा के लिए मूर्छित कर समाप्त कर दिया ।

—:०:—

समुद्र मंथन

समुद्र मंथन के सम्बन्ध में वैशम्पायन जी ने जनमेजय से कहा—हे राजन ! त्रेतायुग के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी ने प्रजापति को ऋषियों के परासर्श से राजगद्दी पर प्रतिस्थापित किया । उनकी शासन व्यवस्था से सभी सन्तुष्ट थे तथा सब प्रकार से सुखी थे । सभी हृदय से राजा को धन्य-धन्य कहते थे । वसन्त ऋतु का समय आने पर सभी तपस्या में लीन देवगण विभिन्न व्रतों को करके अति दुर्बल हो गये थे । तथा गन्ध मादन पर्वत पर निवास करते थे । उस समय शीतल मन्द पवन के साथ पुष्पों से

मन्द सुगन्ध निकल रही थी । उस मतवाली सुगन्ध से सभी देवता व दैत्य मद मस्त होकर उन्मत्त हो रहे थे । पुष्प भी हवा के झोंकों के साथ-२ सभी दिशाओं को फैल रहे थे ।

सुगन्धित पुष्पों से मोहित होकर दैत्यगण विचार करने लगे कि जिस वृक्ष का पुष्प इतना सुगन्धित व सुन्दर है तो उसका फल कितना मधुर व सुगन्धित होगा । जिस प्रकार शरीर धारी के शुभाशुभ कर्मों का अनुमान से ज्ञान होता है वैसे ही अनुमान करके हम समुद्र में विभिन्न प्रकार के औषध आदि को डालकर मन्दर पर्वत के द्वारा उसे मथेंगे । यथा—

अनुमानेन विज्ञेयाविविधाः कर्म बुद्धयः ।

शुभाश्चैवाशुभाश्चैव बुद्धिप्राणेन देहिनाम् । १० ।

तस्माद्वयं पयोमध्ये औषध्यौ निर्मयामहे ।

मन्दरेण विशालेन बलिना कामरूपिणा । ११ ।

पुनःश्च—

समुद्रमभिसंरम्भान्मघ्नीमः सोमजं जलम् ।

पीत्वा च सहिताः सर्वे प्रस्थिताः कामरूपिणः १२ ।

अर्थात् समुद्र से जो अमृत प्राप्त होगा । उसे पीकर हम लोग अमरता को प्राप्त होंगे । इस कार्य के सम्पादन में भगवान विष्णु हमारी सहायता करेंगे फिर हम लोग

शत्रुओं को परास्त करके पृथ्वी एवं स्वर्ग का सुख भोगेंगे । तथा गन्ध मादन पर्वत पर स्थित वृक्षों को शाखा, पत्र, पुष्प व फल सहित उखाड़ कर पृथ्वी पर ले जायेंगे । ऐसा विचार कर वे मन्दराचल पर्वत को उखाड़ने लगे । परन्तु वह टस से मस नहीं हुआ । फिर सभी दैत्य घुटने के बल टेक कर ब्रह्माजी की शरणागत होकर स्तुति करने लगे ।

ब्रह्माजी विश्व-कल्याणार्थ आकाश से बोले—हे दैत्यों ! इस पर्वत को उखाड़ना मात्र तुम लोगों के बल की बात नहीं है । इसे उखाड़ने के लिए आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, देवता, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर आदि से मिलकर पुनः प्रयत्न करो । सफलता अवश्य मिल जायेगी । दैत्य देवताओं की सहायता प्राप्त कर पर्वत को उखाड़ने लगे । पर्वत उखड़ गया । फिर वे लोग पर्वत की मथानी बना कर एक हजार वर्षों तक समुद्र को मथते रहे । इससे समुद्र मंथन में धन्वन्तरि लक्ष्मी, वारुणी, कौस्तुभमणि, चन्द्रमा, उच्चैःश्रवा घोड़े के बाद अमृत निकला । जब इस अमृत को देवताओं ने पीना चाहा । तभी देवताओं की कतार में बैठे राहु की ओर संकेत करते हुए चन्द्रमा ने कहा—कोई हमारे बीच दैत्य तो नहीं बैठा है । तभी भगवान् विष्णु ने संकेत पर चक्र निकाला और राहु को दो भागों

में काट दिया । फिर पृथ्वी ने व राजा इन्द्र ने अमृत कुम्भ को हरण कर दिया ।

—:०:—

भगवान् वामन व राजा बलि

दैत्य व राक्षस देवताओं को युद्ध में परास्त कर तीनों लोकों में राज्य करने लगे । तथा देवतागण तपस्या में रत हो गए । दैत्यराज राज बलि दान, तप व पराक्रम के लिए प्रसिद्ध थे । इनका यज्ञ काफी अधिक दिनों तक चला । इन्होंने अपार धन राशि खर्च करके राजसूय यज्ञ प्रारम्भ किया । यज्ञ के वेदज्ञ ब्राह्मण, यती, सिद्ध ऋषि मुनि आदि अन्यान्य प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे । यज्ञ का प्रारम्भ महर्षि शुक्राचार्य ने अपने पुत्र के सहयोग से प्रारम्भ कराया । तभी भगवान् विष्णु वामन रूप धर कर राजा बलि के यहां आये और भिक्षा मांगी । भगवान् विष्णु ने राजा बलि से तीन कदम भूमि मांगी । राजा बलि ने देना स्वीकार कर लिया । अतः भगवान् विष्णु ने अति विशाल रूप धर कर तीन डग में तीनों लोकों को नाप दिया । इस प्रकार तीनों लोकों में दैत्यों का राज्य समाप्त हो गया । देवताओं का राज्य स्थापित हुआ ।

विष्णु ने इन्द्र को पुनः तीनों लोकों का राज्य सौंप दिया ।

इन्द्र ने सभी देवताओं को सोमरस का पान कराया । तथा ब्रह्मा ने इन्द्र को अमृत दिया जिसे पीकर इन्द्र अमर हो गए । ब्रह्माजी ने उसी समय शंख नाद करके इन्द्र के त्रैलोक्याधिपति होने की घोषणा कर दी । जिससे चारों तरफ हर्ष का वातावरण छा गया ।

भगवान वाराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार

वेद शास्त्रों के कथनानुसार सृष्टि के पूर्व यह विश्व स्वर्णमय अण्डे के समान था । एक हजार साल बाद भगवान ने अण्डे का मुख ऊपर करके दो भाग कर दिये । कुछ समयोपरान्त भगवान ने सृष्टि की इच्छा से अण्डे का मुख नीचे करके उसके आठ भाग कर दिए । इस तरह से वह अण्डा अनेक खण्डों में विभाजित हो गया । अण्डे का ऊपरी छेद आकाश बना तथा नीचे का भाग रसातल बना देवताओं की उत्पत्ति हेतु जो अण्डा बना उसके सभी ओर आठ छेद बने । वही छेद दिशा और विदिशा बने । वि भाग के समय जो छोटे टुकड़े बचे, वे सभी मेघ बन गये ।

उस अण्डे के तरल अंश से पृथ्वी चारों तरफ फैल गई । देवताओं की उत्पत्ति हेतु स्वर्णिम अण्डे के विभाजित होते समय निकलने वाले जल से अग्नि की उत्पत्ति हुई । उसके शेष जल से दिशा, विदिशा, अन्तरिक्ष और स्वर्ग आदि स्थान सिञ्चित हुए । वह जल जहां-जहां गिरा वहीं पर्वत व वन उत्पन्न हो गए । जिससे पृथ्वी का धरातल असमान हो गया । इन असंख्य विशालकाय पर्वतों व वनों के कारण तथा नारायणात्मक दिव्य जल से पृथ्वी बोझिल होकर कष्ट पाने लगी । अत्यधिक भार से बोझिल पृथ्वी रसातल में नीचे की ओर धँसने लगी । तभी पीड़ित पृथ्वी आर्द्र स्वर में भगवान विष्णु की स्तुति करती हुई बोली—

त्रिविक्रमायातिविक्रमायहानृसिहाय चतुर्भुजायः ।
 श्रीशार्ङ्ग चक्रासिगदाधराय नमोऽस्तुतस्मै पुरुषोत्तमाय ।
 त्वयाऽऽत्मना धार्यते वे त्वया संह्रियते जगत् ।
 त्वं धारयसि भूतानि भुवन त्वं विर्भाषि च । १९ ।
 यत्त्वया धर्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च ।
 ततस्तव प्रसादेन मया पश्चात्तु धार्यते । २० ।
 त्वया धृतं धारयामि नावृतं धारयाद्दहम् ।
 न हि तद्विधते रूपं यत्त्वया न तु धार्यते । २१ ।

त्वमेव वीर नारायण युगे युगे ।
 मम भारावतरणं जगता हितकाम्य । २२ ।
 तदैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलं गताम् ।
 त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् । २३ ।
 दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
 त्वामेव शरणं नित्यमुपधामि सनातनम् । २४ ।
 तावन्मेऽस्ति भयंभूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
 शरणागामि मनसत शतशोऽप्युपलक्ष्ये । २५ ।

अर्थात् हे त्रिविक्रम ! हे महानृसिंह ! हे चतुर्भुज !
 हे शार्ङ्गधर ! हे खंग, गदा और चक्रधारी, पुरुषोत्तम !
 आपको नमस्कार है । आप ही जगत और समस्त
 जीवों के पालन कर्त्ता तथा रक्षण कर्त्ता हैं तथा आप अपने
 तेजबल के कारण सब को धारण करने में समर्थ हैं । मैं
 भी आपके ही प्रताप के कारण सब कुछ धारण करने में
 समर्थ हूँ । आपके ही कारण मुझे शक्ति प्राप्त हुई है । हे
 वीर ! हे नारायण ! आप युग २ में मेरे ऊपर बढ़े हुए
 भार का उद्धार करने के लिए अवतरित होते हैं । हे प्रभो !
 दैत्यों दानवों के द्वारा पीड़ित हुई मैं अब आपकी शरण में
 आई हूँ । क्योंकि अब मैं दानवों आदि के बोझ से एवं
 आपके तेज से क्षीण होकर रसातल में धँस रही हूँ, इसलिए
 मेरी रक्षा करिए । जब तक मैं आपकी शरण में नहीं

आती तभी तक मुझे भय रहता है, आपकी शरण प्राप्त होते ही मेरे सारे भय दूर हो जाते हैं।

पृथ्वी की स्तुति सुनकर भगवान विष्णु बोले—हे देवी ! तुम किसी प्रकार का भी भय मत करो। मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छित पूर्व स्थान पर ही स्थापित कर दूंगा। तत्पश्चात् भगवान विष्णु ने यज्ञ वाराहरूप धारण किया। उसका विस्तार दस योजन तथा ऊंचाई सौ योजन की जो देखने में विशाल के साथ-२ विकराल भी था। उसके श्वेत दाँत अत्यन्त उग्र थे। आँखें विद्युत् व सूर्य के समान, भीषण पराक्रम, उनकी कटि मोटी और ऊँची तथा अत्यंत विकसित बैल के सभी लक्षण उपस्थित थे। इस प्रकार वाराहरूपधारी भगवान विष्णु पृथ्वी का उद्धार करने के लिए रसातल में प्रविष्ट हो गए। वहाँ जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपने तीक्ष्ण दाँतों की नोंक पर रख कर बाहर लाये फिर उसे पूर्व स्थान पर स्थापित कर दिया। पृथ्वी को धारण करने के कारण विष्णु का नाम 'धराधर' है। पृथ्वी पूर्णरूपेण भय मुक्त हो गई। पृथ्वी ने आनन्दित होकर विष्णु को नमस्कार किया।

—:०:—

हिरण्याक्ष-इन्द्र युद्ध

पृथ्वी का उद्धार होने के बाद दैत्य पक्ष के पर्वतगण हिरण्याक्ष नामक दैत्य की नगरी में गये तथा हिरण्याक्ष को उन सबों ने बताया कि तीनों लोकों में देवताओं का राज्य कायम हो गया है । यह सुनकर दैत्यगणों को कष्ट हुआ तथा देवताओं से युद्ध करने की इच्छा से चक्र, अशनि खंग, भुशुण्डी, धनुष, प्राश शक्ति, मूसल और गदा आदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो गए । युद्धोन्मादित दैत्य कवच आदि धारण करके हाथियों, अश्वों रथों, ऊँटों, बैल, भैसों, गधों पर बैठ कर और कुछ पैदल ही ताल ठोकते हुए हिरण्याक्ष नामक दैत्य को घेरकर घूमने लगे ।

इन्द्र के नेतृत्व में देवता गण भी दैत्यों को युद्ध हेतु तैयार होने का समाचार सुनकर अंगुलिमाल, तूणोर, बाण आदि अन्य तीक्ष्ण शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध भेरी बजाने लगे । आगे आगे इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार होकर चल रहे थे और पीछे २ देवतागण चल रहे थे ।

युद्ध क्षेत्र में हिरण्याक्ष और इन्द्र का सामना हो गया । दैत्य ने देवराज इन्द्र पर परशु, निस्त्रिम, गदा तोमर शक्ति मूसल और भिन्दिपाल जैसे शस्त्रों की वर्षा कर ढक दिया । सभी देवतागण दैत्य हिरण्याक्ष पर टूट पड़े । परन्तु दैत्य

राज रणक्षेत्र से टस से मस नहीं हुआ । अतः सभी देव-सेना इन्द्र के पीछे भाग गई । पुनः देवताओं और दैत्यों में भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनों पक्षों के सैनिकों के किसी के हाथ, किसी के पैर, किसी की गर्दन काटने लगा, किसी का पूर्ण शरीर ही शस्त्रों के लगने से विदीर्ण होने लगा । बहुत अधिक संख्या में दैत्यगण धराशायी हो गए । कोई भी युद्ध क्षेत्र में ऐसी जगह नहीं रही । जहां रक्त व मांस के लोथड़े न पड़े हों । दैत्य श्रेष्ठ हिरण्याक्ष क्रोधित होकर मुंह से आग उगलने लगा । तथा अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा कर पूरे आकाश मंडल पर वर्षा ऋतु के बादलों की तरह छा गया । देवतागण बुरी तरह से घायल होकर धराशायी हो गए । अब क्या करना चाहिये, देवगणों को सूझ नहीं रहा था । इन्द्र भी अपने ऐरावत हाथी पर बैठे दैत्य के इस भीषण युद्ध से अवाक व स्तम्भित थे । हिरण्याक्ष ने देवताओं पर विजय प्राप्त करके समझ लिया कि मैंने तीनों लोकों पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया । खुशी में मदमत्त होकर युद्ध क्षेत्र में चारों तरफ धनुष की टंकार करते हुए घूमने लगा ।

इस प्रकार देवराज इन्द्र व देवताओं की दुर्दशा देख कर वाराह भगवान ने हिरण्याक्ष को मारने का निश्चय

किया । अतः उन्होंने चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हजारों धार युक्त चक्र को धारण किया ।

हादेवो महाबुद्धिर्महायोगी महेश्वरः ।

पठयते योऽमरैः सर्वे गुह्यै नमिभिरव्ययः । ४ ।

सदजच्चात्मनि श्रेष्ठः सद्भिर्यः सेव्यते सदा ।

इज्यसे यः पुराणैश्च त्रिलोके लोकभावनः । ५ ।

यो बैकुण्ठा सुरेन्द्राणामनन्तो भोगिनापि ।

विष्णुर्यो योगविदुषां यो यज्ञकर्मणाम् । ६ ।

अर्थात् जो महादेव, महाबुद्धि, महायोगी एवं महेश्वर कहे जाते हैं, जो सब जीवों में निवास करते हैं जगत के पूज्य की सन्त लोग सदा सेवा करते हैं, जो योगियों के लिये विष्णु, भोगियों के लिये और याज्ञियों के लिये यज्ञ हैं उन भगवान विष्णु को “यह कौन है !” मन में सोचते हुए क्रोधित लाल-२ आँखों से दैत्य ध्यान से देखने लगा । कुछ समयोपरान्त हिरण्याक्ष दैत्यों के साथ भगवान विष्णु के ऊपर घोर अस्त्रों की वर्षा करने लगा । परन्तु विष्णु को युद्ध में रञ्जमात्र भी विचलित होते न देखकर उनके वक्षस्थल पर महातेजोमय शक्ति का दैत्य ने प्रहार किया । परन्तु वाराह भगवान ने एक हुंकार मात्र से ही उस शक्ति को निष्फल कर पृथ्वी पर गिरा दिया । उसके बाद वाराह भगवान ने सुदर्शन चक्र को हिरण्याक्ष पर छोड़

दिया । दैत्यराज का सिर कट कर पृथ्वी पर गिर गया ।
दैत्यराज की मृत्यु को देखते ही शेष दैत्य चारों दिशाओं
को पलायित हो गये ।

—:०:—

नृसिंहावतार एवं हिरण्यकश्यप वध

सतयुग में दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकश्यप ने साढ़े
ग्यारह हजार वर्षों तक जल के अन्दर निवास कर कठिन
तप किया । उसके शम दम आदि गुण ब्रह्मचर्य पालन, तप
तथा नियमों को देखकर ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए । अतः वे
सूर्य के समान तेजयुक्त हंसाकार विमान पर चढ़ कर
आदित्य, वसु, मरुत, रुद्र, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा
नदी, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त, देवर्षि, सप्तर्षि, और सिद्ध
आदि के साथ हिरण्यकश्यप के पास पहुंचे । बोले—हे
सुब्रत ! मैं तुम्हारी भक्ति और कठोर तप से बहुत ही
प्रसन्न हूं । अतः तुम्हारी जो इच्छा हो वर मांगो ।

हिरण्यकश्यप हाथ जोड़कर बोला—हे सर्वलोक पिता-
मह ! आप मुझे ऐसा वरदान दें कि मुझे देवता दैत्य,
गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, मनुष्य और पिशाच आदि में
से कोई न मार सके । तपस्वी ऋषिगण मुझे शाप न दें
तथा कोई भी अस्त्र शस्त्र, पर्वत, वृक्ष सूखे या गीले पदार्थ

से भी मेरी मृत्यु न हो । स्वर्ग, आकाश पृथ्वी आदि किसी स्थान, अथवा दिन या रात्रि में किसी भी समय न मर सकूँ । यदि मैं मरूँ भी तो उसी के द्वारा जो एक ही थप्पड़ की मार से मेरी सेना के सहित मुझे मार सके । सूर्य, चंद्र वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र, दसों दिशाओं, काम, क्रोध, वरुण, और कुबेर मैं ही हो जाऊँ अथवा उनके अधिकार मुझे ही मिल जायें । साथ ही जितने भी दिव्यास्त्र हैं वे सभी साक्षात् रूप में मेरी सेवा में तत्पर रहें । यही मेरी कामना है ।

ब्रह्मा जी ने कहा—हिरण्यकश्यप ऐसा ही होगा, तुम्हारी सभी मनोकामनायें पूर्ण होंगी । कहकर ब्रह्मलोक को चले गए । ब्रह्मा जी द्वारा दैत्य को इस प्रकार के वरदान देने से ऋषि, देवता, गंधर्व आदि घबरा गए । सभी एकत्र होकर ब्रह्माजी के पास गए और बोले—हे प्रभो ! आपने तो दैत्यराज को ऐसा वर दिया है कि वह हम सभी को विनष्ट कर देगा । अब आप हम लोगों पर प्रसन्न होकर कृपया उसकी मृत्यु का भी कोई उपाय बतलाइये । देवताओं की चिन्ता व प्रार्थना को सुनकर ब्रह्माजी बोले—आप लोगों को चिन्ता नहीं करनी चाहिये । इसके तप का फल तो मिलेगा ही मिलेगा । इसका तप क्षीण हो जाने पर भगवान् विष्णु निश्चय ही इसे मार देंगे । ब्रह्मा जी द्वारा इस सांत्वना को सुनकर देवगण हर्षित हुए ।

हिरण्यकश्यप ने गर्व में चूर होकर सभी पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया । तथा तीनों लोकों पर अपना अधिपत्य कायम करके देवताओं सहित इन्द्र को भी पद-च्युत कर दिया । देवताओं के यज्ञ भाग का अधिकार छीन कर दैत्यों को उसका अधिकारी बनाया । हिरण्यकश्यप से पीड़ित सभी देवगण आदित्य, विश्वेदेवा, वसु, रुद्र, यक्ष, ब्राह्मण आदि एकत्र होकर भगवान विष्णु की शरण में गये । हाथ जोड़कर करुण विनय करते हुए हिरण्यकश्यप के अत्याचारों का वर्णन कर उसके उत्पीड़न से मुक्त कराने की सभी ने प्रार्थना की । देवताओं की प्रार्थना पर आर्द्र होकर भगवान विष्णु ने सभी को भय मुक्त करते हुए शीघ्रताशीघ्र दैत्य को सेना सहित नाश करने का आश्वासन दिया । उसके बाद विष्णु ने हिमालय पर्वत पर जाकर हिरण्यकश्यप को मारने के लिए नृसिंह रूप धारण करने का निश्चय किया ।

भगवान विष्णु नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप के राज दरबार में पहुंच गये । उनका नृसिंह रूप सूर्य के समान तेजोमय तथा चन्द्रमा के समान सौम्य था । आधा शरीर मनुष्य जैसा तथा आधा देह सिंह जैसा था । दैत्य-राज की सभा भी आकाश में बनी थी जो सौ योजन विस्तार वाली तथा डेढ़ सौ योजन लम्बी और पांच योजन

ऊँची थी उसे इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता था । उसमें भा सब प्रकार की वस्तुयें विद्यमान थीं । उस में प्रवेश करते ही अजरत्व अमरत्व की प्राप्ति और शोक आदि से मुक्ति होती थी ।

सभा में जो भी व्यक्ति उपस्थित थे वे सभी विस्मित नेत्रों से एकटक नृसिंह भगवान को देख रहे थे । क्योंकि ऐसा रूप किसी ने कभी नहीं देखा था । प्रह्लाद ने भगवान का अच्छी तरह दर्शन किया । फिर हिरण्यकश्यप से कहने लगा । हे पिताजी ! आप तो दैत्यों के आदि पुरुष हैं मैंने ऐसा विचित्र रूप आज तक नहीं देखा । इस रूप को देख कर तो मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि नृसिंह के द्वारा ही हम दैत्यों का नाश होने वाला है । क्योंकि इनके शरीर में मुझे सभी देवता, समुद्र, नदी, चन्द्रमा, नक्षत्र, आदित्य, अग्नि, वरुण, कुबेर, इन्द्र, गन्धर्व, राक्षस आदि सभी दिखाई दे रहे हैं । इनके ललाट में आप में, हमारे विमान, प्रजापति मनु, धरातल, नभ, काम, क्रोध, मोह, हर्ष आदि सभी उपस्थित हैं ।

प्रह्लाद के इस प्रकार के वचनों को सुनकर हिरण्यकश्यप ने नृसिंह को पकड़ने के लिये सेवकों को आदेश दिया । तथा उससे किसी प्रकार की हानि की शंका होने पर वध कर देने का भी आदेश दिया । आदेश पाते ही

दैत्यगण नृसिंह को भयभीत करने लगे। तब नृसिंह ने एक बार घोर गर्जना की जिससे सभा में भगदड़ मच गई। यह देखकर हिरण्यकश्यप को बड़ा ही क्रोध हुआ। अतः उसने भीषण शस्त्रास्त्रों की वर्षा कर नृसिंह को ढक दिया। उसके बाद दैत्यगण पाश, खड्ग, गदा, मूसल, वज्र अशनि शिला आदि से नृसिंह पर प्रहार करने लगे। परन्तु नृसिंह भगवान सब कुछ शान्त भाव से खड़े होकर देखते रहे। पर्वत के समान दृढ़ होकर अपने स्थान से जरा भी नहीं हिले। तब राक्षस व दैत्य और क्रोधित होकर नृसिंह भगवान पर भीषण प्रलयंकारी बाणों की वर्षा करने लगे।

देवताओं द्वारा हिरण्यकश्यप के वध करने की प्रार्थना सुनकर नृसिंह भगवान ने एक भीषण गर्जना की। जिससे दैत्यों की छाती फट गई। फिर दैत्यराज हिरण्यकश्यप भीषण शस्त्रों की वर्षा करते हुए नृसिंह पर झपटा। तब शीघ्र ही नृसिंह ने ओंकार के प्रभाव से छलांग मार कर दैत्यराज का हृदय अपने तीक्ष्ण नखों से फाड़ दिया। इस प्रकार दैत्यराज की मृत्यु होने पर देवता, ऋषि, तपस्वी, आदि सभी मिलकर नृसिंह भगवान की स्तुति करने लगे।

यत्वया विहितं नारसिंहमिदं वपुः ।

एतदेवाचैयिष्यन्ति परावरविदौ जनाः ॥

मृगेन्द्रत्वं च लोकेषु वा विभो । १७।

गायन्ति त्वां मुनयो मृगेन्द्र इति नित्यशः ।

त्वप्रसादत्स्वकं स्थानं प्रतिपन्ताः स्मः वै विभो । १८ ।

हे देव ! आपके इस नृसिंह रूप का तत्त्व-ज्ञानीजन सदा ही पूजन किया करेंगे । सभी मुनियों, लोकों और प्राणियों से आपका यह मृगेन्द्र स्वरूप प्रसिद्ध हो जायेगा । और वे सदैव आपका गुणगान करेंगे । हे प्रभो ! आपकी परम दया से हमें अपने अधिकार की पुनः प्राप्ति हुई है ।

देवताओं द्वारा स्तुति करने के बाद ब्रह्माजी ने नृसिंह भगवान की निम्न प्रकार स्तुति की ।

भवानस्त्ररुभव्यक्तमचिन्त्यं

गुह्यमुत्तमम् ।

कटस्थमकृत

कर्तृ

सनातनमनामयम् । २० ।

सांख्ययोगे च या बुद्धिस्तत्त्वार्थपरिनिष्ठता ।

भगवानवेद विद्यात्मा पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः । २१ ।

परं शरीरं परमं च धामं परं च योगं परमां च वाणीम् ।

परं रहस्यं परमां गतिं च, त्वामाहुरग्रं पुरुषं पुराणम् । २२ ।

परं परस्यापि परं च यत्परं परं परस्यापि परं च देवम् ।

परं परस्यापि परं प्रभु, चत्वामाहुरग्रं च पुराणम् । २३ ।

परं परस्यापि परं प्रधानं परं, परस्यापि परं च तत्त्वम् ।

परं परस्यापि परं च धातात्वामा, हुरग्रं च पुरुषं पुराणम् । २४ ।

परं परस्यापि परं रहस्यं, परं परं यत् ।

परं परस्यापि परं तपो यत्वामा, हुरग्रं च पुरुषं पुराणम् । २५ ।

परं परस्यापि परं च गुह्यं, च परं धामम् ।

परं च योग परमं प्रभुत्वं त्वामा, हुरग्रं यं पुरुषं पुराणम् । २६ ।

अर्थात् हे देव ! आप अक्षर, अव्यक्त, अचिन्त्य, गुह्य,

सूक्ष्म, सनातन एवं अनामय हैं । सांख्य योग में जिस तत्व का निरूपण हुआ है, वह तत्व आप ही हैं आप इस विश्व की आत्मा, शास्वत, सूक्ष्म तथा स्थूल पुरुष हैं ।

आप परम शरीर, परम धाम, परम योग, एवं परम वाणी हैं । आप ही परम रहस्य, परम गति एवं पुराण पुरुष हैं । २२ । आप परमात्पर, परम पद तथा उससे भी उत्कृष्ट एवं परम तत्व और उससे भी श्रेष्ठ हैं । आप से बढ़कर अन्य कोई नहीं है । आप ही पुरातन पुरुष कहे जाते हैं । २३ । आप परम से परम तथा परमतन हैं, ज्ञानी जन आपको ही धाता एवं पुराण पुरुष कहते हैं । २४ । आप ही परात्पर, परम रहस्य तथा परम से भी परे हैं, इसलिये बुद्धिमानों ने आपको पुराण पुरुष कहा है । इस प्रकार भगवान् विष्णु ने नृसिंह रूप में देवताओं के शत्रु हिरण्यकश्यप को मार गिराया तथा अपने पूर्व रूप में होकर गरुड़ पर सवार होकर अपने धाम को चले गए ।

—:—

श्री कृष्ण का कैलाश गमन

वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय को श्री कृष्ण के कैलाश गमन की कथा को सुनाया । कैलाश पर्वत पर जाकर

भगवान् विष्णु ने तपस्या की थी तथा भगवान् शंकर का साक्षात् दर्शन किया था । कथा वृत्तान्त सुनाने से पूर्व वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन ! यह कथा अतिच्छुक, कुपढ़, क्रूर और तपहीन व्यक्तियों से कभी भी नहीं कहनी चाहिये ।

यथा—

न चाशुश्रषवे वाच्यं नृशंसायातपस्विने । १२।

इस कथा को पुण्यवान् पुरुषों के सामने कहने से अत्यन्त ही शुद्ध बुद्धि वाली हो स्वर्ग प्रदान करने वाली हो जाती है । यथा—

नानधीताय वक्तव्यं पुण्यं पुण्यवतां सदा ।

स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं च बुद्धि शुद्धि करं सदा । १२।

तदोपरान्त वैशम्पायन जी ने कथा कहनी प्रारम्भ की । बोले नरकादि दैत्यों व अन्य शत्रु राजाओं को नष्ट कर वृष्णि यादवों के साथ श्री कृष्ण द्वारका में रहकर राज्य कर रहे थे । तभी एक रात भगवान् श्री कृष्ण से रुक्मिणी शयन के समय विनयपूर्वक बोलीं हे नाथ ! आप तो सम्पूर्ण विश्व के कर्त्ता, दाता, भोक्ता और संसार के स्वामी हैं आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने में सक्षम हैं । आप अपने भक्तों पर सदा ही दया भाव बनाये रखते हैं । अतएव आप मुझे भी एक तुच्छ भक्तितन समझ कर

अपने जैसा ही बलवान, रूपवान, सर्व शास्त्रज्ञ, नीतिज्ञ एवं धर्मज्ञ सर्वगुण सम्पन्न पुत्र प्रदान करने की कृपा करें। इसकी मुझे बड़ी हार्दिक इच्छा है। आपकी कृपा से ही मैं अत्यन्त श्रेष्ठ पुत्र रत्न प्राप्त कर सकूंगी।

रुक्मिणी की बात सुनकर श्री कृष्ण बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले—हे प्राण प्रिये ! तुम्हारी यह मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। मैं तुम्हें शत्रुओं का नाश करने वाला पुत्र प्रदान करूंगा। पुत्रवान व्यक्तियों के लिए सभी लोक प्राप्त हैं। पुत्रहीन व्यक्ति के लिए कोई भी लोक प्राप्त नहीं होता। अर्थात् पुत्रहीन व्यक्ति किसी ठिकाने का नहीं होता। और यदि पुत्र कुपुत्र हो जाए तो पुत्रहीन होने से भी ज्यादा कष्ट कारक है, साक्षात् नरक है। सुपुत्र साक्षात् स्वर्ग है। इसीलिये सभी को सदा ही दयालु विनीत, धार्मिक और विद्वान पुत्र की कामना करनी चाहिये। अतः मैं तुम्हें एक धार्मिक, विद्वान व ज्ञानी पुत्र दूंगा। इसलिये श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति हेतु भगवान शंकर की आराधना करने के लिए आज ही कैलाश पर्वत पर जा रहा हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण ने गरुड़ का स्मरण किया। पक्षी श्रेष्ठ गरुड़ तत्क्षण उपस्थित हो गये। श्रीकृष्ण गरुड़ की पीठ पर बैठकर द्वारिका वासियों को सावधानी पूर्वक रहने की कहकर कैलाश पर्वत के लिए उत्तर दिशा की

ओर चल दिये । उस समय भगवान के दर्शन के लिये आकाश में देवता व गन्धर्व गण उपस्थित होकर मधुर स्वर में निम्न प्रकार से स्तुति करने लगे । यथा—

जय देव जगन्नाथ जय विष्णो जगत्पते । १३ ।

नमः परमसिंहाय दैत्यदानवनाशन ।

जापाजेय हरे देव योगिध्येय परागते । १४ ।

नारायण नमो देव कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

आदि कतैः पुराणात्मन्ब्रह्मयोगे सनातनः । १५ ।

नमस्ते सकलेशाय निर्गुणाय गुणात्मने ।

भक्तिप्रियाय भक्ताय नमो दानवनाशनः । १६ ।

अचिन्त्य मूर्तये तुभ्यं नमस्ते सकलेश्वर ।

इत्यादिभिस्तदा देवं वाग्भिरीशानमव्ययम् । १७ ।

अर्थात् हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे विष्णो ! हे जगत्पते ! आपकी जय हो । हे अजेय ! हे भूतभावन आपकी सदा जय हो । हे प्रभो ! आपको नमस्कार है । हे दैत्यों के संहारक ! परमसिंह आपको नमस्कार है, हे अजेय ! हे देव ! हे योगिध्येय ! हे हरे ! आपकी जय हो । हे नारायण ! हे कृष्ण ! हे हरे ! आप आदिकर्त्ता पुण्यात्मा, ब्रह्मयोनि एवं सनातन पुरुष हैं । आपके लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है । हे सर्वेश्वर ! हे निर्गुण ! हे गुणात्मन ! हे भक्ति प्रिय ! हे भक्त प्रिय ! हे दानव

संहारक आपको बारम्बार नमस्कार है । हे अचिन्त्य रूप ! हे सर्वेश्वर ! आपको बारम्बार नमस्कार है । इस प्रकार से देवता गन्धर्व, चारण, ऋद्धि, सिद्धि आदि ने उनकी स्तुति की ।

श्री कृष्ण सभी देवताओं व ऋषियों सहित कैलाश पर्वत के उस स्थान पर पहुंचे जहां कभी भगवान् धिष्णु ने लोक कल्याणार्थ दस हजार वर्ष तक कठिन तप किया था । तत्पश्चात् अपने शरीर को दो भागों में विभाजित करके नर और नारायण रूप में प्रकट हुए थे । वहीं पर इन्द्र ने वृत्रासुर को मार कर ब्रह्म हत्या का दोष दूर करने के लिये दस हजार वर्ष तक कठिन तप किया था । सिद्धों ने सिद्धि प्राप्त की । श्री राम ने रावण को मारकर यहाँ कठिन तप किया था । जहां जगन्नाथ केशव का नित्य निवास स्थान है । सायंकाल में पहुंच गए । उस समय वहां यज्ञ हो रहा था । अन्धेरा छा गया था । उस समय बदरी वन में श्रीकृष्ण उपस्थित हुए । तभी दीप प्रकाशमान हो गये ।

तपस्वी मुनि गण अग्नि होत्र और आतिथ्य सत्कार वाला नित्य कर्म को समाप्त कर भगवान् श्री कृष्ण के विश्राम स्थल पर पहुंच गये । जो वहां अनेक वर्षों से तपस्या में रत थे । सबने भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम

किया । श्रीकृष्ण ने सभी को उचित आसन देकर कुशल-
क्षेम पूछा । फिर मुनि गणों ने भगवान श्रीकृष्ण की निम्न
प्रकार स्तुति की—

ते च गत्वा हरिकृष्ण विष्णुमीशं जनार्दनम् ।
भक्तिनभ्रस्तदा देवं प्रणमुर्भक्तवत्सलम् । ४ ।
नमोऽस्तु कृष्ण कृष्णेति देवदेवेति केशवम् ।
प्रणवात्मञ्जगन्नाथः नताः रम शिरसा हरे । ५ ।
कृष्ण, विष्णो, हृषीकेश, केशवेति च सर्वदा ।
प्रणामप्रवणा विप्राः प्राहुरित्थं जगत्पतिम् । ६ ।
हे कृष्ण ! हे देव देव ! हे प्रणवात्मन ! हे हरे ! हे
जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है । हे कृष्ण ! हे विष्णो !
हे हृषीकेश ! हे केशव ! इस प्रकार कहकर उन बहुत से
ब्राह्मणों ने उन जगत्पति श्री कृष्ण को प्रणाम किया ।

तत्पश्चात् मुनि गण बोले—हे प्रभो ! अब हम लोगों
को क्या करना चाहिये । आप आज्ञा करें । भगवान ने
सबका कुशलक्षेम पूछा । फिर मुनियों ने फल आदि से
उनका स्वागत किया । उनके इस प्रकार के आतिथ्य
सत्कार से भगवान बहुत ही प्रसन्न हुए ।

बदरीवन में घण्टाकर्ण का भगवान से साक्षात्कार होना

भगवान श्री कृष्ण बदरीवन में गंगा जी के उत्तरी तट पर एक श्रेष्ठ आश्रम में ध्यानस्थ होकर बैठ गये । अंधेरा होने पर वातावरण में चारों दिशाओं से कोलाहल सुनाई देने लगा । आवाजें आ रही थीं—इसे पकड़ो, खाओ, और मौज करो । उन मृगों को घेर कर भगवान विष्णु, ईश्वर अच्युतानन्द यहीं हैं । हे विष्णो ! हे माधव ! हे केशव ! हे देव देव ! आदि भयंकर आवाज के साथ मृगों, भालुओं, सिंहों और कुत्तों के भौंकने की भीषण आवाज सुनाई दे रही थी । भयभीत सभी जानवर भगवान के पास आने लगे तथा पीछे-पीछे बहेलिये भी आए ।

तत्क्षण वहां चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश छा गया । उसी क्षण विभिन्न रंग रूप के भूत पिशाच भी डरावनी बोली बोलते हुए वहां आ गये । जिनमें से कुछ मांस रक्त का भक्षण कर रहे थे । उस समय एक भीषणतम पिशाचिनी आयी । श्री कृष्ण विशाल जानवरों के समूहों को देखकर आश्चर्य चकित हो रहे थे, सोचने लगे । कौन पुण्यात्मा मेरी कृपा की प्रार्थना करते हुए मोक्ष की प्रतीक्षा कर रहा है ? यह सोच ही रहे थे कि उसी समय दो भयं-

कर, विशालकाय, पिंगलवर्ण के, लम्बी जिह्वा व विस्तृत चिबुक वाले दो पिशाच उपस्थित हो गए। वे हा-हा करते हुए, मांस का भक्षण और रुधिर का पान करते हुए हे कृष्ण ! हे माधव ! पुकारते हुए पूछने लगे। इस समय भगवान् विष्णु कहाँ हैं। उनका दर्शन कब और कहाँ होगा ? दोनों राक्षस श्रीकृष्ण के पास आकर भी पहचान नहीं पाये। बोले—तुम कौन हो ? किसके पुत्र हो तथा कहाँ से आए हो ? इस जंगली जानवरों से युक्त वन में तुम्हारे आने का क्या कारण है ? क्योंकि यहाँ कोई मनुष्य तो रहता नहीं केवल हिंसक जानवर ही हैं। तुम्हारे श्याम वर्ण कमल नयन को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो आप साक्षात् विष्णु ही हैं। तुम देवता यक्ष, गन्धर्व, किन्नर इन्द्र, कुबेर, यम व वरुण में से कौन हो ? हम लोग तुम्हारा परिचय जानना चाहते हैं।

भगवान् श्री कृष्ण अपना परिचय देते हुए बोले—मैं यदुवंशीय क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। क्षात्र धर्म युक्त, दुष्टों का दुश्मन व सज्जनों का रक्षक हूँ। और इस समय भगवान् शंकर के दर्शनार्थ कैलाश पर्वत पर जाना चाहता हूँ। अब तुम लोग अपना परिचय दो कि तुम लोग कौन हो। यह स्थान बदरीवन के नाम से प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में ब्राह्मण गण ही निवास करते हैं। क्षुद्र पुरुषों को यहाँ

आना मनाही है। पिशाच भगवान् विष्णु के चरण कमलों में प्रणाम कर बोला—मैं घण्टाकर्ण नामक एक मांसाहारी पिशाच हूँ तथा भगवान् शंकर के प्रिय मित्र कुबेर का सेवक हूँ। यह यमराज तुल्य दूसरा पिशाच मेरा भाई है। यह कुत्तों का भुण्ड मेरे गण हैं। इस समय मैं भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहता हूँ। मैं कैलाश पर्वत से ही आ रहा हूँ। मैं पहले महापापी था तथा भगवान् विष्णु का कट्टर दुश्मन था। यहां तक कि उनका नाम भी मैं न सुन सकूँ। इसके लिये अपने कानों में घण्टा बांधकर चलता था। इसीलिये मेरा नाम घण्टाकर्ण पड़ा तथा मेरे घोर पापों के कारण मुझे पिशाचयोनि प्राप्त हुई है। मेरी कठिन तपस्या से भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये। मैंने उनसे वर रूप में मोक्ष मांगा। भगवान् शंकर बोले—मोक्ष तो भगवान् विष्णु ही देते हैं। तुम बदरीवन में जाकर उनकी उपासना करो। अतएव मैं विष्णु की उपासना हेतु यहां उपस्थित हुआ हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण भी लोक कल्याणार्थ वहाँ रहते हैं वहाँ आज ही रात को मैं जाकर निश्चय ही उनका दर्शन करना चाहता हूँ। कहकर पिशाच वहीं भगवान् के ध्यान में ध्यानस्थ हो गया। तथा ओंकार का जप करने लगा पिशाच कुबेर के अनुदेशानुसार जाप के साथ-साथ ही हे वसुदेव ! हे कृष्ण ! हे माधव ! हे

जनार्दन ! हे हरे ! हे विष्णु ! हे भूतभावन प्रभो !
हे निराकार प्रभो ! हे जगन्नाथ ! हे नारायण ! आदि
नाम का भी उच्चारण किये जा रहा था । यथा—

धनदस्योददेशेन पठन्मुवहुशः क्षितौ ।
वासुदेवि कृष्णेति माधवेति च सां सदा । ४ ।
जनार्दन हरे विष्णो भूतभावन भावन ।
नराकार जगन्नाथ नारायण परायण । ५ ।
इति सां नामभिन्नित्यं पठत्येव दिवानिशम् ।
स्वश्चाग्रन्स्तथा तिष्ठन्भुजंगच्छथा वदन । ६ ।

श्री कृष्ण मन ही मन विचार करने लगे कि यह
पिशाच दिन रात जानवरों को मारते हुए दिन रात रक्त-
पान व मांस भक्षण करते हुए जागृतावस्था तथा निद्रा-
वस्था में तथा उठते बैठते सब समय ही तथा सभी कार्यों
में मुझे ही कर्त्ता मानता है । निश्चय ही यह इसके पुण्य
कर्मों का ही प्रताप है । ऐसा निश्चय करके भगवान्,
पिशाच के हृदय में पीताम्बर धारण किये हुए, कमल नेत्र,
श्यामवर्ण शरीर, हाथ में शंख, चक्र, गदा से युक्त, माला
किरीट, कौस्तुभ, और श्रीवत्स से युक्त, मायातीत, सत्यमय
स्थित बुद्धि, चार भुजा व श्रेष्ठ वाणी युक्त विष्णु ने
विभिन्न रूपों में साक्षात् दर्शन दिये । विष्णु का दर्शन कर
पिशाच अपने भाग्य को धन्य मानने लगा । तथा अपने

जीवन को सफल मानने लगा । तथा अपने को पिशाच शरीर से मुक्ति मिल गयी मानने लगा । सोचा कि मेरा छोटा भाई भी प्रभु भक्त होने के कारण यह भी मोक्ष को प्राप्त कर लेगा । सोचकर घण्टाकर्ण ने अपने आंत्रपाश को काटकर तथा प्राणवायु को रोककर मोक्ष को प्राप्त किया ।

श्रीकृष्ण की कैलाश पर तपस्या-वर्णन

प्रातःकाल होने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने मुनियों द्वारा विदा होकर गरुड़ पर सवार होकर कैलाश पर्वत पर उस स्थान के लिये प्रस्थान किया जहाँ कि भगवान् विष्णु ने अनन्तकाल तक रुद्र की आराधना कर चक्र प्राप्त किया था । जहाँ पर पर्वतराज हिमालय ने अपनी कन्या को शिवजी के साथ ब्याहा था । तथा जो स्थल नित्य प्रति का भगवान् शंकर व भगवती पार्वती जी का मिलन-स्थल है । जहाँ सिद्धगण व कुबेर रुद्र की उपासना में व्यस्त रहते हैं । जहाँ भृङ्गी और रिटि द्वारपाल के रूप में भगवान् शंकर की सेवा में हर क्षण तैयार रहते हैं । जहाँ मानसरोवर हंसों से परिपूर्ण है तथा जिस स्थल से गंगा आदि नदियाँ निकलकर समुद्र में जा मिलती हैं व विश्वेश्वर रुद्र ने ब्रह्मा के पाँचवें भस्तक को काट कर अलग कर दिया था । उस कैलाश पर्वत पर मानसरोवर के उत्तरी तट पर श्रीकृष्ण तप करने हेतु मनुष्य का रूप बनाकर गरुड़ से

उतरे । वहाँ उन्होंने बारह वर्ष तक तपस्या करने का विचार किया । अतः फाल्गुन मास से केवल शाक ही ग्रहण करते हुए तपस्या प्रारम्भ कर दी । उस समय हवन करने हेतु ईधन गरुड़ एकत्र करते थे तथा चक्र पुष्प लाते थे । शंख उनकी सभी ओर से रक्षा कार्य, खड्ग कुश लाने का कार्य, गदा श्रीकृष्ण की सेवा कार्य, शार्ङ्ग धनुष सेवक के कार्य में दिन रात लगे रहते थे ।

श्रीकृष्ण याज्यादि की आहुतियाँ अग्नि प्रज्ज्वलित कर देने लगे तथा विधि के अनुसार हवन की समाप्ति पर उद्यापन करने लगे श्री कृष्ण फिर मास में एक दिन तथा बाद में वर्ष में एक दिन भोजन करने लगे । बारहवें मास के अन्तिम मास में पूर्णाहुति देकर अग्नि का ध्यान कर, आरण्यक आदि मन्त्रों का जप पूर्वक ॐकार का उच्चारण करते हुए भगवान् शंकर के ध्यान में तल्लीन हो गये ।

सभी देवता व मुनि गण भगवान् श्रीकृष्ण को तपस्वी रूप में दर्शन करने हेतु एकत्र हो गए तथा उनके इस प्रकार तपस्या करने से सभी आश्चर्य चकित थे । भगवान् श्री कृष्ण का तप पूर्ण होने पर भगवान् शंकर ने भगवती पार्वती के साथ दिव्य रूप में सुशोभित बैल की सवारी किये अपने सम्पूर्ण गणों व सेवकों से युक्त दर्शन दिया ।

उस समय भी भगवान श्रीकृष्ण को ध्यानस्थ देखकर सभी भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक मुनि आदि सभी चारों तरफ से जय-जयकार करने लगे । यथा—

मुनयोविप्रर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे ।
जयदेव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन । १९ ।
जय विष्णो हृषिकेश नारायण ।
जय रुद्र पुराणात्जय देव हरेश्वर । २० ।
आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन ।
जय कौस्तुभदीप्ताखंग जय भस्मविराजत । २१ ।
जय चक्रागदापाणे जय शूलिस्त्रिलोचन ।
जय भौक्तिकदीप्ताशंग जय नाग विभूषणं । २२ ।

अर्थात् हे जगन्नाथ देव ! आपकी जय हो । हे रुद्रदेव ! हे जनार्दन ! आपकी जय हो । हे विष्णो ! हे हृषिकेश हे नारायण परायण ! आपकी जय हो । हे रुद्र ! हे पुण्यात्मन् ! हे देव हरेश्वर ! आपकी सदा ही जय हो । हे आदिदेव ! हे कौस्तुभदीप्ताङ्ग ! हे भस्म विराजित ! हे शंकर ! हे जगन्नाथ ! आपकी जय हो । हे चक्रागदापाणे ! हे शूलिन ! हे त्रिलोचन ! हे भौक्तिक दीप्ताङ्ग ! हे नाग विभूषण आपकी जय हो । यह कहकर मुनिगणों ने भगवान शंकर को प्रणाम किया । फिर श्रीकृष्ण दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक भगवान शंकर की स्तुति करने लगे । यथा—

नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे ।
 नमस्ते शौचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने । ३५।
 नमस्ते मीढुषे चास्तु नमस्ते गदिने हर ।
 नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे । ३६।
 अमूर्तयि च देवया नमस्तेऽस्तु पिनाकिने ।
 नतः कुब्जाय कूप्याय शिवाय शिवरूपिणे । ३७।
 नमस्तुण्डाय तुष्टाय नमस्तुटितुटाय च ।
 नमः शिवाय शांताय गिरिशाय च ते नमः । ३८।
 नमो हराय हिप्राय नमो हरिहराय च ।
 नमोऽधोराय धोराय धोर धोर प्रियाय च । ३९।
 नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटि घटाय च ।
 नमः शिवाय आंताय गिरिशाय च ते नमः । ४०।
 नमः सर्वात्मने तुभ्ये नमस्ते भूतिदायक ।
 नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः । ४१।
 का न वाक्स्तुतिरूपा ते को तु स्तोतुं प्रभवनुयात् ।
 कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतिमतां वरः । ४२।
 क्षमस्व भगवां देव भक्तोऽहं त्राहि मां हरः ।
 सर्वात्मन्सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हरः । ४३।
 रक्षदेव जगन्नाथ लोकासर्वात्मना हरः ।
 त्राहि भक्तांसदा देव भक्त प्रिय सदा हरः । ४४।

अर्थात् हे शितिकण्ठ ! आपको नमस्कार है । हे नीलग्रीव ! हे वेध ! हे शौचि ! उपवासिन ! आपको नमस्कार है । हे गदाधर ! हे विश्वतनो ! हे वृषरूपिन ! आपको नमस्कार है । हे अमूर्त ! हे पिनाकिन् ! कुब्ज ! कूप्य ! शिव ! शिवरूपिन ! आपको नमस्कार है । हे

तुण्ड, तुटिपुट, शिव, शान्त, गिरीश, आपको नमस्कार है। हे हर, हिप्र, हरिहर, अघोर, घोर, घोर, घोर, प्रिय, घण्ट, अघण्ट, शिव, शान्त, गिरीश, आपको बारम्बार नमस्कार है। हे सर्वात्मन ! आपको नमस्कार है। हे भूतिदायक हे वामदेव, हे महादेव आपको नमस्कार है। हे प्रभो ! ऐसा कोई वाक्य समझ में नहीं आता जिसके द्वारा आपकी स्तुति करूँ। फिर ऐसा है भी कौन जिसकी जिह्वा आपकी भली प्रकार स्तुति कर सके। हे भगवन् ! हे देव ! आप अपने मुक्त भक्त की रक्षा करें। हे सर्वात्मन् ! हे सर्वभूतेश ! आप सदा ही मेरी रक्षा करें। हे देव ! हे जगन्नाथ ! आप सब लोकों के रक्षक हैं। हे देव ! हे महादेव ! आप भक्तों पर प्रीति करने वाले हैं।

—:—

शिवजी द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति

सभी मुनियों ने देवताओं के समक्ष ही भगवान् शंकर भी श्रीकृष्ण की स्तुति निम्न प्रकार करने लगे।

हे देव देवेश ! चक्रपाणे ! हे जनार्दन ! आप इस प्रकार की कठिन तपस्या क्यों कर रहे हैं। आप तो स्वयं

विष्णु हैं तथा सब तपों में श्रेष्ठ तप हैं । हे जनार्दन ! यदि आप पुत्र की अभिलाषा से तपस्या कर रहे हैं तो वह पुत्र मैं आपको दे चुका हूँ । सत्ययुग में मैंने एक बार दस हजार वर्षों तक कठिन तपस्या की । मेरी तपस्या का जब पूर्ण होने का समय आया तब मेरे कठिन तप से भयभीत होकर इन्द्र ने तप में विघ्न डालने का विचार किया । उस समय उमा भगवती अपने पिता हिमराज की आज्ञा से मेरी सेवा कर रही थीं । इन्द्र ने मेरे तप में विघ्न उपस्थित करने के लिए कामदेव को भेजा । कामदेव ने मेरे पास आकर मुझ पर बाण चलाया । तत्क्षण ही कामदेव मेरी क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो गया । फिर बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि कामदेव ने ऐसा दुष्कर्म इन्द्र के बहकावे में आकर किया है । ब्रह्माजी द्वारा निवेदन करने पर मैंने दयालु होकर कामदेव को 'प्रद्युम्न' के रूप में आपका बड़ा पुत्र होने का वरदान दिया, जो आपको प्राप्त हो चुका है । इसमें संदेह न कर पूर्ण विश्वास करें । हे देव ! आप ही प्रकृति संज्ञक त्रिगुणात्मक कारण हैं । उसी प्रकृति से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ है और महत्तत्त्व के रूप में भी आप सर्वत्र व्याप्त हैं । महत्तत्त्व से अहंकार तत्व की उत्पत्ति हुई है । अहंकार तत्व से पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि इन पाँच महाभूतों के प्रेरक छः इन्द्रियां नेत्र, नाक, स्पर्श, रसना,

क्षेत्र और मन हैं । इसके अतिरिक्त कर्मेन्द्रियां बाणी आदि इन्द्रियां भी आप ही के द्वारा उत्पन्न हैं । आप रजोगुण से युक्त होकर सभी प्राणियों की सृष्टि तथा सत्त्व गुण से युक्त होकर सबका (तीनों लोकों) का पालन करते हैं । तथा तमोगुण से युक्त होकर सम्पूर्ण विश्व को नाश करने वाले भी आप ही हैं ।

आप एक ही समय सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों को धारण करने में समर्थ हैं । अन्न उत्पन्न कर सभी प्राणियों को भोजन देते हैं । आप ही सृष्टि काल में ब्रह्मा स्थिति काल में विष्णु और प्रलयकाल में रुद्र हो जाते हैं । आप ही सभी प्राणियों के आदि, मध्य और अंत हैं । यह संसार आप ही से उत्पन्न होकर आप ही लीन भी हो जाता है । आप और हम सर्वगत हैं । आप में और मुझमें शब्द या अर्थ से भी भेद नहीं है । आप जिन-जिन नामों से पुकारे जाते हैं उन्हीं नामों से मैं भी पुकारा जाता हूँ । आपको ही आराधना करने से मेरी भी आराधना पूरी हो जाती है । और आपसे शत्रुता करने से मेरे से भी शत्रुता हो जाती है । भूत भविष्यत एवं वर्तमान में कभी भी कोई कार्य आपके बिना संभव नहीं है । आप ही ऋक्यजुः और साम रूप हैं । हे सर्वात्मन आप ही सब कुछ हैं । आपको

बारम्बार नमस्कार है। फिर भगवान् शंकर ने भगवान् विष्णु की निम्न प्रकार स्तुति की। यथा—

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ।
 यस्य भासा जगत्सर्वं भासते नित्यमच्युत । १ ।
 नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः ।
 यः शीतयति शीतांशु लोकांस्त्वानिमान्विभुः । २ ।
 नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः ।
 यः प्रजाः प्रीणव्येको विश्वात्मा भूतभावन । ३ ।
 नमः सर्वात्मने देव नमो वाय्वात्मने हरे ।
 यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत्सदा । ४ ।
 दधार वेदान्सर्वाश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ।
 सर्वान्सिहरते यस्तु संहारे विश्वदृक् सदा । ५ ।
 क्रोधात्माऽसि विरूपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः ।
 सृष्टौ सृष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राशदायिने । ६ ।
 अजाप विष्णवे तुभ्यं स्रष्टु विश्वसृजे नमः ।
 आदौ प्रवृत्ति मूलाय भूतानां प्रभवाय च । ७ ।

अर्थात् हे वासुदेव ! जिन सूर्य की किरणों से यह विश्व प्रकाशमान है आप इन्हीं सूर्य के स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। जो अपनी शीतल किरणों से सुख शान्ति प्रदान करते हैं आप उन चन्द्र स्वरूप को नमस्कार है। जो विश्वात्मा सबको जीवन प्रदान करते हैं, आप वह वायु रूप वाय्वात्मन ! आपको नमस्कार है। जो ब्रह्माजी अपने शरीर में कुशादि धारण करते हैं तथा जो वेदों के भी धारक हैं आप वही ब्रह्मात्मा को नमस्कार है। जो

क्रोधात्मा रुद्रदेव प्रलय करने में विश्व का लय करते हैं आप उन रुद्रात्मा को नमस्कार है। जो अजन्मा विष्णु सृष्टि को रचकर प्राणियों को प्राण देते हैं उन आप सृष्टि-कर्त्ता को नमस्कार है। आपने ही सर्वप्रथम प्रकृति के अवलम्ब से सृष्टि उत्पन्न की है। इसलिए सर्वप्रधान को नमस्कार है।

नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः।

पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे। ८।

दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः।

अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखदेयवे। ९।

नमस्ते विश्वरूपाय च नमो नमः।

तेजसा भास्करो यस्तु घृणो जन्तुहितः सदा। १०।

तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे।

वायौ स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः। ११।

नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शतिमने हरे।

आकाशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः। १२।

नमस्ते भगवन्विष्णो तुभ्यं शक्रात्मने नमः।

यो दधार जगत्सर्वं मायामानुषदेहवान्। १३।

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने।

नमः आघाय बीजाय निगुणाय गुणात्मने। १४।

अर्थात् आप ही पृथ्वी पर गन्ध रूप के विद्यमान हे गन्धात्मन आपको नमस्कार है। सभी प्राणियों को सुख देने वाले रस रूप आप रसात्मन को नमस्कार है। आप

सदा प्राणियों के हितार्थ अपने तेज से प्रकाश कर्त्ता भास्कर रूप आपको नमस्कार है। वायु में शीत, उष्ण सुख दुःख आदि का अनुमान कराने वाला जो स्पर्श है, आप ही उससे सम्पन्न हैं, इसलिये हे स्पर्शत्मन ! आपको नमस्कार है। आकाश का गुण शब्द पृथ्वी के सभी प्राणियों के श्रोतों पर रहता है आप ही वह शब्द रूप हैं, इसलिए आप शब्दात्मा को नमस्कार है। आप मायामय देव अपने माया मानवरूप से इस विश्व को धारण आप मायाविन को नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! हे आदिवीज हे निर्गुण हे गुणात्मन ! आपको नमस्कार है।

अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै सुचिन्त्यात्मने नमः ।
 हराय हरिरूपाय ब्रह्माणं ब्रह्मदायिने । १६ ।
 नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः ।
 नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च । १६ ।
 नमः सहस्रवक्त्राय सहस्रनयनाय च ।
 विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः । १७ ।
 विश्ववक्त्र नमो नित्यं भूतावास नमो नमः ।
 इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे । १८ ।
 नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे ।
 अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषा पतये नमः । १९ ।
 सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः ।
 नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे । २० ।

अर्थात् हे विष्णो ! आप अचिन्त्य, सुचिन्त्यात्माशिव,

हरि ब्रह्म, ब्रह्मपददाता, ब्रह्मज्ञानी, सहस्रशिर, ब्रह्म व
ब्रह्मात्मा है आपको नमस्कार है। हे सहस्रमुख, हे सहस्र
देव, हे विश्व हे विश्वरूप, हे विश्वकर्त्ता, आपको नमस्कार
है। आप विश्व वाक्य, भूतवास, इन्द्रिय एवं विषय रूप
है। हे हरे, आपको नमस्कार है। आप अश्वशिर, वेदा-
भरण, अग्नि, अग्निपति, ज्योतिषपति, सूर्य, सूर्यतनय तेजों
के स्वामी, सोम तथा सौम्य हैं। हे शीतात्मन, हे हरे,
आपको नमस्कार है।

नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्य संस्कृते।

नमः स्तुवाय पात्राय यज्ञांगाय पराय च ॥ २२ ॥

नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च।

वेद्याय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे। २३।

गदिने खंगिने तुभ्यं शंखिने चक्रिणे नमः।

शूलिने चर्मिणं नित्यं वरदाय नमो नमः। २४।

बुद्धप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च।

हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मने गुरौ। २५।

नमस्ते सर्वलोकेश सर्व कर्म नमो नमः।

नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञशूकरः। २६।

नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो हरे।

नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते। २७।

नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः।

नमो भूया नमस्तेऽस्तु पाहि लोकाञ्जनार्दनः। २८।

अर्थात् आप ही यज्ञ, हव्य, हवि, संस्कृत, स्तुव, यज्ञाङ्ग,
पर, प्रणव शरीर, क्षर, अक्षर, वेद, वेदमूर्ति और शस्त्र

स्वरूप हैं। आप ही गदा, खड्ग, शंख-चक्रको धारण करने वाले, शूल चर्म से युक्त तथा वर प्रदायक हैं। आपको नमस्कार है। आप ही ज्ञान प्रिय, बुद्ध, प्रबुद्ध, सुख, हरि, विष्णु, गुरु और सदात्मा हैं आपको नमस्कार है। हे सर्वलोकेश्वर आप सर्व कर्त्ता शुद्ध स्वभाव हैं आपको नमस्कार है। हे विष्णो, हे विष्णो, हे विष्णो, हे हरे, हे श्रीमान् वासुदेव आपको नमस्कार है। हे सर्ववास श्रीकृष्ण आपको नमस्कार है। हे जनार्दन, आप सब प्रकार से भूतों की रक्षा कीजिये आपको बारम्बार नमस्कार है।

इस प्रकार भगवान् शंकर परम पिता परमेश्वर विष्णु की स्तुति कर मुनिजनों से बोले—हे मुनिगण आप इस विष्णु स्तोत्र को नित्य प्रति पाठ करते हुए भगवान् विष्णु की शरण को प्राप्त करें। जो भी इस पाठ विमोचनस्तोत्र को हृदय में धारण करेगा, पढ़ेगा वा श्रवण करेगा निश्चय ही उसका सभी प्रकार से कल्याण होगा। सारी मनो-कामनायें पूर्ण होंगी। कहकर भगवान् शंकर अन्तर्धान गए। सभी मुनियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को परम तत्त्व मानकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण शंख, चक्र, गदा, धनुष तरकस और कवच धारण कर गरुड़ पर सवार होकर बद्रीकाश्रम वापस आ गये।

राजा पौण्ड्रक का वृत्तान्त, दर्पपूर्ण वचन

पौण्ड्रक राजा उस युग में सभी राजाओं से शक्ति-शाली, पराक्रमी एवं एक अत्युत्तम कुशल योद्धा था। यादवों एवं श्री कृष्ण को छोड़ कर सभी इस भूमण्डल के राजा महाराजा उसकी शक्ति को स्वीकार करते थे। अतः वह यादवों सहित श्री कृष्ण को अपना दुश्मन समझता था। वह एक बार अधीनस्थ राजाओं को बुलाकर गर्व में चूर होकर कहने लगा। मैंने पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ली है। सभी राजा महाराजा मेरी अधीनता को स्वीकार कर, कर देते हैं। परन्तु यादव गण श्री कृष्ण की सहायता से गर्वित होकर मुझे कर नहीं देते, मेरा सम्मान नहीं करते। श्री कृष्ण भी अपने चक्र के अभिमान में चूर होकर मेरा अपमान करता है। वह जानता है कि मैं ही शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष धारण करता हूँ मेरे जैसा कोई तूणीर धारी संगठन कर्त्ता कोई नहीं है। उसे समझना चाहिये कि उसके अतिरिक्त मैं भी शंख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धारी हूँ। मेरे वासुदेव नाम को धारण कर वह गोप पुत्र श्री कृष्ण मदान्ध हो गया है और मेरा अपमान करता है। मैं अपने इस हजार धार वाले तीक्ष्ण चक्र से उस छद्मनाम धारी वासुदेव के चक्र का अहंकार नष्ट कर डालूँगा। इस दुष्ट ने परम प्रिय मित्र नरकासुर

का वध किया है। आप सभी राजागण मेरे को ही वासुदेव समझें। मेरे सिवा इस पृथ्वी पर कोई वासुदेव नहीं है। इस पर सभी पौण्ड्रक के अनुयायी राजागण श्री कृष्ण को मारने की बात सुनकर पौण्ड्रक की जय जयकार करते हुए कोलाहल करने लगे तथा जो श्रीकृष्ण के बल पराक्रम को जानते थे। उन सबने लज्जा से सिर झुका लिये।

राजा पौण्ड्रक की सभा अभी लगी थी कि वहाँ सभा में देवर्षि नारद जी भी देवलोक से आ गये। पौण्ड्रक ने देवर्षि को प्रणाम कर सम्मानपूर्वक शुभ्र-पवित्र आसन पर बैठाया। फिर कुशल-मंगल होने के बाद पौण्ड्रक ने नारद जी से कहा—हे भगवान आपकी सर्वत्र अबाध गति है आप ब्रह्माण्ड में भी कहीं जाने से रुक नहीं सकते। तथा आप सभी देवताओं, सिद्धों, गन्धर्वों, ऋषियों, मुनियों एवं तपस्वियों में प्रसिद्ध हैं। आप जानते ही हैं, मैं शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग-धनुष, तूणीर और कवच धारण करने वाला पृथ्वी के सभी राजाओं को परास्त करने वाला, अधिकाधिक दान देने वाला प्रजाननों का रक्षक एवं शत्रुओं के लिये अजेय हूँ। सभी राज्यों का भोग करने वाला शासक हूँ आप कृपया हमें बतायें आप जहाँ-जहाँ भी गये वहाँ-२ मैं तपसिद्ध एवं लोक प्रतिष्ठित वासुदेव के रूप में प्रसिद्ध हूँ अथवा नहीं। यह बल वीर्य से रहित श्रीकृष्ण मेरा छद्म

रूप धारण कर अपने को वासुदेव कहता है। वह छिछोरा यह नहीं जानता कि मेरे छद्मनाम रूप धारण करने का कितना गम्भीर परिणाम हो सकता है। आपको भी मालूम ही है कि इस लोक में मेरे सिवा वासुदेव नामधारी कोई अन्य नहीं है। हे देवर्षि ! मैं अपने पराक्रम से अत्यन्त वेगशाली अश्वसेना, पवन गति वाली रथ सेना, एक हजार ऊँट सेना व दस हजार मदमस्त गज सेना व विशाल सेना को सहायता से द्वारिका पुरी को केवल नष्ट ही नहीं करूँगा अपितु उस छद्म वेशधारी वासुदेव नाम वाले श्रीकृष्ण का भी वध करके रहूँगा। हे श्रेष्ठ मुनि ! आप मेरे इस निर्णय को मेरे सभी नगरवासियों स्वर्गवासियों को सूचित करने की कृपा करें। अच्छा अब आपको मेरा दण्डवत् प्रणाम है।

नारद पौण्ड्रक से विदा होते हुए बोले—हे राजन ! इस पृथ्वी के पालनकर्ता जब स्वयं चक्रपाणी भगवान् जनार्दन हैं। तब कोई अन्य पुरुष वासुदेव नहीं हो सकता आप तो अपने को व्यर्थ में ही वासुदेव मान बैठे हो। ऐसा होना आपकी श्रीकृष्ण के प्रति अज्ञानता है। वे तुम्हारे इस अहंकार को निश्चित ही नष्ट करेंगे। कहकर चल दिये। नारद ने बदरीवन में स्थित श्रीकृष्ण के पास जाकर पौण्ड्रक के विचारों से अवगत करा दिया। श्रीकृष्ण ने

यह कहकर कि मैं पौण्ड्रक के अहंकार का कल ही निश्चित रूप से नाश करूँगा । कहकर मौन हो गये ।

—:०:—

पौण्ड्रक का द्वारका पर आक्रमण

अहंकार में चूर पौण्ड्रक आठ हजार रथ, दस हजार हाथी और अर्बुद संख्या में पैदल सेना को लेकर द्वारका पर चढ़ाई करने हेतु चल दिया । रात्रि का समय होने के कारण सेना ने मशाल जलाकर दिन जैसा उजाला कर रखा था । सेना पट्टिश, तलवार, गदा, परिध, शक्ति, तोमर आदि भयंकर अस्त्रों से युक्त होकर युद्ध के लिए तीव्र गति से द्वारिका की तरफ बढ़ रहे थे । मशालों का प्रकाश इतना उजाला कर रहा था मानो रात्रि में ही सूर्योदय हो गया हो । आगे-२ राजा पौण्ड्रक चल रहे थे पीछे-पीछे सेना व उनके अनुयायी राजागण । द्वारिका नगरी के बाहर पहुंचकर पौण्ड्रक ने युद्ध की भेरी बजा दी । और घोषणा करा दी कि महाराज पौण्ड्रक श्रीकृष्ण की शक्ति पर रहने वाले द्वारिका निवासियों के संहार करने हेतु आये हैं । अतः सभी द्वारिकावासी या तो मेरी पराधीनता

स्वीकार करें अथवा युद्ध से अपने प्राणों की रक्षा हेतु सावधान हो जायें ।

पौण्ड्रक द्वारा युद्ध-घोषणा को सुनकर सभी यादव योद्धा अल्प समय में ही युद्ध हेतु अस्त्रों से सुसज्जित हो कर सात्यकि, बलराम, हार्दिक्य, निशठ, उद्धव व अन्य श्रेष्ठ योद्धाओं के नेतृत्व में पौण्ड्रक कहां हैं कहते हुए चल दिये । दोनों पक्षों की सेनाओं में भयंकर युद्ध छिड़ गया । यादवों की सेना पौण्ड्रक की सेना का भीषण संहार करने लगी । समस्त दिशायें हाथियों की भीषण गर्जना, घोड़ों की हिनहिनाहट, सैनिकों के कोलाहल तथा शस्त्रों की टकराहट की भंकार से कांप उठी, थरथरा उठी थी । सभी सैनिक बड़ी कुशलता से लड़ रहे थे । सभी एक दूसरे के शस्त्रों को काटते हुए एक दूसरे को अंग विहीन व धराशायी कर रहे थे । इस प्रकार बहुत से राजा महाराजा अपनी-अपनी असंख्य सेनाओं के साथ मृत्यु को प्राप्त होकर धरती पर गिर पड़े थे । इस तरह धरती रक्त मांस से लथपथ होकर शवों से ढकी पड़ी थी । शृंगाल, गृध्र, पिशाच-पिशाचनियाँ खुशी मना रहे थे माँसों व अन्तड़ियों को नोंच रहे थे । इसी बीच निषादों का राजा एकलव्य भीषण तथा विशाल धनुष लेकर रणक्षेत्र में आया तथा अपने अत्यन्त ही तीक्ष्ण व मर्मभेदी बाणों से यादवों की

सेना का संहार करते हुए निशठ, सारण, हार्दिक्य, उद्धव, अक्रूर आदि को आहत कर दिया। एकलव्य के भीषण प्रहार से यादव सेना भयभीत होकर भाग खड़ी हुई। चारों तरफ रात में सन्नाटा छा गया। मशालें भी लगभग बुझ-सी गईं।

पौण्ड्रक ने यादवों व वृष्णियों को परास्त हुआ जान-कर अपनी सेना को द्वारिका पुरी की सभी अट्टालिकाओं को ध्वस्त करने तथा बहुमूल्य धन सम्पत्ति के साथ कन्याओं व दासियों को भी लूट लाने का आदेश दिया। आदेश पाते ही पौण्ड्रक की सेना द्वारिकापुरी की अट्टालिकाओं को ध्वस्त करते हुए लूटपाट करने लगी। ऐसा देखकर वीर सात्यकि क्रोधित हो उठा। अतः वह द्वारिकापुरी की रक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व समझ कर (क्योंकि श्रीकृष्ण कैलाश जाने से पूर्व सात्यकि को ही द्वारिका का रक्षा भार सौंप गये थे) उत्तम कोटि का धनुष बाण ग्रहण कर शारक पुत्र द्वारा योजित सुविशाल रथ में दृढ़ कवच हृदय पर धारण किये हुए तलवार, गदा आदि लेकर युद्ध के लिए रणभूमि में चल दिया। साथ ही बलराम भी गदा एवं धनुष बाणों से युक्त होकर युद्ध के लिए चल दिये। एवं वीर यादव योद्धागण भी सेनाओं के साथ हाथियों, घोड़ों, रथों आदि पर सवार होकर मशाल जलाए रणभूमि की

ओर चल दिये । सात्यकि ने अपने वायव्यास्त्र से शत्रु सेना को पीड़ित कर दिया । जिससे शत्रु सेना व अनेकों राजा गण व्याकुल होकर पौण्ड्रक के पास भाग गए । सात्यकि ने पौण्ड्रक को युद्ध के लिए सामने आने हेतु ललकारा । तथा नाना प्रकार के कटु व तीखे वचन बोलते हुए पौण्ड्रक को धिक्कारते हुए युद्ध हेतु उत्तेजित करने लगे ।

पौण्ड्रक सात्यकि के कटु वचनों से क्रोधित होकर आया और बोला—वह स्त्री-हत्यारा, पशुओं का वध करने वाला, गोपालक स्वयं को सब कुछ समझने वाला श्रीकृष्ण कहां है । वह मेरा नाम 'वासुदेव' धारण कर भय से कहां छिप गया है आज मैं उसका वध निश्चय करूँगा । हे सात्यकि ! तुम मेरे से क्या युद्ध करोगे ? तुम मेरे समक्ष युद्ध में बच्चे हो । मैं अभी तुम्हारा सिर अपने तीक्ष्ण बाणों से काट अपना युद्ध कौशल दिखाता हूँ । वह श्रीकृष्ण तुम्हारे बल पर कहता है तथा तुम्हें ही इस नगरी का रक्षा भार सौंप कर स्वयं कैलाश पर्वत पर भाग गया है । तुम्हारी मृत्यु का समाचार पाकर उसका अहंकार नष्ट हो जायेगा । कहकर पौण्ड्रक ने युद्ध हेतु धनुष बाण उठा लिये ।

सात्यकि भी भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान कर गर्जना करते हुए दहाड़ कर पौण्ड्रक से बोले—अरे अधम नीच !

तुम जैसा पातकी कौन होगा जो भगवान श्रीकृष्ण के प्रति ऐसा कटु वचन बोलेगा । जब तक तुम्हारा सिर कट नहीं जायेगा तब तक तुम्हारे हृदय से श्रीकृष्ण के प्रति दुष्ट भाव व व्यवहार नष्ट नहीं होगा । अतः यदि भगवान श्रीकृष्ण शीघ्रता से यहां नहीं आये तो मैं सिर अवश्य ही काट डालूँगा । कल बस एक जगदीश्वर श्रीकृष्ण ही एक मात्र वासुदेव रह जायेंगे । अरे दुष्ट ! अब तुम अपने सारे शस्त्रों से यहाँ अपना युद्ध कौशल दिखा लो । क्योंकि अब तू नष्ट होने वाला है । आज मैं तुम्हारे शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तों को खिला दूँगा । कहकर सात्यकि ने अपने तीक्ष्ण बाणों से पौण्ड्रक को बींध दिया । पौण्ड्रक के शरीर से उष्ण रक्त की धारा बह चली । तब क्रोधित होकर राजा पौण्ड्रक ने झुके हुए टेढ़े बाणों से सात्यकि को बींध दिया । तथा सिर पर बाण का प्रहार कर सात्यकि को मूर्छित कर दिया । इस प्रकार उसने सात्यकि के सारथी व रथ के घोड़ों को भी घायल कर दिया । और घोर गर्जना करने लगा ।

सात्यकि पौण्ड्रक के गर्जन को सुनकर सचेत हो गया तथा अपने सारथी व घोड़ों को बुरी दशा में घायल देखकर क्रोधित हो उठा और एक तीक्ष्ण बाण पौण्ड्रक के हृदय में मारा । राजा के हृदय से उष्ण रक्त प्रवाह होने लगा तथा

वह एक तरफ को मूर्छित होकर लुढ़क गया। फिर सात्यकि ने भी पौण्ड्रक के रथ सारथी व घोड़ों को तहस-नहस कर दिया। पौण्ड्रक के अंग प्रत्यंग को बाणों से बीध डाला। पौण्ड्रक ने जान होने पर पुनः क्रोध पूर्वक सात्यकि पर बाण मारा सात्यकि ने पौण्ड्रक के धनुष को काट दिया। फिर दोनों में भीषण गदा युद्ध होने लगा। कभी कोई गदा की मार से मूर्छित होता तो कभी कोई। इस प्रकार दोनों वीर एक दूसरे के जान लेना भयंकर युद्ध कर रहे थे। फिर सात्यकि ने पौण्ड्रक की गदा को छीनकर दो टुक कर के फेंक दिया और उसके हृदय पर जोर का मुष्टिका प्रहार किया। फिर अपनी गदा फेंक कर सात्यकि ने पौण्ड्रक के गाल पर जोर का थप्पड़ मारा। तब पौण्ड्रक ने भी सात्यकि को एक कठोर तमाचा जड़ दिया। इस प्रकार दोनों का मल्लयुद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ही एक दूसरे को घुटनों, मुक्कों, हाथों आदि से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। दोनों ही एक दूसरे के प्राण लेने पर तुले हुए थे। फिर दोनों ही मल्लयुद्ध करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े।

—:०:—

बलराम-एकलव्य युद्ध

निषादराज एकलव्य व बलराम का भी भीषण संग्राम छिड़ा हुआ था । बलराम ने अपने तीक्ष्ण बाणों से एकलव्य को घायल करके उसके धनुष को काट दिया तथा रथ व सारथी तथा घोड़ों को क्षत विक्षत कर दिया । एकलव्य ने भी बलराम को घायल कर दिया । तथा अपना धनुष नष्ट हो गया देखकर तलवार से युद्ध करने लगा । बलराम ने उसकी तलवार को खंडित कर दिया । बलरामजी ने निषादराज के सभी शस्त्रों को काट दिया । एकलव्य द्वारा छोड़ी गयी शक्ति को पकड़कर बलराम जी ने उसी से एकलव्य को मार कर मूर्छित कर दिया । वह ऐसे पृथ्वी पर लुढ़क गया जैसे मर गया हो । उस समय मांस भक्षी प्राणी व पिशाच पिशाचनियाँ रक्त पीकर मांस खाकर अट्टहास करते हुए आनन्दपूर्वक उछल-कूद करके ऊधम मचा रहे थे । मांस भक्षी पक्षीगण भी शवों से मांस शिराओं व अंतड़ियों को स्वच्छन्द भाव से नोंचे जा रहे थे कि तभी एकलव्य को ज्ञान हुआ और अपनी सेनाओं की इस प्रकार की बुरी दशा को देखकर क्षुभित एवं क्रोधित हुआ । एकलव्य क्रोध में दौड़ते हुए बलराम के पास गया और गदा से प्रहार किया । बलराम ने भी गदा की चोट का जवाब गदा से ही देना प्रारम्भ कर दिया । इस

प्रकार दोनों महारथी गदा युद्ध में भिड़ गए । गदाओं की टकराहट से पृथ्वी और आकाश सर्वत्र गुञ्जित था, भय से कम्पित था । उधर सात्यकि व पौण्ड्रक भी अपने गदा युद्ध में एक दूसरे के प्राण लेने की चेष्टा करते थे । इस प्रकार के भीषण युद्ध से उड़ती हुई धूल के कारण आकाश इतना ढक गया था कि तारामंडल तक दिखाई नहीं देते थे । चारों तरफ भयंकर अंधकार था । रात इस प्रकार ढलती गई । चन्द्रमा पश्चिम में अस्त हो चला । सूर्य पूर्व में उदय होने लगा । परन्तु इन रणबांकुरों का भीषण युद्ध अबाध गति से निरन्तर चलता रहा ।

—:—

श्रीकृष्ण पौण्ड्रक युद्ध

भगवान् श्रीकृष्ण प्रातःकाल बदरीवन में मुनिजनों को प्रणाम कर उनसे विदा होकर द्वारका के लिए गरुड़ वाहन पर सवार होकर तीव्र गति से चल दिये । द्वारका के पास पहुँचने पर उन्हें युद्ध क्षेत्र का शोर सुनाई दिया जिसमें सात्यकि की ललकार स्पष्ट सुनाई दे रही थी । उन्हें यह समझते देर न लगी कि पौण्ड्रक ने रात में द्वारका पर चढ़ाई कर दी है । अतएव उन्होंने वृष्णियों व यादवों

के उत्साह वृद्धि के लिए अपने पांचजन्य शंख के निनाद से सम्पूर्ण वातावरण को गुँजित कर दिया। श्री कृष्ण आ गये का संकेत पांचजन्य शंख के द्वारा पाकर यादवगण भयमुक्त होकर दस गुने उत्साह के साथ युद्ध करने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वारका में उतर कर गरुड़ को स्वर्ग लोक में भेज दिया तथा अपने सारथि दारुक द्वारा योजित रथारूढ़ होकर युद्ध क्षेत्र में पहुँचकर पांचजन्य को बजाया। पौण्ड्रक सात्यकि को छोड़कर श्री कृष्ण के सामने आ पहुँचा। सात्यकि राजा पौण्ड्रक को धिक्कारते हुए कि तुमने बिना मुझसे युद्ध का फैसला किये ही भयभीत होकर युद्ध त्याग दिया। यह कायरपन है तथा क्षात्र धर्म के विरुद्ध है। तुम्हें पहले मुझसे युद्ध का फैसला करके ही फिर किसी अन्य से लड़ना चाहिये। कहकर युद्ध के लिए पौण्ड्रक के सामने खड़ा हो गया। परन्तु पौण्ड्रक श्रीकृष्ण की ही तरफ बढ़ता रहा। जिससे क्रोधित होकर सात्यकि ने पौण्ड्रक की छाती पर गदा मारी। इस पर श्रीकृष्ण ने सात्यकि की प्रशंसा की और बोले—भाई रहने दो। अब यह मात्र हमीं से युद्ध करना चाह रहा है। इसकी इच्छा पूरी होने दो।

श्रीकृष्ण के सामने राजा पौण्ड्रक पहुँचकर गर्व पूर्ण बोला—अरे ग्वाले ! अब तक तुम कहाँ छिपे थे। आज

मैं तेरी खाल उधेड़ूँगा और तेरे शरीर की बोटी-बोटी काटकर कुत्तों, गीदड़ों व गीधों को खिलाऊँगा । अभी-अभी मैं तुम्हारे सहित तुम्हारी सेना का भी संहार कर मात्र मैं ही वासुदेव रह जाऊँगा । तुम्हारे शंख चक्र व गदा तथा शार्ङ्ग धनुष को नष्ट कर तुम्हारा घसण्ड चूर किये देता हूँ । तुम्हें जानना चाहिए । मैं भी शंख, चक्र, गदा व शार्ङ्ग धनुष को धारण करता हूँ । परन्तु तुम्हारे जैसे नकली नहीं असली धारण करता हूँ । अब मैं तुम्हारे सामने युद्ध के लिए तैयार हूँ या तो मैदान छोड़कर भाग जाओ अथवा युद्ध में शहीद होने के लिए शस्त्र ग्रहण कर युद्ध करो ।

पौण्ड्रक की गर्व पूर्ण बातों को सुनकर श्रीकृष्ण बोले, हे राजन् ! तुम हमें चाहे गौ, बालक, स्त्री, वृद्ध आदि का हत्यारा कह लो चाहे पापी कह लो । मेरे शंख, चक्र, गदा व धनुष तुम्हारी समझ में व्यर्थ ही क्यों नहीं परन्तु इन सबके सामने रंग रूप में तुम्हारे शंख, चक्र, व धनुष इन्हीं के तुल्य क्यों न हों, फिर भी महानता में बराबरी नहीं कर सकते । तुम्हारे अन्य अस्त्र-शस्त्र भी हमारे अन्य अस्त्र-शस्त्रों की समता रंग रूप में कर सकते हैं परन्तु गुणवत्ता में नहीं । मैं एक साधारण ग्वाल होकर भी सभी प्राणियों को जीवन देने वाला, रक्षा करने वाला, सज्जनों की रक्षा करने वाला तथा दुष्टों को मर्दन करने वाला हूँ ।

अब मुझे युद्ध में परास्त करके अपना गुणगान गाओ । यूँ स्वयं अपनी प्रशंसा करना व्यर्थ है । यदि तुममें समर्थता है तो शस्त्र व कवच ग्रहण करो । मेरे से युद्ध करो ।

श्री कृष्ण ने सिंहनाद करते हुए अपने तीक्ष्ण बाणों से पौण्ड्रक को घायल कर दिया । उत्तर में पौण्ड्रक ने भी अपने बाणों से श्री कृष्ण के सारथि दारुक व घोड़ों को घायल कर दिया । फिर श्रीकृष्ण ने पूर्ण क्रोध के साथ अपने सुतीक्ष्ण बाणों से पौण्ड्रक के रथ की ध्वजा और सारथी के मस्तक को काट दिया घोड़ों को मार दिया एवं उसके रथ को भी टुकड़े-टुकड़े करके चारों तरफ बिखेर दिया । तत्पश्चात् युद्ध क्षेत्र में मुस्कराते हुए श्री कृष्ण खड़े हो गए । पौण्ड्रक ने रथ विहीन होकर भी खड्ग से, परिध से, सहस्राधार चक्र से व अन्य भयंकर-२ शस्त्रों से श्रीकृष्ण पर प्रहार किया । परन्तु श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए उसके सभी शस्त्रों को काट डाला । फिर पौण्ड्रक ने एक विशाल पत्थर का प्रहार श्रीकृष्ण पर किया । परन्तु उसे श्रीकृष्ण ने आकाश मार्ग में ही लपक कर पौण्ड्रक पर फेंक दिया । भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत देर तक पौण्ड्रक को खेल खेलाने के बाद अपना चक्र हाथ में लिया और उसे पौण्ड्रक पर चला दिया । पौण्ड्रक का शरीर क्षत विक्षत हो गया और मृत्यु को प्राप्त होकर पृथ्वी पर सदा-सदा के लिये सो

गया । पौण्ड्रक की मृत्यु से यादव गण प्रसन्न होकर श्री-
कृष्ण की जय-जयकार करने लगे । श्रीकृष्ण अपनी सुधर्मा
सभा में वापस आ गये ।

उधर बलराम ने एकलव्य की छाती पर भयंकर शक्ति
का प्रहार किया । जिससे क्रोधित होकर एकलव्य ने भी
बलराम की छाती पर गदा मारी । फिर बलराम जी ने
एक भोषण प्राण घातक गदा लेकर एकलव्य का पीछा
किया । एकलव्य प्राण मोह से समुद्र की ओर भागा ।
बलराम जी पीछा करते गये । पाँच योजन तक भागने के
बाद एकलव्य समुद्र में गोता खाकर अदृश्य हो गया । तथा
एक दूसरे द्वीप में जाकर रहने लगा । बलराम जी वापस
सुधर्मा सभा में आ गये । उसी क्षण सात्यकि भी सभा में
आ गये । सभा में भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी को उचित
सत्कार कर बिठाया । फिर अपने कैलाश की यात्रा का
वर्णन तथा वहाँ पर घण्टाकर्ण पिशाच व भगवान् शंकर
के मिलने का सारा वृत्तान्त सुनाया । यादव व वृष्णि
भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए अपने घर को गए ।
फिर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी व सत्यभामा आदि पत्नियों को
कैलाश पर्वत का सारा वृत्तान्त सुनाया । और अपना राज-
काज सुचारुरूप से करने लगे ।

हंस डिम्भक उपाख्यान

हंस और डिम्भक की कथा का वर्णन करते हुए महर्षि वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय से कहा—हे राजन ! शात्व नामक नगर में पंच यज्ञ-रत, जितेन्द्रिय, ब्रह्म के ज्ञाता, वेदज्ञ, यज्ञमय एवं श्रेष्ठ विचारों से युक्त ब्रह्मदत्त नामक एक राजा रहता था जिसकी दो पत्नियां थीं परन्तु सन्तान एक भी न थी । ब्रह्मदत्त एक परम प्रिय मित्र वेदज्ञ, योग परायण, विद्वान् मित्रसह नामक एक ब्राह्मण था । मित्रसह भी निःसन्तान था । अतः दोनों ने ही एक साथ (ब्रह्मदत्त ने भगवान् शंकर की तथा मित्रसह ने भगवान् विष्णु का) कठिन तप कर पुत्र होने की वर प्राप्ति की । भगवान् शंकर के आशीर्वाद से ब्रह्मदत्त के दो पुत्र हंस और डिम्भक हुए तथा भगवान् विष्णु के आशीर्वाद से उन्हीं की तरह मित्रसह को एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ जिसका नाम जनार्दन पड़ा । दोनों ने ही अपने-अपने पुत्रों का जातकर्म आदि संस्कार बड़े उत्साह पूर्वक किया । दोनों मित्रों के पुत्र अत्यन्त ही रूपवान् व समवयस्क थे । दोनों कुमार बड़े होने पर वेद शास्त्रों, नीति शास्त्रों तथा शस्त्र विद्या का अध्ययन कर उत्तम कोटि के विद्वान् बन गये । तीनों कुमारों में भी गहरी मित्रता हो गई ।

शिक्षा पूरी कर हंस और डिम्भक दोनों भाई हिमा-

लय पर जाकर भगवान शंकर को प्रसन्न करने हेतु कठिन तप में लीन हो गये । दोनों कुमार अपनी तपस्या में मात्र हवा और पानी का आहार ग्रहण करते हुए जगदीश्वर भगवान शंकर की स्तुति निम्न प्रकार करने लगे । यथा—

नमस्ते देवदेवेति शंकरेति दिवानिशम् ।

हर सर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते । ४ ।

वृषभध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगती पते ।

भक्तप्रिय गिरिशेष वामदेव शिवाच्युत । ५ ।

सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय ।

भूतभावे देवेश प्रणवात् मन्सदाशिव । ६ ।

इत्यादिनामभिन्नित्यं स्तुवन्तां शंकरं भवम् ।

हृदि कृत्वा विरूपाक्षं तपस्तेपतुरंजसा । ७ ।

अर्थात् हे देवाधिदेव शंकर ! आपको नमस्कार है ।

हे प्रभो ! हर, सर्व, शिवानन्द, नीलग्रीव, महादेव, वृषभध्वज, विरूपाक्ष, हर्यक्ष, जगदीश्वर, भक्तप्रिय, गिरीश ईश्वर, वामदेव, शिव, अच्युत, सद्योजात, महादेव, देवदेव, गुहाशय, भूतभावन, प्रणवात्मा, और सदा शिव यह सभी नाम आपके ही हैं । इस प्रकार दोनों राजकुमार भगवान शंकर की स्तुति दिन रात करते हुए तपस्या में लीन हो गये । तथा अपने हृदय में भगवान शंकर को ध्यानस्थ कर तपस्या में लीन हो गये । इस प्रकार वे दोनों अहंकार और ममता को त्याग कर मोन व्रत धारण कर कठोर

तपस्या में लीन हो गये इस प्रकार वे दोनों अहंकार और समता को त्यागकर मौन व्रत धारण कर कठोर तपस्या पांच वर्षों तक की। भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर राजकुमारों को दर्शन दिया और वर मांगने को कहा। दोनों कुमारों ने भगवान् शिव का दर्शन कर प्रसन्नता पूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया फिर दोनों ने निवेदन किया—हे प्रभो यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारी इच्छा सुनें—हम देवता दैत्य, राक्षस, गन्धर्व और असुर आदि से कभी न हारें तथा हमारे पास सभी प्रकार के घोर कर्म करने वाले शस्त्रास्त्र स्वयं ही एकत्र हो जायें। महेश्वरास्त्र, रौद्रास्त्र ब्रह्मशिरास्त्र, अभेद्य कवच, दिव्य, धनुष और फरसा हमें बिना प्रयत्न ही उपलब्ध हो जायें। युद्ध उपस्थित होने पर आपके दो गण सदा ही हमारी रक्षा करते रहें। भगवान् शंकर ने एवमस्तु कहकर तथा विरूपाक्ष और कुण्डोदर को युद्ध में साथ देने को कहा और अन्तर्धान हो गये। भगवान् शंकर से आशीर्वाद प्राप्त कर हंस और डिम्भक दोनों ही महाबली, सभी दिव्य आयुधों और कवचादि से सम्पन्न होकर देवता दानव आदि से अजेय हो गये। तथा भगवान् शंकर में ही सदा ध्यानस्थ रहते हुए सिर पर जटा जूट बढ़ाये, ललाट पर त्रिपुण्ड्र व बदन में भस्म लगाये, अंगों में रुद्राक्ष धारण किये हुए, रात दिन

बाघम्बर ओढ़े और हे शिव ! हे शंकर ! हे महादेव ! हे शान्त ! हे शान्त ! आपको बारम्बार नमस्कार है । ऐसी रट लगाये साक्षात् शिव ही प्रतीत होते थे । फिर दोनों ही घर आकर माता-पिता के चरणों में पड़कर उनकी स्तुति की । उधर जनार्दन भी पीताम्बर धारी भगवान् विष्णु का मनोयोग से उपासना कर ब्रह्मतत्त्व का ज्ञाता हो गया । तीनों की शादी हो गई । उसके बाद तीनों ही धार्मिक कार्यों के अनुष्ठान में लगे रहते थे ।

हंस-डिम्भक व दुर्वासा वृत्तान्त

वैशम्पायन जी ने कहा कि हे धर्मात्मा ! जनार्दन हंस और डिम्भक तीनों ही ने यज्ञ क्षेत्र में पहुँचकर नमस्कार किया । शिष्यों ने भी वन तपस्वियों को उचित सत्कार करके आसन पर बिठाया । कुशल मंगल होने के बाद हंस ने विनय पूर्वक कहा—हे मुनियों ! हमने अपने पिताजी के द्वारा दिग्विजय वाले राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया है । अतः आप लोग अपने शिष्यों सहित यज्ञ के उपकरणों के सहित आने की कृपा करें । भगवान् शंकर को प्रसन्न करके हमने सभी प्रकार के दिव्यास्त्र प्राप्त कर

लिये हैं, इसलिए देवता और दैत्य भी हमारा सामना नहीं कर सकते, अनुष्य किस खेत की मूली है ? कोई भी ऐसा शत्रु नहीं है जो हमें परास्त करने में समर्थ हो । सुनियों ने हंस-डिम्भक को यज्ञ में आने का आश्वासन देकर बिदा किया । फिर तीनों राजकुमार पुष्कर क्षेत्र के उत्तरी किनारे पर स्थित महर्षि दुर्वासा के आश्रम में पहुंच गये । वहां वेद निरत, लोकहित के आकांक्षी, कोपीनधारी, जितेन्द्रिय, अहंकार को त्याग कर शान्त, शुभ, अक्षर, सर्वतोमुख, वेदान्तमूर्ति, अव्यक्त, शाश्वत, शिव, नित्ययुक्त, विरूपाक्ष, मूलभूताधार, अनामय भगवान् विष्णु की आराधना में महर्षि दुर्वासा सदा ही व्यस्त रहते थे । वहाँ महर्षि के शिष्य भी अपने गुरु के साथ-२ भगवान् की उपासना में सदा ही तत्पर रहते थे । महर्षि दुर्वासा भीषण क्रोध की साक्षात् मूर्ति थे । वे क्रोधाग्नि में तीनों लोकों को भस्म कर देने की क्षमता रखते थे । उनके क्रोध का सामना करने में कोई देवता भी समर्थ नहीं था । क्रोधमूर्ति एवं विश्वरूप धारी महर्षि दुर्वासा साक्षात् क्रोध की मूर्ति प्रतीत हो रहे थे । हंस-डिम्भक महर्षि को काषाय वस्त्र का कोपीन धारण किये ब्रह्मोपासना में लीन देखकर बोले— यह कौन मूर्ख है ? जो गृहस्थाश्रम को त्याग कर अब किस आश्रम में आया है । वास्तव में गृहस्थ ही धर्मात्मा, धर्म-

विद, धर्मरूप और प्रधान वर्ण है सभी प्राणियों को माता स्वरूप पालन करने वाला है। अतः जो श्रेष्ठ आश्रम को त्यागकर अन्य आश्रम को स्वीकार करता है। वह महा-मूर्ख है, तपस्वी नहीं पाखण्डी है, इस मूर्ख को न जाने किसने इस प्रकार की शिक्षा दी है। अब इन मूर्खों को हम लोग गृहस्थ आश्रम में लाकर धर्म मार्ग में प्रवृत्त करके ही घर वापस चलेंगे। फिर ये दोनों जनार्दन को भी साथ लेकर दुर्भाग्य से ग्रसित होकर तपस्वी दुर्वासा के पास जा कर उनको व उनके शिष्यों को क्रोधपूर्वक देखने लगे जैसे उन सबको खा जाना चाहते हों।

हंस-डिम्भक ने कहा—ऐ ब्राह्मणों तुम लोगों ने उत्तम गृहस्थाश्रम को त्यागकर यह कौन से आश्रम को स्वीकार किया है। यह तप नहीं निरा पाखण्ड है। आपके इस कर्म से लोगों का अहित होगा तथा दुष्कर्म के कारण आप लोग भी पाप के भागी बनोगे। इससे स्वयं तो नष्ट होंगे ही दूसरों को भी करोगे। क्या इस दुष्कर्म से रोकने वाला कोई नहीं है निश्चय ही किसी दुष्ट व्यक्ति ने आप लोगों को भ्रष्ट करने के लिए ऐसी शिक्षा दी है। आप लोग इस आडम्बर को त्याग कर गृहस्थी बनें और पंचयज्ञ करके सुख व स्वर्ग को प्राप्त करें।

हंस और डिम्भक के इस प्रकार के वचनों को सुनकर

ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन भय से कंपित हो गया । वह दुर्वासा को प्रणाम कर राजकुमारों से बोला । आप लोग निश्चय ही सूर्य हैं ज्ञात होता है अब आप लोगों की मृत्यु समीप है, आप लोगों पर ब्रह्मदण्ड का आघात होने वाला है । इन सभी तपस्वियों का हृदय ज्ञान पूर्ण है । ये अपनी ज्ञानाग्नि से सभी कर्मों को भस्मीभूत कर अपने प्राणों का हवन करते हैं, हमारे ऋषि, महर्षियों ने मनुष्य जीवन को चार भागों में विभक्त किया है । ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम । इन चारों आश्रमों में सन्यासाश्रम ही उत्तमकोटि का है । इस आश्रम में जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य बुद्धिमान एवं पुण्यात्मा होते हैं । तुम दोनों को वृद्धों के प्रति सेवा भावी न होने के कारण ही श्रेष्ठ ज्ञान नहीं है । इसीलिए तुम दोनों से इस प्रकार के अनिष्टकारी वचनों को बोलते हो । यदि पुनः इस प्रकार के वचन बोले तो मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ । तुम लोगों की मित्रता को त्याग कर पर्वत से गिरकर अथवा भयंकर विषपात करके या समुद्र में गिरकर ही या तुम लोगों के सामने ही अपने प्राण त्याग दूंगा । क्या गुरुजी से तुम लोगों ने ऐसी ही शिक्षा पायी है । तुम लोगों की मित्रता के कारण ही हमें भी इस प्रकार के दुष्ट वचन सुनने पड़ रहे हैं । अब ऐसी बात पुनः मत कहना ।

हंस-डिम्भक की बातों को सुनकर महर्षि क्रोध से आग-बबूला हो गये । ऐसा लग रहा था कि वे तत्काल ही उन दोनों को भस्म कर देना चाहते हों । क्रोधाग्नि में उनका रोम-रोम जल रहा था । परन्तु साथ ही ब्राह्मण जनार्दन के ऊपर दयार्द्र भी थे । महर्षि अपने को संयत रखते हुए हंस-डिम्भक से बोले— यदि तुम लोग अपना भला चाहते हो तो यथा शीघ्र यहाँ से चले जाओ । अब मुझे अपने क्रोध को रोक पाना कठिन हो रहा है । इस समय मैं तुम्हारे जैसे समस्त राजाओं को भस्म करने में समर्थ हूँ । मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता । बस अब तुम लोग शीघ्र यहाँ से चले जाओ ।

दुर्वासा के वचनों को सुनकर हंस-डिम्भक भी क्रोधित हो गये और ऋषि की बांह को पकड़ कर उनके कोपीन को फाड़ दिया । भय से अन्य मुनिजन वहाँ से भाग खड़े हुए । पुनः महर्षि दुर्वासा ने मधुर वचनों में कहा— अरे राजकुल में उत्पन्न नीच कुमारों ! मैं चाहूँ तो तुम लोगों को अपने तपोबल से नष्ट कर सकता हूँ । पर ऐसा करना नहीं चाहता । क्योंकि इस पृथ्वी का शासन इस समय यादवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण चला रहे हैं । वही तुम्हारे अहंकार का मर्दन करेंगे । राजा जरासन्ध तुम्हारा भाई ही है परन्तु उसके मुख से भी इस प्रकार के दुष्ट वचन

नहीं निकलेंगे । यदि वह सगंधराज जरासन्ध तुम्हारे इस व्यवहार को सुनेगा तो तुम लोगों को कहने में भी शरमायेगा । फिर महर्षि जनार्दन से बोले—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ तुम्हारा कल्याण हो तथा विष्णु के चरणों में तुम्हारी अविरल भक्ति बनी रहे । शंख चक्र गदाधारी भगवान का दर्शन प्राप्त कर तुम अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करोगे ।

—:०:—

महर्षि दुर्वासा का द्वारका आगमन

हंस-डिम्बक महर्षि दुर्वासा के आगमन की सारी वस्तुओं को तोड़-फोड़कर वापस आ गये । ब्राह्मण जनार्दन भी उन दोनों के पीछे-पीछे दुःखी मन से आ गया । महर्षि दुर्वासा ने अपने आश्रम से यतियों को भागते हुए देखकर सबको रोका, भयमुक्त किया तथा सभी को लेकर भगवान श्रीकृष्ण से मिलने द्वारिका चल दिये । बोले भगवान श्री कृष्ण ही विश्व के शासक एवं धर्म प्रवर्तक, सभी प्रकार के प्रपञ्चों के मूल कारण सभी के परम गुरु, संयतात्मा वाले एवं तत्त्व ज्ञानियों के लिए अत्यन्त ही प्रिय हैं । वे ही नीच कर्मा दुष्ट पापियों के अहंकार को मर्दन करेंगे । आप सभी यती सारे टूटे फूटे पात्रादि को भी साथ ले लें जिसे कि उनके दुष्कर्मा को भगवान को दिखाया जा सके ।

कहर्षि दुर्वासा के नेतृत्व में पांच हजार यती गण दिन रात पैदल चलकर पुष्कर क्षेत्र से द्वारिका पुरी पहुँच गये प्रातःकाल सभी ने बावड़ी में स्नान किया और नित्य नैमित्तिक कर्म से निवृत्त होकर शीघ्र ही सुधर्मा सभा में श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए चल दिये । जब ये सभी तपस्वी सुधर्मा सभा के दरवाजे पर पहुँचे । वहाँ अन्दर जाने के लिए पहरेदार ने दरवाजे पर ही रोक दिया । सुधर्मा सभा में कमल नयन, श्यामवर्ण वाले पीताम्बर धारी एवं किरीट धारी श्रीकृष्ण सात्यकि आदि यादव वंशियों के साथ खेलने में व्यस्त थे । तथा खेल देखने के लिए वसुदेव, उद्धव आदि अनेक यादव गण सभा में उपस्थित थे । खेल खेलते दोपहर हो गई । अनुमति प्राप्त होने पर जब यती गण सुधर्मा सभा में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण हाथ में गोली लिये खेलने में मस्त हैं । उस समय वे एक आँख से खेल को तो दूसरी आँख से यतियों सहित महर्षि दुर्वासा को देख रहे थे । उस समय महर्षि ऐसी क्रोध की मुद्रा में थे जैसे कि वे तीनों लोकों को भस्म कर देना चाहते हों, उनकी कोपीन आधी फटी हुई थी तथा हाथ में टूटा हुआ दण्ड व कमण्डल था । उन पापियों की करतूत की याद, आग में घी डालने का काम कर रही थी । किसी अक्रा-रण आने वाली विपत्ति को जानकर सभी सभा में उप-

स्थित यादव गण भयभीत मन से हाथ जोड़े महर्षि की तरफ देख रहे थे । तभी श्रीकृष्ण ने महर्षि को आसन पर बैठने का निवेदन किया एवं अपने योग्य कार्य पूछा । सभी यती गण सहित अपने-अपने आसन पर बैठ गये । भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी का उचित सत्कार किया । फिर विनय पूर्वक बोले—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! आपके यहां आने का क्या कारण है हम आपकी क्या सेवा करें । आपके इस रूप को देखकर मेरा हृदय व्याकुल व व्यथित हो रहा है । आप सभी प्रकार के पापों से मुक्त एवं संन्यास मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं । आपको हमसे कामना ही क्या हो सकती है । परन्तु आप इतनी दूर से आये हैं तो आने का कोई न कोई विशेष कारण तो अवश्य ही है कृपया उसे बताने की कृपा करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण की इस वाणी को सुनकर महर्षि दुर्वासा का हृदय और जल उठा । फिर भी वे अपने क्रोध को संयत कर मुस्कराते हुए भगवान् श्रीकृष्ण से बोले—हे यादवेश्वर ! आप सभी कुछ जानकर भी अनजान क्यों बनते हैं । आप महादेव होकर भी अपनी मायायुक्त वाणी से हमें भ्रमाना चाहते हैं । आप देवों के देवेश्वर पृथ्वी पति, वेद स्वरूप परम पद हैं । आपने सर्वज्ञ होते हुए भी अपनी अनभिज्ञता प्रकट करके मुझे विस्मित कर दिया है ।

आपको इस प्रकार अनभिज्ञ बनने से लाभ ही क्या है । हे प्रभो ! मैं आपके ईश्वरीय रूप से भली प्रकार परिचित हूँ । आप परमतेजोमय स्वरूप, ओंकार एवं वाणीमय प्रणव हैं । यह संसार आपके शरीर से ही उत्पन्न होकर आपके शरीर में ही विलीन हो जाता है । हे नाथ ! आप ही वायु रूप में, आकाश रूप में तथा पृथ्वी रूप में, रस रूप में, सूर्य रूप में, चन्द्रमा रूप में अर्थात् जिस रूप में भी हम आपका चिन्तन करते हैं उसी रूप में स्पष्ट दिखाई देते हैं तो फिर जानकर भी अनजान क्यों बनते हैं । मैं अच्छी तरह समझता हूँ । आपने खेल खेलने में व्यस्त होने के कारण मुझ गरीब के संकट की ओर ध्यान नहीं दिया । हे विष्णो ! हम भय से अत्यन्त ही पीड़ित व उद्धिग्न हो कर ही आपकी शरण में आये हैं । आपने हमारे घोर संकट पर ध्यान न दिया । यह मेरा परम दुर्भाग्य है । हे दयानिधे ! हंस और डिम्भक नामक दो क्षत्रिय कुमार भगवान् शंकर से वर प्राप्त करके अति गर्वित हो गये हैं । वे अपने अहंकार के सामने किसी को भी कुछ नहीं समझ रहे । उन दोनों ने ही हमें घोर कष्ट दिया है, अपमानित किया है, अपशब्द बोलकर तिरस्कार किया है । साथ ही यह देखिये हमारे शिष्य, द्विवल, वंशदण्ड व अन्य पात्रों को तोड़ दिया है कौपीन को फाड़ दिया है । हे प्रभो ! हम

अभागे क्या करें ? हम तो आपकी शरण में आये हैं । आप ही हमारी रक्षा का उपाय करें ? यदि आप उन दोनों क्षत्रिय कुमारों को मार कर त्रैलोक्य की रक्षा नहीं करते तो निश्चय ही उनके द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में से कोई भी नहीं बचेगा । यदि आप उन दोनों से तीनों लोकों की रक्षा नहीं करते तो आपका रक्षक नाम व्यर्थ सिद्ध होगा । क्योंकि उन दोनों का सामना इन्द्र आदि देवता भी नहीं कर सकते । हे जगदीश्वर ! त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् ! कहते हुए महर्षि दुर्वासा मूर्च्छित हो गये ।

महर्षि दुर्वासा के कष्टपूर्ण वचनों को सुनने के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने एक लम्बी ठण्डी सांस ली । फिर बोले—हे ब्रह्मन् ! इसमें सब दोष मेरा है अतः मुझे क्षमा करें । हंस-डिम्भक को भगवान् शंकर, इन्द्र, धनपति कुबेर, अथवा यम, वरुण, ब्रह्मा आदि किसी ने भी वर क्यों न दिया हो । मैं उन दोनों का वध करके आप लोगों की रक्षा अवश्य ही करूँगा । उसके द्वारा आप लोगों को कष्ट दिये जाने का समाचार मैं पहले सुन चुका हूँ । राजा जरासन्ध उनका भाई होने के कारण निश्चय ही जी-जान से मदद करेगा । अतः मैं ऐसा यत्न करूँगा कि राजा जरासन्ध उन लोगों की मदद भी न कर सकें और वे लोग

मारे भी जायें । आप यह निश्चय जानें, मैं उन लोगों का नाश करके ही चैन की बंशी बजाऊंगा ।

श्रीकृष्ण द्वारा की गई इस प्रकार की प्रतिज्ञा को सुनकर महर्षि दुर्वासा प्रसन्न होकर बोले—हे विष्णो ! हे देव ! हे हरे ! हे चक्रपाणे ! आप तीनों लोकों के स्वामी, तीन धाम रूप, सर्वसंहारी, देवदेवेश्वर, सर्वव्याप्त तथा समदर्शी हैं तथा आपके द्वारा ही इस विश्व का कल्याण सम्भव है अतः आपको बारम्बार नमस्कार है । हे जगन्नाथ ! आप ही कहा करते हैं कि आपमें हममें कोई भेद नहीं है तथा साधु लोग क्षमा के पात्र होते हैं । इसलिये आप मुझे क्षमा करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन् ! संन्यासियों के लिए तो क्षमा ही परम शक्ति है । तत्त्व ज्ञान के समान ही क्षमा से भी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि क्षमा ही धर्म क्षमा ही सत्य, क्षमा ही दान, क्षमा ही यश तथा वेदज्ञों के द्वारा क्षमा को ही स्वर्ग की सीढ़ी कहा गया है । अतः क्षमा शक्ति की सावधानी पूर्वक रक्षा करनी चाहिये । मैं तो सदा ही क्षमायुक्त रहता हूँ । परन्तु हे ब्रह्मन् इस समय आप मुझे क्षमा करें । आज आप सभी यतिगणों के साथ हमारे यहाँ भोजन स्वीकार करें । दुर्वासा ने श्रीकृष्ण के यहाँ भोजन के निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया । फिर

भगवान् श्रीकृष्ण ने महर्षि दुर्वासा सहित यतिगणों को उत्तमोत्तम सुस्वादिविष्ट भोजन कराकर संतुष्ट किया। एवं पहनने के लिए वस्त्र दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा यतिगण सम्मानित हुए प्रसन्नतापूर्वक वहां से विदा हुए।

—:०:—

हंस के दूत का द्वारका आगमन

महर्षि दुर्वासा द्वारकापुरी में ही नारद जी के साथ रहते हुए ब्रह्मतत्त्व पर चर्चा करते हुए समय व्यतीत करने लगे। उधर हंस-डिम्भक ने अपने पिताजी के पास पहुंच कर चरण स्पर्श किया। तथा सभासदों के सामने ही राजसूय यज्ञ करने को परामर्श दिया। पिता ब्रह्मदत्त ने स्वीकार कर लिया। फिर उन दोनों कुमारों ने रथ, अश्व, गज व पैदल सेना तथा अन्य सामन्तों को साथ लेकर दिग्विजय करने जाने का विचार किया। परन्तु श्रेष्ठ ब्राह्मण जनार्दन ने हंस-डिम्भक के इस दुःसाहस पूर्ण कार्य करने की इच्छा को जानकर कहा—हे मित्रों! इस प्रकार के कार्य करने से पूर्व अच्छी प्रकार विचार कर लो। फिर ऐसा दुःसाहस करना क्योंकि इस समय भीष्म, जरासन्ध,

बाहजीक एवम् वीर श्रेष्ठ यादवों के रहते यह कार्य सम्भव नहीं लगता कि हो पायेगा । जिस परशुराम ने इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन किया था, उन्हीं परशुराम को जितेन्द्रिय भीष्म पितामह ने परास्त किया था । जरासन्ध की शक्ति किसी से छिपी नहीं है और वृष्णि वंशी श्रीकृष्ण से जिसने भी युद्ध किया उसका सब प्रकार से नाश ही हुआ । भगवान् श्रीकृष्ण तो अकेले ही तीनों लोकों के नाश करने में समर्थ हैं । सात्यकि आदि अन्य अनेक यादव उच्चकोटि के श्रेष्ठ वीर हैं । महर्षि दुर्वासा तुमसे पहले ही द्वारका पहुंच चुके हैं । अतः आप अपना दूत पहले ही भेजकर आने वाली बाधाओं को दूर कीजिए ।

जनार्दन से हंस बोला—मित्र ! भीष्म अब वृद्ध हो गए । अब पहले जैसी युद्ध करने की क्षमता उनमें नहीं है । जरासन्ध तो अपने भाई ही लगते हैं । इसलिए हे मित्र ! तुम श्रीकृष्ण के यहाँ जाकर हमारे राजसूय यज्ञ करने की सूचना दो । जनार्दन ने यह सोचकर कि द्वारका जाने पर वहाँ शंख, चक्र और गदाधारी भगवान् श्रीकृष्ण का निश्चय ही दर्शन होगा । सोचकर प्रातः ही विप्र श्रेष्ठ ने घोड़े पर चढ़कर द्वारका के लिए प्रस्थान किया ।

पं० जनार्दन को द्वारका जाते समय हृदय में इतनी उत्सुकता थी कि वे पलक भ्रमकते ही द्वारका पहुंच जाना

चाहते थे । वे इस बात से अति प्रसन्न थे कि वहां शंख, चक्र गदाधारी व शार्ङ्ग धनुषधारी भगवान श्री कृष्ण का दर्शन होगा । उनके चरण रज को माथे पर लगाने को मिलेगा । उनकी माधुरी व मन-माहिनी वाणी सुनने को मिलेगी । उनके श्यामवर्ण वाले मनोहर शरीर, माधुरी मूरति, कमल नयन, घुंघराले काल बाल भगवान श्रीकृष्ण के मंजुल रूप का दर्शन होगा । जिससे मेरा जीवन सफल व धन्य हो जायेगा । हंस भी मेरा अच्छा मित्र है क्योंकि मैं तो उसी के कार्यवश वहां जा रहा हूं । उसी के द्वारा ही तो मुझे आज महा-महिमान्वित पीताम्बर व काषाय वस्त्रधारी, बड़े-बड़े अलंकारों से सुशोभित व मन्द मुस्कान वाले चक्रपाणि, शंख, गदा व शार्ङ्गधारी भगवान के मनोरम रूप का दर्शन करूंगा । मुझे तो ऐसा आभास हो रहा है कि यादवेन्द्र भगवान श्री कृष्ण मेरे सामने ही साक्षात् खड़े हैं और मैं उनका दर्शन पाकर आनन्द विभोर हो रहा हूं । परन्तु एक बात बड़ी कठिन जान पड़ रही है । जब मैं भगवान का दर्शन करूंगा तो किस मुख से मैं कहूंगा कि “आप हंस के लिए कर दो ।” उनसे यह कहना कि “हे कृष्ण ! तुम हंस राजा के करदाता हो, आज्ञाकारी सेवक हो । तुम कर प्रदान कर और बहुत सा नमक राजा हंस के पास भिजवा दो ।” भगवान शार्ङ्ग धनुर्धारी के

सामने कहना मेरे लिए कैसे सम्भव होगा । यह बड़ी लज्जा वाली बात है । परन्तु निश्चय ही बड़े लोगों की मित्रता मंहगी पड़ती है । इस समय मैं राजा हंस का दूत होकर जा रहा हूँ । इसलिये यह अनुचित बात भी भगवान श्री-कृष्ण से कहनी ही पड़ेगी । प्रभु तो सभी भक्तों के हृदय में सदा ही निवास करते हैं तथा भक्त के मन की आन्तरिक भावना को भी अच्छी तरह समझते हैं । अतः वे मेरे अन्तरात्मा के भावों को अवश्य ही जान जायेंगे कि मुझे यह कटु वचन स्वयं ही नहीं अपितु मित्रता के कारण विवश होकर कहना पड़ रहा है । उसमें मेरा दोष न जानकर भगवान मुझे क्षमा कर देंगे । आज भगवान का दर्शन होने से मेरे द्वारा किये गये सारे यज्ञ तप आदि पुण्य कर्म सफल हो जायेंगे इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने मन में उहापोह करते हुए द्वारका पहुँच गया ।

ब्राह्मण श्रेष्ठ जनार्दन ने सुधर्मा सभा में पहुँचकर भगवान श्रीकृष्ण को बलराम जी के साथ उच्चासन पर बैठे हुए देखा । उनके सामने शैनेय, सात्यकि और उग्रसेन थे तथा पार्श्व में नारद जी थे । गन्धर्व गण गायन कर रहे हैं एवं अप्सरायें नृत्य । सूत, मागध एवं बन्दीजन श्री-कृष्ण के गुणों का कीर्तन कर रहे थे, ब्राह्मण लोग सामवेद में लीन थे । इस प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण की अलौकिक

सभा को देखकर ब्राह्मण जनार्दन का हृदय बाग-बाग हो उठा। फिर जनार्दन ने भगवान् श्रीकृष्ण व बलराम को नमस्कार कर कहा—हे देवदेवेश्वर ! मैं हंस और डिम्भक का भेजा हुआ दूत हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने विप्रदूत जनार्दन को आसन पर बिठाया फिर मधुर वचनों में शाल्व नरेश ब्रह्मदत्त तथा उनके पुत्रों हंस व डिम्भक तथा जनार्दन कि पिता का कुशल मंगल पूछने के बाद कहा—हे श्रेष्ठ द्विजोत्तम ! अब आपसे हंस-डिम्भक ने जो सन्देश भिजवाया है। उसे निःशंक भाव से भयरहित होकर कहें। आप तो दूत हैं। अतः वह सन्देश कहने योग्य है या नहीं ऐसा आप विचार न करें, क्योंकि राजा की आज्ञा का पालन करना ही दूत का काम है। आप तो दूत होने के नाते संदेश को ठीक ठीक कहने के लिए स्वतन्त्र हैं। इसलिए संदेश कहना उचित है अथवा अनुचित, बिना विचार किये आप कहें। क्योंकि आपके संदेश को सुनने के बाद ही अपने कर्तव्य पर विचार व निर्णय करूंगा। विप्र जनार्दन ने लजाते-लजाते भगवान् के विशेष आग्रह पर हंस का संदेश सुना दिया। कहा—हे प्रभु ! आप तो सभी के भावों को जानते ही हैं। सर्वज्ञ हैं। फिर भी आप मेरे मुख से उस दुष्टमति वाले हंस-डिम्भक के सन्देश को क्यों सुनना चाहते हैं उनके सन्देश तो

आपको ज्ञात ही है । फिर भी जब आप सुनना ही चाहते हैं और मैं दूत रूप में आया हूँ तो राजा की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा । राजा हंस-डिम्भक के पिता ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं । इसीलिये वे आपसे कर मांगते हैं । तथा राजसूय यज्ञ में आपको ढेर सारा नमक लेकर आने को कहा है । वे दोनों भगवान शिव द्वारा वर प्राप्त कर अहंकार में डूबे हैं, नहीं तो भला परम पिता परमेश्वर जगदीश्वर आपसे कर कौन मांग सकता है । और मेरा यह दुर्भाग्य है कि मैंने हंस राजा की मित्रता के कारण इस तुच्छ दौत्य कर्म को करके ऐसा सन्देश आपको दिया है ।

विप्रदूत के द्वारा सन्देश को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ठठाकर हंसे तथा सभी सदासदों से कहा—हे उपस्थित सज्जनों—यह हंस का संदेश सुनो । मैं उसका कर दाता प्रजा हूँ । या मुझे वह परास्त कर अपने अधीन कर चुका है इस पृथ्वी पर मेरे रहते वह राजसूय यज्ञ करने जा रहा है और मेरे से कर मांगा है तथा यज्ञ में ढेर सारा नमक लेकर आने को कहा है । वह यह नहीं जानता कि मेरे से आज तक किसी ने कर न मांगा है और न भविष्य में ही मुझसे कर मांगने की सामर्थ्य रखता है । श्रीकृष्ण के मुख से इस प्रकार के संदेश को पाकर सभी सभासद इतने जोर

से हंसने लगे एवं जोर-जोर की तालियां बजा-बजाकर चिल्लाने लगे कि “श्रीकृष्ण हंस-डिम्भक के कर दाता प्रजाजन हैं” कि आवाज से आकाश मण्डल को गुञ्जित कर दिया। फिर भगवान् श्रीकृष्ण सभी को शान्त करते हुए विप्र जनार्दन से बोले—हे ब्राह्मण ! तुम निर्दोष हो इसलिये तुम किसी प्रकार की न चिन्ता करो न भय। तुम्हें हमारी भक्ति मिलेगी और तुम मेरी भक्ति करते हुए सुखमय जीवन व्यतीत करोगे। मैं हंस-डिम्भक को कर अवश्य ही दूँगा। अपने शंख, चक्र, गदा व शार्ङ्ग धनुष के तीखे बाणों से युद्धक्षेत्र में मैं अपने चक्र से हंस-डिम्भक के मस्तक को काटकर पृथ्वी पर गिरा दूँगा। हे विप्र ! तुम हंस से जाकर कह दो कि वे दोनों अपने शस्त्र बल के साथ मथुरा प्रयाग या पुष्कर में कहीं भी परसों मुझसे मिलकर युद्ध क्षेत्र में परास्त कर दें तथा अपना कर वसूल कर लें। शायद तुम उनके मित्र होने के कारण मेरी बातों को ठीक से न कह सको। अतः साथ में सात्यकि को भेज रहा हूँ। ये मेरे संदेश को हंस-डिम्भक को अच्छी तरह समझा देंगे। कहकर सात्यकि को विप्र के साथ शाल्व नरेश हंस-डिम्भक के पास जाने का आदेश दिया।

—::—

सात्यकि द्वारा हंस को संदेश

सात्यकि ने विप्र जनार्दन के साथ शात्व नगर में पहुँचकर राजभवन में प्रवेश किया। विप्र ने सात्यकि का परिचय हंस-डिम्भक से कराया कि यह सात्यकि भगवान् श्रीकृष्ण के दाहिने हाथ हैं और उनके दूत रूप में हैं। हंस-डिम्भक ने ऊपरी प्रसन्नता दिखाते हुए सात्यकि से वसुदेव, बलराम, उग्रसेन आदि सभी यादवों का कुशलक्षेम पूछा। सात्यकि ने हाँ में सिर हिला दिया। तब हंस ने विप्र जनार्दन से श्रीकृष्ण से भेंट होने न होने के सम्बन्ध में तथा कर मिलने न मिलने के सम्बन्ध में पूछा।

विप्रश्रेष्ठ जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए प्रसन्नता पूर्वक कहने लगा—हे मित्र ! मैं वहाँ शंख, चक्र, गदा व शार्ङ्गधारी, स्वर्णभूषण और रत्नादि से विभूषित भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर आनन्द विभोर हो गया। मेरा मन पुलकित हो गया, मेरा जीवन धन्य व सफल हो गया। उन मंगलमय भगवान् श्रीकृष्ण के साथ साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा रुक्मिणी जी अमूल्य व सुन्दरतम सिंहासन पर विराजमान थीं। मन्द मुस्कान वाली रूप-माधुरी का दर्शन करके मेरा जीवन सफल हो गया। उनकी सभा भी सर्व प्रकार से अलौकिक थी। जब उन्होंने

मेरे मुख से कर प्रदान की बात सुनी तो वे क्रोधित एवं विस्मित स्वर में कहने लगे—वे दुष्ट कहां हैं ? कहां मिलेंगे ? मुझे कर देने का आदेश भिजवाने वाला दुष्ट हंस कहां है ! मैं उन दुष्टों को युद्ध क्षेत्र में अपने चक्र से उनका मस्तक काटकर कर अदा करूंगा । भगवान शंकर ही क्यों न साक्षात् रूप से उसकी मदद करने युद्ध में आवें फिर भी मैं दुष्ट का वध किये बिना नहीं छोड़ूंगा । हे मित्र मेरी सलाह मानो । यह कार्य कठिन ही नहीं असाध्य भी है अतः इसे त्याग दो । और जो कुछ जानना हो ये महात्मा सात्यकि बतायेंगे ।

विप्र की बात को सुनकर हंस क्रोध से जल उठा । अरे मतिमन्द ब्राह्मण—तुम यह क्या सलाह दे रहे हो । क्या तुम्हें ज्ञात नहीं । हम दोनों भाई तीनों लोकों पर विजय करने की कामना रखते हैं एवं उसकी तैयारी करली है । तुम उसके माया जाल के चक्कर में फंसकर मेरे सामने ही मेरे शत्रु की बड़ाई कर रहे हो । तुम मेरे मित्र हो तथा मैं कठिन से कठिन विपत्ति में भी ब्रह्महत्या करना नहीं चाहता । इसलिये तुझे छोड़े दे रहा हूं नहीं तो अभी तेरा वध कर देता । अच्छा अब तुम्हारी भलाई इसी में है कि यथा शीघ्र यहाँ से जहां कहीं भी जाना चाहो चले जाओ । अब तुम्हें मेरी आंख के सामने क्षण भर के लिए

भी रहने की जरूरत नहीं है । हे यादव दूत सात्यकि ! तुम यहाँ क्यों आये हो ? कृष्ण ने क्या सन्देश दिया है ? उसने कर दिया है या नहीं ? इस पर सात्यकि बोले—हे हंस ! भगवान् श्रीकृष्ण ने सन्देश दिया है कि तुम्हारा मस्तक सुतीक्ष्ण बाणों से उड़ाकर खण्ड-२ कर दूंगा । अरे दुष्ट ! तुम से बड़ा नीच कौन है जो जगदीश्वर से कर मांगे या मांगने की इच्छा रखता हो । अरे मूर्ख ! जिस जीभ से तूने यह बात कही है । उसे काट डालनी चाहिये । अरे उनके शार्ङ्ग धनुष के टंकार तथा पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि सुनकर बड़े-बड़े वीरों के दिल दहल जाते हैं, तुम तो एक तुच्छ प्राणी हो तुम दोनों मदान्धों को भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम ही मारने में समर्थ हैं । हम यादवों की तो बात ही अलग है । भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि पुष्कर, गिरि गोवर्धन, प्रयाग या मथुरा में कहीं भी सामना करने के लिए तुम आ जाओ । इस पृथ्वी पर भगवान् श्रीकृष्ण के रहते राजसूय यज्ञ करने में कोई समर्थ नहीं है । तुम तो व्यर्थ में पागलों की तरह कल्पना कर रहे हो । कहकर सात्यकि मौन हो गए ।

सात्यकि द्वारा इस प्रकार की वाणी को सुनकर क्रोध से लाल नेत्र किये हुए हंस और डिम्भक दोनों सात्यकि एवं सभी राजाओं को ऐसे देखने लगे कि यदि वश चले

तो पूरे विश्व को अभी भस्म कर डालें । क्रोध से दाँत पीसते हुए हाथ पटकते हुए बोले—वह नन्दपुत्र ग्वाला कृष्ण और बलराम कहां हैं ? सात्यकि से बोले—अरे दुष्ट नीच यादव दूत तू हमारे सामने इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें कर रहा है । तू अभी यहाँ से चला जा । तू दूत है । दूत को मारना शास्त्र विरुद्ध है । इसलिए छोड़े दे रहा हूँ । नहीं तो तुम्हें वीरता दिखलाता । तुम्हें मेरे सामने इस प्रकार की बातें कहने में शर्म नहीं आती । इस समय सम्पूर्ण विश्व पर हम दोनों भाईयों का अधिकार है अतः कोई भी वीर बिना हम लोगों को कर दिये पृथ्वी पर जीवित नहीं रह सकता । जाकर कृष्ण को बोल दे । वह जितनी भी शस्त्र व सेना तैयारी कर सके कर ले । आज मैं सभी गोपों और यादवों को मारकर समस्त धन सम्पत्ति को छीन लूँगा । आज यादवों का वध करके ही अपने पिता को राजसूय यज्ञ की दीक्षा दिलाऊँगा । तुम सभी यादवों को मारकर तुम्हारे सामने ही कृष्ण को मारूँगा । कल परसों में युद्ध पुष्कर में होगा । वहीं फैसला होगा । अब तू दूत होने के कारण शीघ्रतिशीघ्र यहाँ से चला जा । अब परसों ही कृष्ण बलराम व अन्य यादव वीरों की शक्ति का पता चल जायेगा कि वे कितने पानी में हैं ।

सात्यकि ने कहा—हे हंस ! हम भी तुम दोनों भाईयों

को मारने हेतु परसों पुष्कर में पहुँचेंगे । यदि मैं इस समय दूत रूप में नहीं होता तो आज ही तुम दोनों का वध करके जाता । जैसी तुम्हारी कठोर वाणी है । ऐसे पर तो तुम्हें कल परसों का भी समय नहीं देना चाहिये । परन्तु मैं लाचार हूँ कि यहां दूत रूप में आया हूँ । अब तुम्हारे अहंकार को जगदीश्वर श्रीकृष्ण ही अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा पुष्कर में नष्ट करेंगे । कहकर सात्यकि अपने घोड़े पर चढ़े और द्वारका को चल दिये ।

—:०:—

भगवान् श्रीकृष्ण व हंस-डिम्भक की पुष्कर यात्रा

सात्यकि ने द्वारकापुरी में वापस आकर हंस-डिम्भक के साथ हुई सारी वार्ताओं को विस्तार पूर्वक सुनाया । दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण ने अपने अश्व, गज, रथ व पैदल सेनाओं को भेरी प्रणव, प्राश, खड्ग, परिध, ध्वजा-पताका आदि दिव्य शास्त्रों से युक्त होकर पुष्कर क्षेत्र के लिए प्रस्थान किया । वीर श्रेष्ठ सभी यादव वीर रथों में बैठकर सेना के आगे-आगे चल रहे थे । वीर सात्यकि सभी से आगे थे । शार्ङ्गधनुष, बाण, शंख, चक्र, गदा एवं

खड्ग धारण किये हुए भगवान श्रीकृष्ण भी अपने रथ पर सवार सेना के साथ चल दिये । पुष्कर के लिए यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व ब्राह्मणों ने वेद पाठ किया तथा स्तुति की । फिर श्रीकृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाकर सम्पूर्ण आकाश मण्डल को गुञ्जित कर दिया । साथ ही युद्धोत्तेजक बाजे भी बजवाये । भगवान श्रीकृष्ण पुष्कर पहुँचे । वहाँ उपस्थित सभी तीर्थवासी मुनिजनों का दर्शन किया एवं प्रणाम किया । पुष्कर नदी के जल का आचमन किया । फिर अपना डेरा डालकर हंस-डिम्भक की प्रतीक्षा करने लगे ।

इधर शात्व नगर से हंस और डिम्भक दोनों भाइयों ने भी भयंकर धनुष एवं दिव्य शस्त्रों से युक्त होकर अलग-अलग रथों पर सवार होकर लोमहर्षक सिंहनाद करते हुए पुष्कर के लिए प्रस्थान किया । आगे-२ दो भूत मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगाये तथा शरीर में रुद्राक्ष धारण किये हुए एवं हाथ में भीषण त्रिशूल लिये विश्व के विनाश के लिये साक्षात् रुद्र होकर चल रहे थे । हंस डिम्भक के पीछे दस अक्षौहिणी सेना चल रही थी हंस डिम्भक की विचक्र नामक महादानव के साथ मैत्री हो गई थी अतः युद्ध का समाचार सुनकर उसने भी अपनी सेना लेकर हंस की तरफ से पुष्कर के लिये प्रस्थान किया । विचक्र ने देवासुर

संग्राम में देवताओं सहित इन्द्र को बुरी तरह परास्त किया था। कभी भगवान विष्णु से भी युद्ध किया था एवं द्वारिकापुरी पर आक्रमण कर यादवों को भी कम्पित कर दिया था। शिला, शूल और तलवारों से सुसज्जित सेना को लेकर हिडिम्ब नामक राक्षस भी युद्ध में विचित्र की सहायतार्थ चल दिया। हिडिम्ब की सेना अठ्ठासी हजार थी। आगे रास्ते में हंस डिम्भक, विचक्र एवं हिडिम्ब तीनों की सेनायें मिलकर एक हो गईं। जरासन्ध ने यादवों के साथ होने वाले इस युद्ध में ब्रह्मशाप के कारण भाग नहीं लिया। हंस के अनुयायी राजा गण भी श्रीकृष्ण की पछाड़ने की नीयत के साथ हो लिए। इस प्रकार हंस-डिम्भक अपनी सेना व अनुयायियों को लेकर पुष्कर क्षेत्र में पहुंचे और वहां शिविर लगा दिया तथा वीर वेश में भगवान श्रीकृष्ण को अपनी प्रतीक्षा करते देखा।

—०—

हंस डिम्भक और यादवों का युद्ध

दोनों पक्षों की सेनायें भोषण शस्त्राशस्त्रों से युक्त होकर आमने-सामने खड़ी हो गईं तथा रण भेरी बजने लगी। देखते ही देखते दोनों सेनायें आपस में भिड़ गईं।

हाथी हाथी से, घोड़े-घोड़े से, रथी रथी से तथा पैदल वाले पैदल सेनाओं से अर्थात् सभी अपने समान स्तर के घोड़ा आपस में भिड़कर एक दूसरे को रक्त रञ्जित करने लगे। तलवारों की मार व शर कुन्तकर्षण, शक्ति, परिध, प्राश और भिन्दिपाल आदि के प्रहारों से एक दूसरे को काट-काट कर मौत के घाट पहुंचा रहे थे। बहुत से घोड़ा बुरी तरह घायल होकर धराशायी हुए करुण क्रन्दन कर रहे थे। तथा उसके ऊपर से हाथी घोड़े दौड़ रहे थे। कुछ घोड़ा युद्ध में इतने पागल हो गये थे कि वे युद्धोन्माद में पहचान नहीं पा रहे थे कि कौन अपने पक्ष का है, कौन शत्रु पक्ष का। उनके सामने अपना पराया जो भी आ रहा था। वे सभी पर प्रहार किये जा रहे थे। इस प्रकार युद्ध क्षेत्र लाशों व घायलों से ढक गया था। कहीं तिल तक रखने की जगह नहीं थी। सारी पृथ्वी रक्त व मांस से लथपथ थी। रक्त का प्रबल प्रवाह बह चला था। मानो उस क्षेत्र में नदी की भयंकर बाढ़ आयी हो। मांस भक्षी पक्षियों एवं मांस भक्षी जानवरों के मांस खाने की बहार आयी थी। युद्ध इतना भयंकर था कि जो घोड़ा मध्याह्न या बाद में गया। वही खेत हो गया लौटकर वापस नहीं आया। पुष्कर क्षेत्र में होने वाला। यह युद्ध देवासुर संग्राम से कम भयंकर नहीं था। उस दिन के युद्ध में

सत्तासी हजार हाथी, चालीस हजार घोड़े, रथियों सहित एक लाख रथ और तीस करोड़ सशस्त्र पैदल सेना नष्ट हो गई ।

—:०:—

भगवान श्री कृष्ण और विचक्र का भीषण युद्ध

दोनों पक्ष द्वन्द्व युद्ध में भिड़े हुए थे । शंख चक्र गदाधारी भगवान श्री कृष्ण विचक्र से, बलरामजी हंस से, सात्यकि डिम्बक से, और वसुदेव तथा उग्रसेन दोनों ही असुर राज हिडिम्ब से लड़ने लगे । तथा अन्य सभी यादव योद्धागण शत्रुपक्ष के योद्धाओं से भिड़े हुए थे । भगवान श्रीकृष्ण ने अपने तिहत्तर बाणों से विचक्र का हृदय बीँध दिया । विचक्र ने भी अपने तीखे बाणों को भगवान के हृदय में मारा । उसके बाद फिर एक कठोर बाण को श्री कृष्ण के हृदय में मार कर घायल कर दिया । जिससे उनके मुँह से तीव्र शोणित बह चला । उसके बाद भगवान श्रीकृष्ण ने संभलकर भीषण क्रोध से अपने एक ही सुतीक्ष्ण बाण से विचक्र के रथ की ध्वजा को काटकर रथ के चारों घोड़ों और सारथी को मार गिराया । फिर भयंकर शंख ध्वनि की । विचक्र रथ विहोन हो गया । गदा से श्रीकृष्ण

के साथे पर भयंकर प्रहार किया । फिर एक विशाल पत्थर चारों तरफ तीव्र वेग से घुमा कर श्रीकृष्ण पर दे मारा । तब श्रीकृष्ण ने उस पत्थर को रास्ते में ही पकड़ कर विचक्र पर दे मारा । फिर उस विचक्र ने एक अति विशाल वृक्ष उखाड़ कर मारा । श्रीकृष्ण ने उसे भी पकड़ कर विचक्र पर दे मारा । पत्थर व वृक्ष की भीषण मार से बिचक्र मूर्छित हो गया । सचेत होने पर भीषण क्रोध करके बोला—हे गोविंद ! तुमने तो देवासुर संग्राम में मेरा पराक्रम देखा ही है । फिर भी मुझ से दुःसाहस करने का प्रयास कर रहे हो । अब मैं परिध से तुम पर प्रहार कर रहा हूँ । यदि तुम में क्षमता हो तो सम्भलो । कहकर भगवान पर परिध का प्रहार किया । श्रीकृष्ण ने उसे पकड़ कर टूक-टूक कर दिया । इस प्रकार विचक्र ने सैकड़ों अपने दिव्यास्त्र छोड़े और श्रीकृष्ण ने सभी को खण्डित कर दिया । फिर उन्होंने विचक्र को बहुत खेलने खिलाने के बाद मारने का निश्चय करके हाथ में आग्नेयास्त्र लिया और उसे विचक्र पर छोड़ दिया । आग्नेयास्त्र विचक्र के शरीर को भस्मीभूत करके श्रीकृष्ण के पास वापस आ गया । विचक्र के नष्ट होते ही शेष दैत्यगण समुद्र में जा कर छिप गए और वापस नहीं लौटे ।

बलराम और हंस का भीषण युद्ध

बलराम जी ने दस बाणों की मार से हंस को घायल कर दिया । फिर दस बाण हंस के हृदय में मारकर तथा एक बाण ललाट में मारकर मूर्छित कर दिया । हंस पृथ्वी पर गिर पड़ा । कुछ समय पश्चात् होश आने पर हंस ने बलराम को एक भीषण बाण मारा । बलराम जी निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । मुंह से रक्त की तीव्र धारा बहने लगी । उनका पूरा शरीर रक्त में सराबोर हो गया । संज्ञा वापस आने पर बलराम जी ने एक साथ ही सात हजार बाण छोड़ कर हंस को त्रस्त कर दिया । तब हंस ने बलराम जी को एक बाण मारकर उनके रथ की ध्वजा को काट कर चारों घोड़ों सहित सारथी को मार गिराया, बलराम ने भी भीषण क्रोध से अपनी गदा की मार से हंस के रथ चक्र ध्वजा आदि को खण्डित कर दिया । हंस भी गदा लेकर भिड़ गया । दोनों बहादुर ऐसे लड़ रहे थे जिस प्रकार कि देवासुर संग्राम में इन्द्र व वृत्रासुर लड़ते हुए रक्त में लथपथ हो गये थे । इस प्रकार दोनों योद्धा पैंतरे बदल-बदल कर भीषण गदा युद्ध कर रहे थे ।

डिम्भक-सात्यकि युद्ध

अपने जमाने में दुःशासन का पुत्र, सोमदत्त का पुत्र, डिम्भक, सात्यकि, अभिमन्यु और नकुल ये छः वीर तलवार युद्ध में प्रथम श्रेणी के योद्धा थे । उसमें भी सात्यकि और डिम्भक अपना एक विशिष्ट स्थान रखते थे । और इन्हीं दोनों योद्धाओं के बीच सहान युद्ध छिड़ा हुआ था । पहले सात्यकि ने डिम्भक के मुख व हृदय पर दस बाण मारे । तो डिम्भक ने भी एक साथ ही पांच हजार बाण सात्यकि पर मारे । सात्यकि ने डिम्भक के सारे बाणों को तो काटा ही साथ ही धनुष को भी काट दिया । डिम्भक ने दूसरा धनुष लिया । सात्यकि ने उसे भी काट दिया । इस प्रकार सात्यकि ने डिम्भक के पांच सौ धनुषों को काट दिया । उसके बाद दोनों योद्धाओं में तलवारें लेकर भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनों योद्धा असियुद्ध में प्रसिद्ध थे उस समय उन्होंने भ्रान्त, उद्भ्रान्त, अविद्ध-प्रविद्ध, बाहुनिःसृत, विकर, भिन्न, निर्मर्याद, अमानुष, एकोधित-कुलचित, सव्यजान, विजानु अहिता, चक्रक, क्षिप्त, कुसुम्ब, लम्बन, धृत, सर्वबाहु, विकिर्वाह, सव्येतर, उत्तर, त्रिबाहु, सव्य तुंग बाहु, उन्नत उदासि, पृष्ठ, पणित, योधिक और प्रथित इन बत्तीस प्रकार की असिकलाओं का करतब दोनों योद्धा दिखा रहे थे । इस भीषण असियुद्ध में दोनों

योद्धाओं में से कोई भी पीछे हटने का नाम नहीं ले रहा था। इन वीरों के पराक्रम को देखकर देवता, गन्धर्व, सिद्ध यक्ष, नाग, और ऋषि गण आदि सभी विस्मित थे, आपस में कह रहे थे एक भगवान् शंकर का शिष्य है तो दूसरा द्रोणाचार्य का। जिस प्रकार अर्जुन सात्यकि और भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध कला के विशेषज्ञ हैं उसी प्रकार डिम्भक, कार्तिकेय और भगवान् रुद्र भी प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार उन दोनों महारथियों के धैर्य और युद्ध कला की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

—:०:—

हिडिम्ब-वध

हिडिम्ब एक मानवभक्षी दुर्दान्त दानवराज था। उस की लम्बी भुजायें, लम्बी हनु, मोटा उदर, पिगल वर्ण के भयानक नेत्र, पीत केश, श्येन पक्षी की चोंच के समान नाक व भयंकर शरीर था। क्रोध से उसके रोंगटे खड़े थे वह देखने में पर्वताकार था। उसके बड़े-२ दांत, स्थूल और लम्बा पेट था परन्तु मुखाकृति सुन्दर थी। उसका वक्षः स्थल चौड़ा था। ऊँचा स्कन्द प्रदेश, हाथी के समान विशाल गले वाला था। वह अपने हाथ इस प्रकार फैलाये

था मानो तीनों लोगों को अभी एक ही घास में निगल जाना चाहता हो । वह युद्धभूमि में मांस का भक्षण करते हुए और रक्त का पान करते हुए अबाध गति से घूम रहा था । वह हाथी से हाथी को घोड़े से घोड़े को रथों से रथों को सवारों से सवारों को उठाकर मारता हुआ आगे बढ़ता था । इस प्रकार उसके सामने जो भी मानव आता था । उसे वह लम्बी सांस लेकर नाक द्वारा उदरस्थ कर जाता था । दानवराज हिडिम्ब ने असंख्य यादव सैनिकों को मार मार कर अपने पेट में रख लिया । इस प्रकार थोड़ी ही देर में उसने सम्पूर्ण वृष्णि सेना को प्रायः समाप्त कर दिया ।

अपनी सेना को नष्ट हुए देखकर कुपित होकर दोनों वृद्ध उग्रसेन व वसुदेव जी हिडिम्ब के सामने आकर ऐसे खड़े हो गए । जैसे क्रुद्ध वनराज सिंह के सामने दो वृद्ध हिरण । दैत्यराज मुख खोलकर जन दोनों को उदरस्थ करने के लिए आगे बढ़ा । वसुदेव व उग्रसेन ने अपने बाणों से दैत्य के मुख को भर दिया । वह सभी बाणों को हजम कर गया । हिडिम्ब ठठा कर हंसते हुए भीषण गर्जन करते हुए उन दोनों वृद्धों की ओर बढ़ता जा रहा था । शस्त्र विहीन दोनों वृद्ध निराश होकर प्राण बचाने के लिए भागने का उपक्रम करने लगे । जिसे बलरामजी ने देखा ।

अतः हंस के साथ युद्ध के लिए श्रीकृष्ण को नियुक्त कर स्वयं हिडिम्ब के सामने खड़े हो गए । बोले—दुष्ट ! उन वृद्धों की तरफ कहाँ जा रहा है । मेरे से युद्ध कर । मैं तुझे मजा चखाता हूँ । मानव भक्षी दैत्यराज उन दोनों वृद्धों को छोड़कर बलराम जी की तरफ बढ़ा । देखते ही देखते दोनों में मुष्टिका प्रहार होने लगा । बहुत देर तक घूँसेबाजी होने के बाद बलराम जी ने एक घूँसा राक्षस के हृदय में मारा कि वह पेट पकड़कर बैठ गया । फिर उसके दोनों गालों पर जोर का एक-एक थप्पड़ मारकर निष्प्राण कर दिया । एवं उसे दोनों हाथों से ऊपर उठा कर चारों दिशाओं में घुमाकर ऐसा फेंका कि वह मृत्यु को प्राप्त हो कर दो कोस की दूरी पर गिरा । शेष बचे राक्षस बलराम जी से डरकर भाग गए । सूर्यास्त हो गया । रात हो गई । चाँदनी रात निकल आई । तब वहाँ उपस्थित राजाओं ने रात को युद्ध समाप्त कर वे प्रातःकाल गोवर्धन पर्वत पर युद्ध होगा ऐसा निश्चय कर अपने-२ शिविरों को वापस चले गये ।

—:०:—

भगवान् श्रीकृष्ण व हंस के मध्य युद्ध

प्रातःकाल गोवर्धन पर्वत पर भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम सात्यकि, सारण आदि यादव वीरों के साथ पहुंच गए। उधर से हंस-डिम्भक भी पहुंच गए। दोनों पक्षों में गोवर्धन पर्वत के पीछे यमुनाजी के किनारे युद्ध छिड़ गया। वसुदेव सारण, कंक, उग्रसेन, विराट, सात्यकि, विपृथु, उद्धव, प्रद्युम्न, साम्ब व अनाधृष्टि ने तथा अन्य यादव वीरों ने अनेकों बाण मारकर हंस-डिम्भक को बाँध दिया। तत्पश्चात् हंस-डिम्भक ने भी क्रोधित होकर दस-२ बाणों से यादवों को बाँधकर भय से कंपित कर दिया। श्रीकृष्ण एक स्थान पर खड़े-२ देख रहे थे। सभी यादव वीर ठाक के फूल के समान रक्त से लाल हो गये थे। एवं प्राण भय से रणक्षेत्र से भागने लगे।

यादव वीरों को भय से इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागते देखकर श्रीकृष्ण व बलराम हंस-डिम्भक के सामने आ गए। तभी हंस-डिम्भक के रक्षार्थ भगवान् शंकर के दो दूत भी आ गए। जो कि अत्यन्त विशाल शरीर वाले व भयानक रूप वाले थे। हंस भगवान् श्रीकृष्ण से तथा डिम्भक बलराम से भिड़ रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने पाँचजन्य शंख का घोर निनाद किया। जिससे उत्तेजित होकर

भगवान् शंकर के दोनों दूतों ने श्रीकृष्ण पर त्रिशूल से प्रहार कर दिया । उसी क्षण भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए रथ से उतरे और दोनों दूतों को पकड़कर चक्र के समान सौ बार घुमाकर इतनी जोर से फेंका कि वे दोनों जाकर कैलाश पर्वत पर ही गिरे । श्रीकृष्ण के इस पराक्रम से हंस डिम्भक क्रोधित हो गए । हंस सभी देवताओं के सामने गर्वपूर्ण वाणी में बोला—हे कृष्ण ! तुम मेरे राज-सूय यज्ञ में बाधक क्यों बन रहे हो ? क्या तुम्हें अपने प्राणों का मोह नहीं है ? यदि तुम अपनी प्राणरक्षा चाहते हो तो स्वयं ही कर दे दो अन्यथा थोड़ी ही देर में मेरा पराक्रम देखकर स्वयं ही कर देने के लिए तैयार हो जाओगे । जिस प्रकार सभी देवताओं में भगवान् शंकर अग्रगण्य हैं उसी प्रकार मैं सभी राजाओं का स्वामी हूँ । मैं इसी युद्ध में तुम्हारा गर्व नष्ट करके रहूँगा । कहकर श्रीकृष्ण के साथे पर तीक्ष्ण बाण सारा । तब श्रीकृष्ण ने सात्यकि को रथ हाँकने के लिए कहा । सात्यकि ने रथ हाँकना प्रारम्भ किया । श्रीकृष्ण हंस से बोले—अरे दुष्ट ! मैं तुम्हें अभी भस्म किये देता हूँ । यदि तू संभल सकता है तो संभल । तूने पुष्कर वासी ऋषि-मुनियों को बहुत कष्ट दिया है । ब्राह्मणों को सताया है । अब मैं तुम्हें निश्चय ही मारूँगा । कहकर भगवान् श्रीकृष्ण ने आग्नेयास्त्र छोड़

दिया । जिसे हंस ने वरुणास्त्र से शान्त कर दिया । फिर हंस ने वायव्यास्त्र को माहेन्द्रास्त्र से, माहेश्वरास्त्र को रौद्रास्त्र से व श्रीकृष्ण के द्वारा चलाये गए गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, ब्रह्मास्त्र, कौबेरास्त्र, याम्यास्त्र आदि सभी शस्त्रों को शान्त कर दिया । उसके बाद श्रीकृष्ण के ब्रह्मशिरास्त्र को ब्रह्मशिरास्त्र से नष्ट कर दिया । अन्त में श्रीकृष्ण ने यमुना जल का आचमन कर देवासुर-संग्राम के विजयी दाता वैष्णवास्त्र को धनुष पर चढ़ाया । जिसे देखते ही हंस भयभीत एवं निश्चेष्ट होकर रथ में कूद पड़ा तथा कालिया दह की तरफ भागा । श्रीकृष्ण ने उसका पीछा किया । हंस कालिया दह में कूद गया । श्रीकृष्ण भी कूद पड़े और दह के अन्दर ही लात घूँसा मार-२ कर मार ही दिया । हंस की मृत्यु हो गई । तब श्रीकृष्ण अपने रथ पर आ गए ।

डिम्भक अपने भाई को न देखकर क्रोधित हो गया । तथा उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर युद्ध का परित्याग कर दिया । भाई की खोज में यमुना की तरफ दौड़ा एवं कालियादह में कूद पड़ा बलराज जी भी पीछे-२ दौड़े गये परन्तु ये उसके पीछे कालियादह में नहीं कूदे । कुछ समय पश्चात् वह अपने भाई को न पाकर दह से बाहर निकला एवं श्रीकृष्ण से बोला—अरे ग्वाले के बच्चे ! मेरा

भाई हंस कहां है । श्रीकृष्ण बोले—हे राजन ! यमुनाजी से ही पूछो । यह पुनः भाई को ढूँढ़ने के लिए यमुना जल में घुस गया । परन्तु हंस का कहीं भी पता न चला । अंत-तोगत्वा वह भाई के मोह में विलाप करने लगा । फिर उसने आत्महत्या करने का निर्णय किया । इसलिये उसने अपनी जीभ हाथ से पकड़कर जड़ से उखाड़ दी । फिर उसी वेदना से यह छटपटा कर मर गया । इस प्रकार हंस डिम्भक की मृत्यु से सभी प्रसन्न हो गए । एवं श्रीकृष्ण भाई बलराम के साथ अपने पूर्व क्रीडास्थल गोवर्धन पर्वत पर विश्राम करने लगे ।

—:०:—

भगवान श्रीकृष्ण का द्वारिका वापस होना

भगवान श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गोवर्धन पर्वत पर विश्राम कर रहे हैं सुनकर नन्द व यशोदा मक्खन दही, खीर, खिचड़ी, वन पुष्प और मोर पंखों के आभूषण लेकर मिलने के लिए पहुँचे । वहाँ दोनों भाईयों को बैठे हुए देखकर गोप-गोपियों सहित नन्द व यशोदा बड़े प्रसन्न हुए, उनके हृदय वात्सल्य प्रेम से गद्गद् हो गये वे दोनों आनन्द विभोर हो आँखें बन्द कर दोनों भाईयों के सुन्दर रूप का ध्यान करने लगे । तथा साथ में सभी ले गए खाद्य

पदार्थ श्रीकृष्ण के सामने रख दिये । भगवान श्रीकृष्ण व बलराम भी गोप गोपियों सहित नन्द-यशोदा को देखकर अति प्रसन्न हुए । दोनों भाईयों ने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया । प्रेम से बिठाया । और कुशल-मंगल पूछने लगे । हे तात ! हे माता ! सब गौयें कुशल तो हैं ? गौयें पहले की ही तरह दूध देती हैं न । उनके बछड़े तो बहुत बड़े हो गये होंगे । सब ग्वाल-बालों को दूध भरपूर मिलता है न ? तथा गौओं को भी घास पूर्व की भांति ही मिलती है न ? ब्रज के घाट टूटे-फूटे तो नहीं हैं ? श्रीकृष्ण की इस प्रकार से स्नेह पूर्ण वाणी को सुनकर नन्दजी बोले— हे वत्स ! हे केशव ! सभी कुछ कुशल व आनन्द से हैं । जैसे सब पहले था, वैसा ही अब भी है । परन्तु आपके दर्शन न पाने से मैं ही दुखी हूँ । मेरी ही मति मारी जा रही है । उसके बाद भगवान श्रीकृष्ण ने माता यशोदा व नन्द को समझा-बुझाकर हृदय से लगाकर घर के लिये विदा किया ।

भगवान श्रीकृष्ण ने यादवों सहित द्वारिका वापस आते समय पुष्कर क्षेत्र में पहुंच कर, मुख्य-२ ऋषियों-मुनियों से भेंट की । प्रणाम कर कुशल मंगल पूछा । महर्षियों ने भी मुक्त हृदय से भगवान श्रीकृष्ण को साधुवाद देते हुए मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की । और भांति-

भाँति से स्तुति करने लगे । बोले—हे प्रभो ! जो विचक्र नामक महादानव देवासुर संग्राम में देवताओं द्वारा भी परास्त नहीं हुआ । वह विचक्र हंस-डिम्भक के साथ आप के द्वारा ही मारा गया । निःसन्देह आपने यह एक असाध्य कार्य किया है । आपकी कृपा से हम लोग अब निर्विघ्न रूप से तप करने में लीन हैं । हमारी तपस्या के मूल आप ही हैं । हे केशव ! आप ही प्रणव, वषट्कार, यज्ञ, पितामह, ज्योति एवं ब्रह्ममूर्ति हैं तथा आप ही ब्रह्मा एवं रुद्र भी हैं । आप सभी जीवों के अन्दर निवास करने वाले हैं । हे प्रभो ! हे विश्वसृज ! हे विश्वमूर्ति आपको बारम्बार नमस्कार है । हे भगवान ! आप ब्राह्मण द्रोहियों को मार कर तीनों लोकों की रक्षा करें । भगवान श्रीकृष्ण ने एवं अस्तु कहकर द्वारिका के लिये प्रस्थान किया । द्वारिका में आकर सुख पूर्वक रहने लगे ।

महाभारत की कथा सुनने का फल

राजा जनमेजय ने श्रीकृष्ण का सारा वृत्तान्त सुन लेने के बाद वैशम्पायन जी से पूछा—हे भगवन ! इस महाभारत को किस प्रकार सुनना चाहिये । इसके सुनने का क्या फल है ? पारायण के समय किस देवता को

पूजना चाहिये ? पर्व समाप्ति पर क्या दान देना चाहिये ? कथा वाचक के क्या गुण होने चाहिये तथा कथा वाचक को क्या दान दक्षिणा देनी चाहिये । कृपया आप विस्तार पूर्वक सुनायें ।

वैशम्पायन जी बोले—हे राजन् ! इस महाभारत ग्रन्थ में रुद्र, सिद्ध, विश्वदेव, आदित्य, महर्षि, अश्विनी कुमार, लोकपाल, गुह्यक, गंधर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, स्वयम्भू कात्यायन मुनि, गिरि, सागर, नदी, अप्सरा, ग्रह, सँवत्सर, अयन, ऋतु, स्थावर-जङ्गम, सुर, असुर आदि के साथ सम्पूर्ण विश्व था और भी जो कुछ आप देखना चाहेंगे, उसी का दर्शन हो जायेगा । इन सबके प्रतिष्ठान, नाम, कर्म आदि का गुणगान करने से मनुष्य पाप से मुक्त होता है । इस कथा को आदि से अन्त तक संयम और शुद्ध मन से श्रवण करना चाहिये । तभी इसके श्रवण का उत्तम फल मिलता है ।

हे राजन् ! इस वृत्तांत को सुनने के समय पूर्व भक्ति व श्रद्धा से जैसे अपनी क्षमता हो वैसा ही दान करना चाहिये । तथा अपनी क्षमता के अनुसार ही दूध देने वाली गाय, आभूषणों से सुसज्जित कन्या, पात्र, वस्त्र, स्वर्ण, वाहन, शय्या आदि जो भी श्रेष्ठ वस्तु हो वह दान दी जा सकती है । सत्यता, सरलता, पवित्रता, शुद्ध आचरण एवं

जितेन्द्रिय होकर प्रसन्न मन से कथा को सुनने पर सभी प्रकार की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं ।

—:०:—

कथावाचक

कथावाचक पवित्र, शुद्ध आचरण वाले, पवित्र श्वेत वस्त्रधारी, सुसंस्कृत सब शास्त्रों के ज्ञाता, श्रद्धा युक्त, क्रोध रहित, सौम्यमूर्ति, सौभाग्यशाली, संयमी, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, यशस्वी व उदार मन वाला होना चाहिए । कथा कहते समय वाचक तिरसठ वर्ण युक्त पद समुदाय से स्पष्ट हो, तथा मूर्धादि आठों अच्छी प्रकार उच्चारित किया जाना चाहिए; जिससे कथा का रस भाव नष्ट न हो । कथा कहने में अधिक देर तथा अधिक शीघ्रता, कर्कशता तथा अस्पष्टता न हो । स्वस्थ व एकाग्र मन से कथा कहनी चाहिये । जैसे—

शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा यतेन्द्रियः ।

संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्धधानोऽनसूयकः । १६।

रूपावान्सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

दानमानग्रहीता च कार्यो भवति वाचकः । १७।

अविलम्बमनायस्तमद्रतं धीर मूर्जितम् ।
 असंसक्ताक्षरपदे न च भावसमन्वितम् । २१।
 त्रिषष्टिवण संयुक्तमष्टस्थानसमीरितम् ।
 वाचयेद्वाचकः स्वस्थः स्वाधीन मुसमाहितः । २२।

—:०:—

फल की प्राप्ति

प्रथम पारण की समाप्ति पर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने पर अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है और श्रोता अप्सराओं से युक्त दिव्य विमान से स्वर्ग की यात्रा करता है । द्वितीय पारण पूर्ण होने पर अतिरात्र का फल प्राप्त होता है और श्रोता दिव्य वस्त्र, माला गन्ध व आभूषण आदि को धारण कर दिव्य विमान के द्वारा देवलोक की यात्रा करता है तथा देवताओं में सम्मानित होता है । तीसरे पारण की समाप्ति पर द्वादशाह का फल प्राप्त होता है एवं श्रोता देवताओं की भाँति दस-२ हजार वर्षों तक स्वर्ग का सुख भोगता है । चौथे पारण की समाप्ति पर वाजपेय यज्ञ का दूना फल मिलता है । पाँचवे पारण की समाप्ति पर वाजपेय यज्ञ का दूना फल मिलता है । और श्रोता अग्नि के अंगारे के समान लाल और सूर्योदय-काल के सूर्य की भाँति लाल तेजयुक्त विमान से स्वर्ग की

यात्रा करता है एवं स्वर्गलोक में ही इन्द्र के विशाल भवन में दस हजार वर्षों तक सुखों का भोग करता है । छठवें पारण के समाप्त होने पर त्रिगुणा फल अधिक मिलता है श्रोता वैदूर्यमणियों से युक्त दिव्य विमान से सूर्य की भांति सभी लोकों की अपनी इच्छानुसार यात्रा करने में समर्थ होता है । आठवाँ पारण समाप्त होने पर राजसूय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है तथा श्रोता चन्द्र किरणों के समान धवल वर्ण के मन के समान वेग वाले द्रुतगामी घोड़ों से भी श्रेष्ठ विमान से यात्रा करता है । चन्द्रमुखी अप्सराओं के बीच ही वह सोता है तथा जागता है । नौवें पारण के समाप्ति पर सर्वोत्तम अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है तथा श्रोता स्वर्णस्तम्भ, मणिमयी वेदी, सोने की गौरव तथा अप्सराओं और गन्धर्वों से युक्त दिव्ययान पर दिव्य माला, वस्त्र और गंध में बैठा हुआ देवताओं के साथ देवलोक में भ्रमण का आनन्द लेता है । दसवाँ पारण पूर्ण होने पर किंकणियों से शोभित, ध्वजा-पताका से युक्त, रत्नमय वेदी, मणियुक्त तोरण से शोभित ज्ञान-विद्या युक्त, गन्धर्वों और अप्सराओं से भरा हुआ स्वर्ण निर्मित यान श्रोता को प्राप्त होता है तथा श्रोता के सिर पर मणिमय सूर्य के समान प्रभा वाला मुकुट । दिव्य माला और गन्धादि के अनुलेपन से सुन्दर रूप वाला हो

जाता है। इस प्रकार श्रोता कुछ समय तक स्वर्ग में रहकर विभिन्न लोकों का परिभ्रमण करने वाला होकर सूर्य के भवन में रहकर अन्त में भगवान विष्णु के सायुज्य मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

दान

महाभारत की कथा श्रद्धा पूर्वक सुननी चाहिये। कथावाचक ब्राह्मण को हाथी, घोड़ा, रथ, कटक कुण्डल ब्रह्मसूत्र, वस्त्र गन्धादि आदि तथा वह, ब्राह्मण जो इच्छा करे वहीं उसे देकर देवता की भांति पूजन करना चाहिये। इससे श्रोता विष्णुलोक प्राप्त करता है। इसके प्रत्येक पर्व पर श्रद्धा व भक्ति के अनुसार दान देना चाहिये। कथा का प्रारम्भ स्वस्तिवाचन कर फिर नरोत्तम नर नारायण और सरस्वती जी की वन्दना के पश्चात् प्रारम्भ करना चाहिये। आदि पर्व के समाप्त होने पर ब्राह्मणों को यथा शक्ति दान देना चाहिये। तथा कथावाचक वस्त्र और गन्ध अर्पित करके मधु युक्त खीर फल, कन्द-मूल, घी शहद एवं गुड़ मिश्रित भात का भोजन करना चाहिये। सभापर्व के समाप्त होने पर पूष, अपूष, मोदक और खीर का भोजन ब्राह्मणों को कराना चाहिये। वनपर्व की समाप्ति पर जल से पूर्ण पात्र, फल-मूल एवं वृक्षा प्रकार

का भोजन ब्राह्मणों को कराना चाहिये । विराट पर्व के समाप्त होने पर निर्धन ब्राह्मणों को वस्त्र-दान करना चाहिये । उद्योग पर्व की समाप्ति पर ब्राह्मणों को उत्तम वस्त्र देकर उत्तम स्वादिष्ट भोजन कराना चाहिये । द्रोण-पर्व की समाप्ति पर ब्राह्मणों को श्रद्धा पूर्वक स्वादिष्ट भोजन कराकर तलवार एवं धनुष बाण दान करना चाहिए । कर्णपर्व के समाप्त होने पर संयत मन से ब्राह्मणों को श्रेष्ठ पदार्थों का भोजन कराना चाहिये । शल्यपर्व की समाप्ति पर मोदक, गुड़ एवं भात आदि का भोजन कराना चाहिये । गदापर्व की समाप्ति पर मूंग मिश्रित अन्न का भोजन कराना चाहिए । स्त्रीपर्व के समाप्त होने पर रत्न दान करना चाहिए । ऐषिका पर्व के समाप्त होने पर घी मिला अन्न देना चाहिए । शान्ति पर्व की समाप्ति पर हविष्यान्न एवं अश्वमेधिक पर्व के समाप्त होने पर उपकरणों सहित श्रेष्ठ अन्न, आश्रमवासिक पर्व समाप्त होने पर घी मिला अन्न देना चाहिए । शान्ति पर्व की समाप्ति पर हविष्यान्न एवं अश्वमेधिक पर्व के समाप्त होने पर उपकरणों सहित श्रेष्ठ अन्न, आश्रमवासिक पर्व समाप्त होने पर हविष्यान्न एवं अश्वमेधिक पर्व के समाप्त होने पर उपकरणों सहित श्रेष्ठ अन्न, आश्रमवासिक पर्व समाप्त होने पर चन्दन की माला एवं अनुलेपन सामग्री, महा-

प्रस्थानिक पर्व समाप्त होने पर श्रेष्ठ भोजन, स्वर्गारोह समाप्त होने पर हविष्यान्न का भोजन कराना चाहिए। परन्तु हरिवंश पुराण के समाप्त होने पर एक हजार ब्राह्मणों को यदि इतनी क्षमता न हो तो पाँच सौ ब्राह्मणों को खीर खिलाना चाहिए। कथावाचक को सोने की मुद्रा तथा एक दूध वाली गाय दान देनी चाहिए एवं प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर स्वर्ण मुद्रा के साथ कथावाचक को एक-एक महाभारत की पुस्तक दान देनी चाहिए।

फिर वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! यदि श्रोता इस ग्रन्थ का आधा अथवा एक चौथाई या इसका एक अक्षर भी एकाग्रचित् होकर श्रद्धा पूर्वक श्रवण कर ले तो वह भगवान् श्रीकृष्ण का प्रियपात्र हो जाता है। यथा—

श्लोकं वा श्लोकपादं वा अक्षरं वा नृपात्मज ।

शृणुयादेकचित्तस्तु स विष्णुदयितो भवेत् । ७४।

ग्रन्थ की समाप्ति पर पत्नी सहित श्री लक्ष्मी नारायण की पूजा करनी चाहिए। कथावाचक को भूमि, वस्त्र और गाय देकर पूजन करने पर साक्षात् विष्णु भगवान् का ही पूजन हो जाता है।

कथा शान्त एवं स्वस्थ चित्त मन से श्वेत वस्त्र एवं सौम्य आभूषण धारण कर एक महाभारत के ग्रन्थ को स्वच्छ रेशमी वस्त्र में बांधकर पवित्र स्थान पर रखकर

गन्ध, पुष्प, माला आदि से पूजन करना चाहिए । श्रोता यदि अपनी इच्छा से और भी कुछ दान करना चाहे तो करना चाहिए । उसके बाद सभी देवताओं तथा भगवान नर-नारायण के नाम का कीर्तन करना चाहिए ।

जो मनुष्य परम-प्राप्ति की इच्छा रखते हों, उन्हें भगवान विष्णु की कथाओं और सनातन श्रुतियों के विशद वर्णनों से महाभारत नामक महान ग्रन्थ को सदा ही श्रवण करना चाहिए । इस असार संसार में हरिवंश पुराण के सुनने से सभी प्रकार की इच्छाओं का पूर्ण होना सम्भव है । मात्र हरिवंश के सुनने से ही सहस्रों अश्वमेध यज्ञों एवं सैंकड़ों वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है । हे प्रभो आप अजर-अमर, अनन्त, सगुण, निर्गुण, स्थूल, सूक्ष्म, अनुपमेय, उपमा से परे एवं योगियों के ध्यान करने योग्य हैं । अतएव हे विष्णो ! हे ईश्वर ! हे जगद्गुरो ! मैं आपकी शरण में हूँ । इस हरिवंश पुराण के श्रवण करने से सभी प्रकार के संकट दूर होवें, सभी का कल्याण हो एवं सभी की मनोकामनायें पूरी होंवें । यथा—

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतवश्च सनातनाः ।

तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता । ६६ ।

एतत्पवित्रं परमेतद्धर्मनिदर्शनम् ।

एतत्सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूमिमिच्छता । ६७ ।

क्रियतेऽसारसंसारं वाञ्छितस्य ककारणम् ।
 हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् । ६८ ।
 अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा ।
 यत्फलं प्राप्यते पुम्भितद्वरेवंशपारणात् । ६९ ।
 अजरमनरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं ।
 सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमन्यन्तसूक्ष्मम् ।
 त्रिभुवनगु रुमीशं त्वांप्रपन्नोऽस्मि विष्णो । १०० ।
 सर्वस्तस्तु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
 सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात् । १०१ ।

—:०:—

त्रिपुर-वध

हरिवंश की कथा समाप्त हो चुकने पर राजा जनमेजय ने वैशम्पायन जी से त्रिपुरासुर-वध के विषय में जानने की अभिलाषा प्रकट की । तब वैशम्पायन जी ने कहना प्रारंभ किया । उन्होंने कहा हे राजन ! त्रिपुरासुर नामक महाबली राक्षस स्वेच्छा से स्वच्छन्द आकाशचारी था । उसे कहीं भी जाने में कोई बाधा नहीं थी । उसके पुर में श्रेष्ठ मणियों एवं रत्नों से युक्त स्वर्ण निर्मित भव्य अट्टालिकायें थीं । उसकी पुरी की शोभा गन्धर्व-नगरी से किसी भी तुलना में कम नहीं थी । यह पुरी आकाश में थी ।

इसको वहन करने वाले अत्यन्त शक्तिशाली, सूर्य के समान तेजस्वी एवं पंखों से युक्त अतितीव्रगामी घोड़े थे । इन घोड़ों की गति वायु के समान प्रतीत होती थी । त्रिपुर की नगरी इन्द्रपुरी या कैलाशपुरी की ही तरह दिव्य थी । उस पुरी में मल्लों द्वारा कहीं ताल ठोकने का शब्द तो कहीं सिंह की भाँति गर्जने की आवाज सुनाई देती थी । जगह-२ पर पताकायें व तलवारें चमकती हुई दिखाई देती थीं ।

फिर वैशम्पायन जी ने आगे कहा—हे राजन ! सूर्य-नाभ एवं चन्द्रनाभ नामक दो राक्षस दैत्य ब्रह्माजी से वर प्राप्त कर अपने बल के अहंकार में डूब गये । अतएव उन्होंने देवलोक तथा पितृलोक के आने जाने के मार्ग को कई जगह से काट दिया । धनुष बाण चलाते में उनके सामने कोई टिकता नहीं था । जब उन दोनों दैत्यों से देवता लोग पीड़ित हो गए । तब दीन-हीन व मलीन हो कर ब्रह्माजी के पास गए और उनकी स्तुति करने के बाद बोले—हे पितामह ! इन दैत्यों ने हमारे यज्ञ भागों को छीन लिया है अतः आप उन्हें नष्ट करने का उपाय करें । ब्रह्माजी ने देवताओं को धैर्य बंधाते हुए कहा—हे देवगण ! इन असुरों को भगवान् शंकर ही नष्ट कर सकते हैं कोई अन्य नहीं । अतः आप लोग भगवान् शंकर को इन्हें मारने के लिए निवेदन करें ।

सभी देवतागण ब्रह्माजी को प्रणाम करके ब्रह्मसंहिता को जपते हुए शिवजी के पास चल दिये । पृथ्वी पर आते ही देवगणों ने ताम्र एवं लौह के अलंकारों के अलंकृत भगवान् शंकर को मृदु बाघम्बर (बाघ चर्म) को धारण किये व कुश के आसन पर बैठे हुए देखा । सभी देवतागणों ने भगवान् शंकर को प्रणाम कर उन दोनों दैत्यों को मारने का निवेदन किया । इस पर भगवान् शंकर ने दिव्य शस्त्रास्त्रों से युक्त देवताओं एवं अपने गणों के साथ भगवान् शंकर त्रिपुरासुर के साथ युद्ध में संलग्न हो गए । युद्ध ने भीषण रूप धारण कर लिया । भगवान् शंकर अपने सुतीक्ष्ण बाणों से दैत्य को गाजर मूली की तरह काट-काटकर पृथ्वी पर गिराने लगे । देवता भी अपने विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों को प्रयोग कर दैत्य को कटे वृक्ष की तरह गिराने लगे । बहुत से देवगण भी घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े थे ।

सूर्यास्त हो गया । रात्रि छा गई । दैत्यगण विजय-घोष करने लगे । चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगे—देवतागण हमारे भयंकर पराक्रम से त्रस्त हो गए हैं । अत्यन्त ही हर्षित मन में भयमुक्त होकर युद्ध क्षेत्र में घूम रहे थे । भगवान् शंकर क्रोधित होकर धनुष बाण लिए रथारूढ़ होकर देवताओं की सेना के आगे-आगे युद्ध के मैदान में

चल दिये भगवान शंकर अपने अग्नि तुल्य बाणों से दैत्यों को नष्ट करने लगे । सभी ऋषि, महर्षि, सिद्ध तपस्वी, गन्धर्व, यक्ष, नाग आदि ने भगवान शंकर के गुणगान करना प्रारम्भ किया । दैत्यगण अपने-अपने भवनों के ऊँचे-ऊँचे अट्टालिकाओं पर चढ़कर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे । दैत्यगण शतघ्नी, भाले, शूल, परशु, अशनि, शक्ति आदि का देवताओं पर भीषण प्रहार कर देवताओं के सभी प्रहारों को निष्फल कर रहे थे । थोड़ी देर के लिए भगवान शंकर भी युद्धक्षेत्र से लोपित हो गये थे । युद्धक्षेत्र में मात्र इन्द्र ही रह गये थे । भगवान शंकर के रथ से लुप्त होते ही चारों तरफ अन्धकार छा गया, पर्वत शिखर काँपने लगे समुद्र का जल क्षुब्ध हो गया । आकाशमार्ग से ऋषिगण कहने लगे—भगवान शंकर के रहते उनका रथ बेकार हो गया । तीनों लोकों में जिस रथ को कोई नहीं जीत सकता था । उसे दैत्यों ने जीत लिया । इस प्रकार से पृथ्वी पर नाना प्रकार के उपद्रव प्रारम्भ हो गए ।

विश्व शान्ति के लिए योगाभ्यासी ब्राह्मण सामवेद के मन्त्रों को जपने लगे । जिससे देवताओं को विजय प्रदान कराने वाला बल मिल सके । ब्राह्मणों के इस प्रकार सामवेद के मन्त्रों के जपने से भगवान विष्णु, त्रिलोचन शिव,

स्वेच्छा से रूप धारण करने वाले महाबली देवगण एवं निर्जन वन में रहने वाले तपस्वी गण तेजयुक्त हो गए । भगवान विष्णु ने वृषभ का रूप धारण कर रथ को अपने सींग पर लेकर आकाश में पहुंच कर अति ही भयंकरतम गर्जना की । जिससे दैत्यगण भयभीत होकर अपनी बाण वर्षा से देवसेना को नष्ट करने लगे । तब भगवान शंकर ने अपने भयंकर ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र और ब्रह्मदण्ड तीनों को एक साथ धनुष पर चढ़ाकर त्रिपुरपुरी पर छोड़कर उसे बुरी तरह ध्वस्त कर दिया । फिर देवताओं ने भगवान शंकर से सभी दैत्यों को नष्ट कर डालने को कहा । फिर भगवान शंकर ने ब्रह्मास्त्र की शक्ति से त्रिपुरपुरी सहित सभी दैत्यों को भस्म कर दिया ।

—०—

युग एवं मन्वन्तर वर्णन

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन जी से युग एवं मन्वन्तर के विषय में जानने की अभिलाषा प्रकट की । वैशम्पायन जी वर्णन करते हुए बोले—हे राजन् ! सतयुग चार हजार वर्षों का होता है एवं उससे दुगुने सौ वर्षों की उसकी संध्या एवं संध्यांश भी होते हैं । तथा धर्म के चारों पैर होते हैं

अधर्म नाम मात्र के लिए होता है । सभी मनुष्य धार्मिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं तथा ईमानदारीपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करता है । ब्राह्मण धर्म परायण, राजागण प्रजा की उचित व्यवस्था एवं पालन करने वाले होते हैं । सब जगह सत्य, तपस्या और धर्म की वृद्धि होती है । सभी प्राणी धर्मयुक्त व्यवहार करते हैं ।

त्रेतायुग तीन हजार वर्ष का होता है तथा इसकी संध्या छः सौ वर्षों की होती है । इस समय धर्म के तीन तथा अधर्म के दो पैर होते हैं । अतः सतयुग की अपेक्षा त्रेतायुग में सत्य, तपस्या व धर्म की वृत्ति मनुष्यों में कम पायी जाती है । चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) विकार ग्रस्त अर्थात् दुर्गुणों से युक्त होने लगते हैं ।

द्वापर दो हजार वर्षों का होता है उसकी सन्ध्या इस से दुगुनी यानि चार हजार वर्षों की होती है । इस युग में ब्राह्मण रजोगुणी होकर धन के लोभी, क्षुद्र और ठग बुद्धि वाला होता है । धर्म के दो पैर और अधर्म के तीन पैर हो जाते हैं । मनुष्य सतयुगी धर्माचरण, व्रत एवं उपवास आदि का त्याग कर देते हैं, धर्म वृद्धि करने वाले अन्य व्रत व उपासना का त्याग कर देते हैं । अतः ब्राह्मणत्व नाम मात्र का रह जाता है ।

कलियुग सबसे बुरा युग है । कलियुग सन्ध्या सहित

बारह सौ वर्षों का होता है। इस समय अधर्म के चार पैर होते हैं। धर्म मात्र एक पैर पर टिका रहता है। इस युग में मनुष्य वास्तव में धार्मिक न होकर पाखण्डी होता है। सच्चे साधु एवं सत्यवादी पुरुष दुर्लभ हो जाते हैं। आस्तिक एवं ब्रह्मवादी पुरुष का अभाव हो जाता है। मनुष्य अपने अहंकार में चूर होकर बन्धु बान्धवों की एवं सामाजिक मर्यादा को भूल जाता है। ब्राह्मण शूद्रों की भांति और शूद्र ब्राह्मणों की भांति कर्म करते हैं। सभी वर्ण के लोग अपने वर्णों में स्थिर न रहकर वर्णशंकर हो जाता है, पराई स्त्री के साथ अथवा अगम्य नारी के साथ संभोग करने में संकोच नहीं करता।

इस प्रकार बारह हजार वर्षों का एक महायुग होता है और इस प्रकार के इकहत्तर चौकड़ी युगों का मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर का चौदह गुना समय ब्रह्म का एक दिन होता है। इस तरह से ब्रह्म का दिन पूर्ण होने पर भगवान् शंकर सम्पूर्ण शरीरधारी प्राणियों का संहार कर प्रलय काल में उपस्थित हो जाते हैं। उस प्रलयकाल में देव, दानव, ब्राह्मण, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, किन्नर, अप्सरा, सर्प, पर्वत, नदी, पशु, मृग, पक्षी तथा अन्य तिर्यक योनि के जीव आदि कोई भी नहीं बचता। भगवान् शंकर उस समय सभी प्राणियों का पूर्णतया सफाया करते हैं।

एकार्णव में भगवान विष्णु की दशा

वैशम्पायन जी ने आगे कहा—हे राजन् ! प्रलयकाल में भगवान विष्णु सात सूर्य के समान तेज प्रकट करके इस संसार के कोने-कोने के अर्थात् कूप, नदी, समुद्र आदि के जल को शोषित कर लेते हैं। पृथ्वी टूक-टूक होकर रसातल में चली जाती है। आगामी सृष्टि रचना करने के विचार से भगवान विष्णु सभी प्राणियों को अपने में विलीन कर लेते हैं। सभी देवताओं एवं पृथ्वी के प्राणियों के इन्द्रियों जैसे गन्ध, घ्राण और शरीर आदि पार्थिव गुण पृथ्वी को; रूप तथा नेत्र आदि आग्नेय गुण अग्नि को; जिह्वा, रस तथा क्लेश आदि गुण जल को; स्पर्श, प्राण वायु और अंगों की गति आदि गुण वायु में विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार सभी तत्व एवं उनके गुण परमेष्ठि, वरेण्य भगवान हृषीकेश के आश्रित हो जाते हैं। इस प्रकार पाँचों प्रकार के गुण व तत्व एक में विलीन हो जाते हैं जिसकी प्रतिक्रिया से महाग्नि अति भयंकर रूप में उत्पन्न हो जाती है जिसे 'सम्बर्तक' अग्नि कहते हैं। यह अग्नि संसार के सम्पूर्ण पेड़ पौधे, लता, बेल, घास, दिव्य विमान बड़े-बड़े नगर व आश्रम, तीर्थ, दिव्य स्थान आदि सभी को भस्म कर डालते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण संसार सब प्रकार से भस्म होकर, नष्ट होकर स्वाहा हो जाता है तब

भगवान् विष्णु महामेघ का रूप धारण कर जल वृष्टि कर अग्नि को शान्त करते हैं । पृथ्वी कल्याणकारी रूप धारण कर लेती है । सम्पूर्ण विश्व जल ही जलमय दिखाई देता है । कहीं कोई जीव दिखाई नहीं देता है । उस अवस्था में भगवान् विष्णु सभी कुछ अपने में विलीन करके अनन्त जलराशि के मध्य में अकेले ही स्थित रहते हैं । इस प्रकार महायोग की अवस्था में भगवान् विष्णु असंख्य वर्षों तक रहते हैं । यही भगवान् विष्णु की एकार्णव अवस्था रहती है । उन महाप्रभु भगवान् का कोई परिणाम या सीमा नहीं है । न परम प्रभु की कोई माता होती है न कोई परिचित होता है और न कोई पास में ही रहने वाला होता है । उस समय वे आकाश, भूमि, वायु, सुरेश्वर, वेदों तथा पितामह महामुनि के आधार स्वरूप महाप्रभु भगवान् विष्णु उस एकार्णव में शयन किया करते हैं ।

—:०:—

नारायण—मार्कण्डेय सम्वाद

जब रजोगुण रूपी महान् समुद्र के मध्य में स्वयं सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित महाप्रभु नारायण निवास करते हैं जिन्हें अक्षर ब्रह्म कहा जाता है । प्रभु

व्यापक अर्थात् गम्भीर निद्रा में सोये रहते हैं उन्हें बाहरी दुनिया का उस समय कोई ज्ञान नहीं होता । अति प्राचीन समय में महाप्रभु नारायण के ही शरीर से यज्ञ परायण, राजद्वेष से रहित ऋत्विक्गण उत्पन्न हुए थे । ये ऋत्विक्गण सभी प्रकार के ज्ञान के अधिष्ठाता, वेदज्ञ, परायण एवं सोलह प्रकार के आत्म कर्त्तव्यों में दीक्षित होने योग्य थे ।

मार्कण्डेय ऋषि कल्पान्त के अवसर पर भगवान् नारायण के उदर में निवास करते हैं । एक बार मार्कण्डेय ऋषि अनेक पुण्य तीर्थों आश्रमों और नगरों में विचरण करते एक पवित्रोत्तम स्थान पर तपस्या में ध्यानस्थ हो गये । जब वे भगवान् के मुख से बाहर निकले तो उनको चारों तरफ जल ही जल दिखा । एवं सभी लोकों को शून्य देखकर उनके मन में एक विचित्र प्रकार का भय उत्पन्न हुआ । परंतु तत्क्षण ही वे क्षीरसागर शायी भगवान् हरि को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए । फिर वे शान्तचित्त होकर विचार करने लगे यह कौन सा संसार है जहां सूर्य, चन्द्र, तारागण, नक्षत्र, ग्रह, पर्वत व पृथ्वी आदि कुछ भी दिखाई नहीं देता । सोचने लगे—क्या मेरा मतिभ्रम हो गया है या कोई स्वप्न देख रहा हूं ? यदि नहीं तो ऐसी असंगत और असम्भव बात क्यों दिखाई दे रही है ? यह सोचकर जब ऋषि ने सभी दिशाओं में अपनी दृष्टि दौड़ाई

तो उन्होंने मेघवर्ण के व अत्यन्त तेजस्वी एक महान् पर्वताकार पुरुष को जल में शयन करते हुए देखा । उस पुरुष की कान्ति से चारों तरफ प्रकाशित हो रहा था । ऋषि जोर से निःश्वास छोड़ते हुए पुरुष के उदर में पुनः प्रवेश कर गये । वे भगवान के उदर में असंख्य वर्षों तक नाना प्रकार के दृश्यों को देखते हुए भी भगवान के उदर का अन्त नहीं पा सके । अन्ततः ऋषि जब फिर भगवान के मुख से बाहर आये तो उन्होंने देखा कि सर्वत्र जल ही जल है । घना कोहरा छाया हुआ है और उसी बीच एक बरगद के पत्ते पर एक अति सुन्दर बालक शैशवावस्था में सो रहा है । महर्षि अपने को वहां अकेले पाकर भय से काँपने लगे तथा सूर्य के समान तेजस्वी बालक के पास जाने का उन्हें साहस नहीं हुआ । मन में तरह-२ के विचार करने लगे ।

मार्कण्डेय को भयमुक्त देखकर भगवान गम्भीर वाणी में बोले हे वत्स ! तुम अकेले होने के कारण लेशमात्र भी भय न करो । तुम अभी बालक हो श्रम करते-२ थक चुके हो । अतः मेरे पास आओ और भय मुक्त होवो ।

मार्कण्डेय ऋषि क्रोधित हो गए और बड़बड़ाने लगे कौन है जो मेरे हजारों वर्षों की तापस्विक जीवन की उपेक्षा करके मेरा नाम मार्कण्डेय कहकर पुकारता है,

वत्स कहता है । मुझे इस प्रकार अपमानित करके कौन अपनी मृत्यु की कामना कर रहा है ?

इस प्रकार मार्कण्डेय ऋषि की क्रोध पूर्ण बातों को सुनकर भगवान् श्रीमन्नारायण पुनः बोले—वत्स ! मैं आदि सनातन पुरुष हूँ । तुम घोर तपस्वी महर्षि अंगिरा के पुत्र मेरे ही प्रताप से अग्नि तुल्य तेजस्वी, महान तपस्वी महर्षि और दीर्घायु हुए । इसलिये भय मत करो । इस समय मैं बालक रूप में क्रीड़ा करता हुआ एकार्णव में शयन कर रहा हूँ । इस समय मेरी आत्मा से उत्पन्न हुआ व्यक्ति ही मेरा दर्शन कर सकता है ।

ऋषि मार्कण्डेय भगवान् की इस प्रकार की मृदुवाणी को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए एवं भरपूर नेत्रों से उनका दर्शन करते हुए दोनों हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक प्रणाम किया । फिर ऋषि ने श्रीनारायण से उनके तात्त्विक रूप को जानने की इच्छा प्रकट की ।

श्रीहरि बोले—हे मार्कण्डेय मैं ही नारायण एवं सृष्टि कर्ता ब्रह्मा हूँ । समस्त सृष्टि का उत्पन्न कर्ता एवं संहार कर्ता मैं ही हूँ । इन्द्र, शक्र, ऋतु, वर्ष, युगयुगाध्यक्ष, युगावर्त मैं ही हूँ । सर्पों में शेषनाग, पक्षियों में गरुड़, सहस्र-शीर्ष, सहस्रपादः आदित्य, यज्ञ-पुरुष देव एवं यज्ञमय नामों में प्रकाश मैं ही हूँ । जो भी तपस्वी योगी जिस आत्मज्ञ

को प्राप्त करता है वह ज्ञान स्वरूप मैं ही हूँ । कर्म, क्रिया एवं सम्पूर्ण जीवों के लिए धर्म साधन स्वरूप, अनादिकाल से आत्म ज्योति सम्पन्न, प्रधान पुरुष, आद्यदेव, अक्षय और अविनाशी हूँ । मैं ही सांख्य-ज्ञान एवं योग शरण का निर्देशित परमपद, विद्यानिदान, प्रकाश, वायु, पृथ्वी, जल, समुद्र, नक्षत्र, दसों दिशाओं, सम्बतसर, सोम, पर्जन्य, एवं सूर्य हूँ । मैं ही क्षीर सागर, बड़वानल हूँ तथा सम्बर्तक अग्नि बनकर सम्पूर्ण जल को शोषित कर लेता हूँ । इस लिये हे मार्कण्डेय ! तुम किसी प्रकार का भय न करके मेरे उदर में आनन्दपूर्वक रमण करते रहो क्योंकि जो कुछ भी तुम देखते हो, सुनते हो और अनुभव करते हो वह सभी मेरे द्वारा ही उत्पन्न होता है । इस अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि मैंने ही की है तथा आगे मैं ही करने वाला हूँ । अर्थात् यह संपूर्ण जगत मेरा ही रूप है । इसे मैं ही धारण करता हूँ ।

श्रीमन् नारायण की इस प्रकार की वाणी को सुनकर मार्कण्डेय जी पुनः उनके उदर में प्रविष्ट होकर हंस योग की साधना में लीन हो गये ।

—:०:—

नाभि-कमल का वृत्तान्त

एकाग्रव में शयन करते हुए श्रीहरि आपव के रूप में तपस्या करने लगे। इस तपस्या के प्रभाव से अत्यधिक बल की प्राप्ति हुई। श्रीहरि ने सृष्टि के निर्माण के लिये पंचभूतादिक की रचना का विचार करके आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पाँचों तत्वों की रचना की। उसके बाद ब्रह्माजी को उत्पन्न करके वेद की रचना एवं भूमंडल की व्यवस्था का भार सौंप दिया और स्वयं महार्णव में निश्चिन्त होकर शयन करने लगे। कुछ कालोपरान्त भगवान् श्रीमन्नारायण की नाभि से सूर्य के समान प्रकाश-मय एवं तेजस्वी एक दैवी कमल की उत्पत्ति हुई। जिसमें हजारों पंखुड़ियाँ, मनोहारिणी गंधयुक्त तथा धूल आदि से रहित थी। उस कमल के ऊपर योगियों में सर्वोपरि, सम्पूर्ण जीवों के रचयिता सर्वतोमुख ब्रह्माजी को प्रतिष्ठापित कर दिया। उस स्वर्णिम कमल का विस्तार अनेक योजन था। उसमें सम्पूर्ण पार्थिव गुण थे। अर्थात् वह कमल पृथ्वी रूप में ही था। उस कमल के गर्भाकुर पर्वत रूप में जैसे हिमाचल, सुमेरु, नील, निषध, कैलाश, भुजवन्त, पर्यात्र, गन्धमादन, विन्ध्य, उदयाचल तथा अस्ताचल हैं जो कि देवता, महात्मा, सिद्ध तथा अन्य प्राणियों के निवास स्थान हैं। इन पर्वतों का मध्यवर्ती भाग ही

जम्बू द्वीप कहलाता है जो कि यज्ञस्थल एवं कर्म भूमि है । इस कमल के केशर पृथ्वी के अन्दर धातु की खानों को समझना चाहिये । कमल के नीचे के पत्र कुछ दैत्यों एवं सर्पों के निवास स्थल थे । इसी स्थल को पाताल कहते हैं । इसके नीचे के 'उदक' नामक स्थान को नरक कहा गया है जहां सबसे महान पातकी व्यक्तियों का निवास होता है । तथा इसके चारों तरफ पाई जाने वाली जल-राशि को चार समुद्र के रूप में जाना जाता है । इस प्रकार इस नाभि कमल से ही सम्पूर्ण विश्व की रचना हुई है ।

—:—

हरिवंश पुराण सुनने का फल

राजा जनमेजय ने वैशम्पायन जी से हरिवंश पुराण सुनने से प्राप्त होने वाले फल को जानने की अभिलाषा प्रकट की । तब वैशम्पायन जी बोले—हे राजन ! जिस प्रकार सूर्योदय होते ही वर्ष गल जाती है ठीक उसी प्रकार हरिवंश पुराण सुनने वाले मनुष्य के दैहिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं जो फल अठारहों पुराण सुनने से मिलता है वह मात्र अकेले हरिवंश पुराण सुनने से ही प्राप्त होता है । जो मनुष्य श्रद्धा व

भक्तिपूर्वक हरिवंश पुराण को पूरा, आधा या चौथाई भी सुन लेता है वह निश्चय ही विष्णु लोक को प्राप्त होता है। परन्तु हे राजन ! यह निश्चय है कि कलियुग में पूरे जम्बू द्वीप में हरिवंश पुराण को श्रद्धा व भक्ति से सुनने वाला एक भी व्यक्ति मिलना कठिन है। यथा—

हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भारतोत्तम ।
 कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपाजितम् । २ ।
 तत्सर्वमाशमायाति हिमं सूर्योदये यथा ।
 अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत् । ३ ।
 तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ।
 श्लोकार्द्धश्लोकपादं वा हरिवंश समुद्भवम् । ४ ।
 शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णव पदमावुनुयुः ।
 जम्बू द्वीपं समाश्रित्य श्रोतारी दुर्लभाः कलौ । ५ ।

वैशम्पायन जी ने पुनः कहा—हे राजन ! पुत्र की कामना करने वाली स्त्रियों को हरिवंश पुराण की कथा अवश्य सुननी चाहिये। तथा ऐसे भी अन्य मनोकामनाओं की पूर्ति के लिये हरिवंश पुराण सुनना चाहिये।

यथा—

स्त्रीभिश्च पुत्रकाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ।

दान

हरिवंश की कथा पूर्ण होने पर कथावाचक को तीन सोने की मुद्रायें अथवा यथा शक्ति दक्षिणा रूप में देना चाहिये । फिर एक वस्त्र से ढकी हुई, सोने से मढ़ी हुई सींग वाली, बछड़े से युक्त कपिला गौ दान अवश्य करनी चाहिए । स्वर्णभूषण देना चाहिये । जिसमें कान का आभूषण अवश्य ही होना चाहिये । यदि भूमि भी दान कर सके तो अत्युत्तम है । क्योंकि भूमि दान से बड़ा कोई अन्य दान नहीं है ।

निःसन्तान दम्पति को पुत्र, निर्धन को प्रचुर धन तथा अश्वमेध यज्ञ करने का फल हरिवंश पुराण सुनने वाले को मिलता है । तथा सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है ।

॥ श्री हरिवंश पुराण समाप्त ॥

मन्त्र प्रयोग (मन्त्र और उनकी प्रयोगविधि)
 महामाया के सिद्धस्तोत्र (भाषा टीका)
 हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार
 हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार (कपड़ा जिल्द)
 अमरनाथ की अमर कहानी (अमरनाथ यात्रा सहित)
 भगवान शंकर के २१ अवतार और
 १२ शिवलिंगों की कथा
 कबीर दोहावली (हिन्दी अनुवाद सहित)
 तुलसी दोहावली (हिन्दी अनुवाद सहित)
 विष्णु सहस्रनाम भा० टी०
 श्रीमद् देवी भागवत पुराण (हिन्दी में)
 सम्पूर्ण शिवपुराण (सरल हिन्दी में)
 श्री मद्भागवत पुराण (सरल हिन्दी में)
 भगवान श्री कृष्ण की लीलायें और उपदेश
 हनुमान जीवन चरित्र
 सचित्र भट्टहरि शतक (२४ चित्रों सहित)
 चाणक्य नीति दर्पण भाषा टीका
 चाणक्य सूत्र संग्रह (मूल सूत्र और हिन्दी टीका)
 सचित्र अमर कथा (शिव पावती विवाह)
 प्रजापति दक्ष की कथा (कनखल का इतिहास)
 मां गंगा (अतीत के गौरव से आज की प्रतिष्ठा तक)
 रुद्राक्ष महात्म्य और धारण विधि
 जीवन स्वामी रामतीर्थ
 सूक्तियां उपदेश संदेश (स्वामी रामतीर्थ)
 स्वामी विवेकानन्द चरित्र और उपदेश

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार (उ० प्र०)